प्रोफेसर रामदरश मिश्र

(सरस्वती सम्मान से सम्मानित व्यक्तित्व)
(संरक्षक)

INTERNATIONAL PEER- REVIEWED(REFEREED) JOURNAL

RNI (UPHIN/2021/80567) **साहित्य मेघ** ISSN: 2583 - 5750

(साहित्यिक हिंदी मासिक)
प्रकाशन का आरंभिक माह /वर्ष : अप्रैल 2021

सम्पादक मण्डल

भारत

प्रोफेसर ओमप्रकाश सिंह
भारतीय भाषा केन्द्र,जे.एन.यू.
नई दिल्ली
opsingh@mail.jnu.ac.in
M:(९८९९४४६८६१)

प्रोफेसर चन्द्रदेव यादव
विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग,
जामिया मिल्लिया इस्लामिया,नई दिल्ली
cyadav@jmi.ac.in
M: (९८१८१५८७४५)

प्रोफेसर जितेंद्र श्रीवास्तव
विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग,
इंदिरा गांधी ओपन विश्वविद्यालय (इग्नू),
नई दिल्ली
jksrivastava@ignou.ac.in
M:9818913798

प्रोफेसर राज कुमार
M:09415201281
drrajkumar@bhu.ac.in
हिंदी विभाग,काशी हिंदू विश्वविद्यालय ,वाराणसी

प्रोफेसर प्रभाकर सिंह
(9450623078)
prabhakarhindi@bhu.ac.in
प्रोफेसर,हिंदी विभाग,काशी
हिंदू विश्वविद्यालय,वाराणसी

प्रोफेसर श्रद्धा सिंह ९४१५५३०५८७
प्रोफेसर, हिन्दी-विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
shraddha.singh@bhu.ac.in

डॉ.आभा गुप्ता ठाकुर
प्रोफेसर, हिंदी विभाग,काशी हिंदू
विश्वविद्यालय,वाराणसी
(9450960955)
abhag.hindi@bhu.ac.in

डॉ.गाजुला राजू
सहायक प्राध्यापक,हिन्दी एवं आधुनिक
भारतीय भाषा विभाग, इलाहाबाद
विश्वविद्यालय,प्रयागराज २११००२
(9059379268)
raju.g@allduniv.ac.in

डॉ.जर्नादन
(सहायक प्राध्यापक)
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
9026258686
janardan@allduniv.ac.in

डॉ. बिजय कुमार रबिदास
bkrabidas@allduniv.ac.in
9432345604
सहायक आचार्य हिन्दी एवं आधुनिक
भारतीय भाषा विभाग,इलाहाबाद
विश्वविद्यालय,प्रयागराज २११००२

विदेश

प्रोफ़ेसर उल्फत मुखीबोवा
ulpatxon_muxibova@tsuos.uz
M:998946443037
Tashkand State
University of
Oriental Studies,
Tashkand,Uzbekistan

प्रोफेसरग्युज़ेल स्त्रेलकोवा
str@iaas.msu.ru.
M: +79199933635
एशिया और अफ्रीकी देश
अध्ययन संस्थान,मास्को राजकीय
विश्वविद्यालय,मास्को

Farzaneh Azam Lotfi
f.azamlotfi@ut.ac.ir
Associate Professor
Department of foreign
languages
University of Tehran,Iran

परामर्श मण्डल

भारत

डॉ. प्रताप सहगल
(९८१०६३८५६३)
प्रो. अब्दुल बिस्मिल्लाह
(९८११३०६३३१)
डॉ.शशि सहगल
(९८९९१६६१२९)
प्रो. कृपाशंकर पाण्डेय
(९९८४५२३७०६)
प्रो. मोहन
(९८७१११५५००)
(दिल्ली विश्वविद्यालय)
प्रो.लालचंद राम
९९९००७०८९५
विभागाध्यक्ष,एन सी ई आर टी
प्रो.राम आहलाद चौधरी
(९४३२०५१५००)
(विभागाध्यक्ष कलकत्ता विश्वविद्यालय)
प्रोफेसर (पूर्व) शत्रुघ्न कुमार

shatrughnakumar@ignou.ac.in

प्रो.चंदा देवी
(८००४९२८४४१)(इला. यू.)
प्रो. रामकली सराफ
(९३८९४३२१६५)
डॉ० प्रभा पंत
प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष हिंदी विभाग,
एम०बी०रा० स्ना० महाविद्यालय,हल्द्वानी
dr.prabhapant@gmail.com
प्रो. रूबी जुत्शी
कश्मीर यूनिवर्सिटी
९४१९०५८५८५

विदेश

प्रो. सरन घई
(±१ (६४७) ९९३-०३३०)
कनाडा
तेजेन्द्र शर्मा
(४४ ७४००३१३४३३)
(यू.के.)
प्रो. पुष्पिता अवस्थी
(±९१ ७०५८४-६२९५१)
(www.pushpitaawasthi.com)
नीदरलैंड
डॉ. सुरेश चंद्र शुक्ल
'शरद आलोक'
(±४७ ९००७०३१८)
(speil.nett@gmail.com)
नॉर्वे
अनुराग शर्मा
(±१ (४१२) ६९२-१३६२)
(indiasmart@gmail.com)
अमेरिका
रेखा राजवंशी
(±61 403116301)
ऑस्ट्रेलिया

प्रकाशक, मुद्रक और मालिक डॉ. मो. सलीम ने अज़ीम इंडिया प्रिंटर्स, अटाला, प्रयागराज (इलाहाबाद) में छपवा कर ४८३ अटाला, प्रयागराज (इलाहाबाद) से प्रकाशित किया।सम्पादक डॉ.मो.सलीम,४८३अटाला,प्रयागराज (इलाहाबाद)सभी मामले प्रयागराज (इलाहाबाद) की ही अदालत में होंगे।

साहित्य मेघ

sahityamegh.com
sahityamegh@gmail.com

जनवरी 2024
वर्षः4, अंकः1

डॉ. दानिश
9919142411
प्रधान संपादक

डॉ.राजविंदर कौर
9759912434
सह-संपादक (अवैतनिक)

डॉ.तबस्सुम जहां
9873104110
उप-संपादक (अवैतनिक)

कृष्ण कुमार जायसवाल
9450827797
प्रूफ रीडर

लोक कवि बिहारी और नया बिरहा	प्रो.चन्द्रदेव यादव	४
राहुल सांकृत्यायन की प्रासंगिकता	प्रो.शिवप्रसाद शुक्ल	१२
राष्ट्रीय आंदोलन में आदिवासी स्त्रियों की भूमिका	डॉ स्नेहलता नेगी	२०
प्रवासी हिंदी कविता में भारतीय अस्मिता का चित्रण	प्रो.सुधाकर शेंडगे	२४
विद्या के विविध रूप : आधुनिक परिदृश्य में प्रासंगिकता और सम्भावनाएं	डॉ बालकृष्ण राय	२९
सामाजिक विसंगतियों से विचलित परिवेशगत यथार्थ की सहज अभिव्यक्ति नई दिल्ली दो सौ बत्तीस किलोमीटर	डॉ.ममता पंत	३६
मोहन राकेश की प्रतिनिधि कहानियों में संवेदना के विविध स्वर	डॉ.गरिमा तिवारी	४७
भोजपुरी माटी के कवि चन्द्रदेव यादव	शिव कुमार यादव	५१
कुँवर नारायण के काव्य में मानवाधिकार	किरन राजभर	५४
'अमृतलाल नागर के उपन्यास 'एकदा नैमिषारण्ये' में भारतीय संस्कृति'	रत्नेश पाण्डेय	५८
लोककंठ में राम	डॉ.नीलम मिश्रा	६४
कुमार अंबुज का कहानी संसारःअपने समय का अद्भुत आख्यान	यशवंत कुमार विश्वकर्मा	६७
हिन्दी उपन्यासों में चित्रित अस्मिता और परिवार के संकट	मनीष कुमार शुक्ला	७३
नई कहानी की विशेषताएं	वांग मेईचेन (Wang Meicen)	७७
दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता : बाजार संस्कृति में बदलता स्त्री स्वरूप	रवि रंजन कुमार ठाकुर	८१
"स्वातंत्र्य यज्ञ में 'आहुति'"	कृष्ण कुमार जायसवाल	८८
हिन्दी उपन्यासों में महानगरीय जीवन और दफ्तरी परिवेश	मोनीश कमल	९२
बुंदेलखंड का कश्मीर - चरखारी	सुभाष चन्द्र	९७

लोक कवि बिहारी और नया बिरहा

प्रो.चन्द्रदेव यादव

हिंदी विभाग,
जामिया मिल्लिया इस्लामिया
नई दिल्ली-११००२५
ईमेल : cdsyadav@gmail.com

यह बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्द्ध था ।हिंदी में नवजागरण और आधुनिक युग की शुरुआत हो चुकी थी ।आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हिंदी कविता को नई दिशा दे चुके थे और उसमें राष्ट्रीय-सांस्कृतिक चेतना की अभिव्यक्ति हो रही थी। मैथिलीशरण गुप्त 'भारत भारती' और सुभद्रा कुमारी चौहान 'झाँसी की रानी' जैसी प्रसिद्ध कविताएँ लिख चुके थे । छायावादी कवि तथा राष्ट्रीय-सांस्कृतिक धारा के कवि भी साम्राज्यवादविरोधी तथा जनजागरण और देशप्रेम संबंधी कविताएँ लिख रहे थे । उसी दौर में हिंदी लोकगीत बिरहा का आधुनिक रूप अस्तित्व में आया ।हिंदी के महान कवि जयशंकर प्रसाद और आधुनिक बिरहा के जनक लोक कवि बिहारी–दोनों बनारस के थे ।एक नारियल बाज़ार वाली गली में थे और दूसरा बुलानाला मोहल्ले में। लेकिन दोनों की रचनात्मक दृष्टि अलग-अलग थी। जयशंकर प्रसाद ने स्वयं तो कोई लोकगीत नहीं लिखा, परन्तु उनमें पर्याप्त लोकचेतना थी । 'ग्रामगीत' नामक अपनी प्रारंभिक कहानी में उन्होंने एक फगुआ गीत शामिल किया है, बिलकुल काशिका भाषा में ।वे ही नहीं, बल्कि सभी छायावादी कवि लोकगीतों से प्रभावित थे । उन्होंने लोकगीतों से प्रेरित होकर अनेक छंदों की रचना की । उनसे पूर्व सामाजिक-सांस्कृतिक और राष्ट्रीय चेतना के विकास के लिए भारतेन्दु हरिश्चन्द्र लोकगीतों की तर्ज पर जनजागरणपरक गीतों की रचना पर जोर दे चुके थे ।उन्होंने कजरी, ठुमरी और चैता के साथ बिरहा को भी जनजागरण के लिए उपयुक्त माना था ।आधुनिक बिरहा के कवि बिहारी पेशे से राजमिस्त्री थे ।वे साहित्य की नई लहर वाले काव्य-सृजन में शामिल नहीं थे ।बिहारी ने भक्ति-भाव से आध्यात्मिक ज्ञान के प्रसार तथा सामाजिक-मानवीय मूल्यों के विकास के लिए बिरहा गीतों की रचना की ।वे न तो संत थे और न ही कोई समाज-सुधारक ।बिरहा गीत के द्वारा मनोरंजन के साथ-साथ साधारण जनता को तत्त्व-ज्ञान कराना और जीवन की वास्तविकता बताना उनका उद्देश्य था ।

दिन-भर भवन-निर्माण का कार्य करने के बाद बिहारी शाम को बीएचयू से थोड़ा आगे गंगा के किनारे स्थित रमना गाँव में स्थित मठ गड़वा घाट आश्रम में चले जाते थे। इस मठ में निराकार ईश्वर की उपासना का विधान है। 'नित्यावतार चर्चा' पुस्तक के अनुसार (लेखक, डॉ. रामसखा सिंह) इस मठ की स्थापना स्वामी आत्मविवेकानंद ने सन् १९३० ई. में की थी, जबकि मठ गड़वाघाट ट्रस्ट स्वामी हरसेवानंद शिक्षक सोसायटी के सचिव प्रकाश ध्यानचंद के अनुसार इसकी स्थापना सन् १९२५ ई. में हुई थी ।स्वामी आत्मविवेकानंद चंदौली के खजुरहाँ गाँव के थे ।उनका मूल नाम ठाकुर बैकुंठनाथ सिंह था ।वे स्वामी स्वरूपानंद के शिष्य थे ।स्वामी आत्मविवेकानंद आश्रम में आने वाले श्रोताओं को प्रतिदिन निर्गुण ब्रह्म और निर्गुण भक्ति के बारे में बताते थे ।जिस काशी में कबीर और रैदास ने निर्गुण भक्ति की शुरुआत की थी और उसके ज़रिये सामाजिक परिवर्तन की दिशा में एक ठोस क़दम उठाया था, उस काशी में अभी भी

निर्गुण भक्ति प्रचलित है । गड़वा घाट के स्वामी निर्गुनिया संतों की परंपरा में निर्गुण भक्ति के साथ-साथ वर्ण और जाति-भेद के ख़िलाफ़ आवाज़ भी उठाते रहते थे ।लोक कवि बिहारी की रुचि पहले से आध्यात्मिक भावों की ओर थी ।वहाँ की इस संस्कृति से उन्हें लगाव हो गया ।स्वामी जी के सान्निध्य में उनकी आध्यात्मिकता में और निखार आया ।वे शाम को बिना नागा वहाँ पहुँच जाया करते थे ।वहाँ ब्रह्म, जीव, जगत, माया और योग आदि के बारे में होने वाली चर्चाओं का उन पर गहरा प्रभाव पड़ा था ।उनके बिरहों में इनकी चर्चा खूब हुई है।

मेरे गाँव विक्रमपुर (जनपद ग़ाज़ीपुर) से छः-सात किलोमीटर दूर दक्षिण दिशा में बिहारीगंज नामक एक स्थान है ।यह औंड़िहार से दो-तीन किलोमीटर पश्चिम में है ।इस जगह का यह नाम आधुनिक बिरहा के इसी कवि-गायक बिहारी के नाम पर पड़ा है ।लेकिन हक़ीक़त यह है कि बिहारी का अधिकांश जीवन बनारस में बीता ।

१९९५ ई. में मैंने 'लोक काव्य बिरहा' नाम से एक लेख लिखा था ।यह पहले 'मड़ई' पत्रिका में प्रकाशित हुआ था । यह लेख मेरी पुस्तक 'लोक-समाज और संस्कृति' में संकलित है । इसको लिखने से पूर्व मैंने बिरहा के अनेक कवियों और गायकों से बिरहा से संबंधित आवश्यक सूचनाएँ एकत्र की थीं। उनसे मिली सूचनाओं के आधार पर मैंने अनुमान लगाया था कि बिहारी उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में मौजूद रहे होंगे। उसी के आधार पर मैंने नई कथात्मक बिरहा की शुरुआत लगभग डेढ़ सौ साल पहले मानी थी ।लेकिन वरिष्ठ कवि-गायक श्री मंगल यादव कवि से मिली सूचना के आधार पर अब मैं प्रामाणिक रूप से कह सकता हूँ कि बिहारी का जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त में हुआ । किसी स्रोत से उनके जन्म की प्रामाणिक सूचना उपलब्ध नहीं है ।वे बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में विद्यमान थे ।वे पहले से कविताई करते थे, लेकिन स्वामी आत्मविवेकानंद के सान्निध्य में आने के बाद उनके बिरहा-लेखन में निखार आया । गड़वा घाट आश्रम से संबंधित 'नित्यावतार चर्चा' पुस्तक में इस आश्रम की स्थापना के साथ-साथ बिहारी के बारे में भी जानकारी दी गई है ।उसमें 'लोक कवि बिहारी की शरणागति' शीर्षक से एक प्रसंग है ।उसमें लिखा है कि 'पूर्वी उत्तर प्रदेश के प्रख्यात लोकगायक श्री बिहारी जी के भोजपुरी बोली के कवि और गायक ही नहीं थे, आध्यात्मिक क्षेत्र में भी उनका अच्छा ज्ञान था ।...मध्यम और निम्न जातियों में उनके हजारों शिष्य थे जो केवल गायन कला के नाते ही उनके प्रति श्रद्धा नहीं रखते थे बल्कि आत्मिक नाते से भी गुरु मानकर उनकी भक्ति करने वाले थे ।कवि जी के गीतों में उच्च कोटि का आध्यात्मिक भाव रहता था ।इनके बहुत से पुराने प्रेमियों और मित्रों ने जब इनसे श्री स्वामीजी की चर्चा की तो इनका खिंचाव स्वाभाविक रूप से हो गया । इन्होंने आश्रम पर जाकर श्री स्वामीजी का पावन दर्शन प्राप्त किया। ' (नित्यावतार चर्चा, पृ. ८४) बिहारीजी ने जिस स्वामीजी से दीक्षा ली, वे कोई और नहीं, स्वामी आत्मविवेकानंद जी थे । इस प्रसंग में डॉ. रामसखा सिंह ने आगे लिखा है कि 'उनके हजारों प्रेमी भक्तों ने भी श्री स्वामीजी का पवित्र शिष्यत्व ग्रहण कर लिया ।भक्त गायक होने के नाते नामतत्त्व-प्रचार और आध्यात्मिक जागरण के पुनीत कार्य में इनसे पर्याप्त सहयोग प्राप्त हुआ ।जात-पाँत, छुआछूत से विहीन सम व्यवहार के कारण माध्यम और निम्न जाति के लोग पहले से ही आकृष्ट होकर इस आध्यात्मिक झंडे के नीचे बड़ी संख्या में एकत्र होने लगे थे, लोककवि बिहारीजी के दरबार में प्रवेश करने के पश्चात् उपदेशियों की संख्या में निःसंदेह और वृद्धि हुई। (नित्यावतार चर्चा, पृ. ८४)

तो इस तरह नई कथात्मक बिरहा की शुरुआत बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुई ।

मेरे पास लोक कवि बिहारी के चार बिरहे हैं ।मुझे ये बिरहे बिरहा के वरिष्ठ कवि-गायक श्री मंगल कवि ने उपलब्ध कराये थे । उनको ये बिरहे रामसुन्दर यादव जी से प्राप्त हुए थे ।बिहारी के शिष्य रम्मन के घराने के रामसुन्दर यादव कोर्ट में पेशकार थे और बिरहा के एक अच्छे कवि थे। उनके बिरहे मोलई खलीफा गाया करते थे ।बिहारी के ये बिरहे निर्गुण शैली में दार्शनिक आधार लेकर रचे गए हैं। इनमें कुछ पौराणिक प्रसंगों पर आधारित हैं। उल्लेखनीय है कि बिहारी अशिक्षित थे, लेकिन गड़वा घाट आश्रम में होने वाले सत्संग ने उन्हें ब्रह्म, जीव, जगत और माया के संबंध में इतना शिक्षित कर दिया था कि उन्होंने अपनी भाषा यानी भोजपुरी में बिरहा शैली में उन बातों को बड़ी कुशलता से व्यक्त किया और अपनी गायकी से अपने जैसे लोगों में उसका प्रचार किया ।लोक कवि बिहारी के ये बिरहे पहले से चले आ रहे 'खड़ी बिरहा' के कथ्य और शिल्प से बिलकुल भिन्न हैं ।

खड़ी बिरहा मुक्तक काव्य है ।यह न तो यह मात्रिक छंद है और न ही वर्णिक छंद ।लोक में गाये जाने वाले ऐसे

मुक्तकों को किसी छंद के व्याकरण में लाना ठीक नहीं है। डॉ. जॉर्ज ग्रियर्सन ने याति पर विशेष रूप से ध्यान देते हुए उसके चरों चरणों के लिए अलग-अलग नियम निर्धारित किए थे। वस्तुतः बिरहा को मात्रिक छंद की कसौटी पर कसने का प्रयत्न समीचीन नहीं है।इससे बिरहा का कोई एक रूप निर्धारित नहीं हो किया जा सकता; क्योंकि खड़ी बिरहा का कोई निश्चित व्याकरण नहीं है।बिरहा शास्त्रीयता के बंधन से मुक्त रहा है। रामकृष्ण वर्मा 'बलबीर' ने भी 'बिरहा नायिकाभेद' नामक अपनी काव्य पुस्तिका में बिरहा का विवेचन मात्रिक छंद के रूप में की है।दूसरे लोकगीतों की तरह लोकगायक बिरहा को भी अपनी सुविधानुसार कम-ज़्यादा मात्रा करके गा लेते हैं।उच्च जाति के लोग इसे 'गँवारों का गीत' कह कर इसकी उपेक्षा करते थे, लेकिन डॉ. कृष्णदेव उपाध्याय को इसमें रीतिकालीन कवि बिहारी के दोहों जैसी कविताई दिखी।'लोक साहित्य की भूमिका' में उन्होंने लिखा कि 'बिरहे बिहारी के दोहों के समान हृदय पर सीधे चोट करते हैं ट' निस्संदेह उपाध्याय जी बिरहा की तुलना बिहारी के दोहों से करके बिरहा के काव्यत्व को रेखांकित किया है। आपको बता दें कि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने 'हिंदी-साहित्य का आदिकाल' पुस्तक में इस बात का उल्लेख किया है कि प्राकृतपैंगलम् में जिस 'आभीर' या 'अहीर' छंद का की बात की गई है उसका संबंध दोहा से हो सकता है।फिर उन्होंने लिखा है कि 'आधुनिक अहीरों के अत्यंत प्रिय बिरहा-गान का खाका मूलतः दोहा छंद ही है ट' (पृ. ९९) हिंदी के पाठक भलीभांति जानते हैं कि सातवीं शताब्दी से अपभ्रंश के तीन क्षेत्रीय रूपों से हिंदी भाषा का विकास हुआ।स्पष्ट है कि इसी के आसपास हिंदी लोकगीत भी अस्तित्व में आए होंगे।दोहे का आधार लेकर आभीरों द्वारा जिस लोकगीत की शुरुआत हुई, उसे बिरहा कहा गया।संभव है, आभीर या अहीर चरवाहों और कृषकों का यह गीत अपभ्रंश भाषा के आरंभ के साथ (ईसा की पहली शताब्दी) ही शुरू हो गया हो।यह मान लेने पर बिरहा हिंदी का सर्वाधिक प्राचीन गीत हो सकता है।संभवतः यही कारण है कि बिरहा आरंभ से लेकर अब तक कृषि और चरवाहा संस्कृति तथा उनकी भावना-संवेदना से जुड़ा रहा है।इसमें उनके हर्ष-विषाद और प्रेम-श्रृंगार की सम्यक अभिव्यक्ति होती रही है। यद्यपि समय-समय पर इसका वर्ण्य विषय व्यापक होता गया, किन्तु इसका रूप दोहे जैसा ही बना रहा; जैसे–

एक त महँग भइलैं कजरा-टिकुलिया,
दुसरे कड़ुअवा क तेल।
तिसरे महँग भइलैं ननदी के बिरना,
सुतीला सेजरिया अकेल त।

इस बिरहा गीत की व्यंजना देखिए।लोक कवि ने इसमें कितनी कुशलता से पति से वियुक्त युवा स्त्री की कामेच्छा को व्यक्त कर दिया है।पति के 'महँगा' होने की यह व्यंजना हिंदी साहित्य में दुर्लभ है।

एक बिरहा में तो रहीम के उस बरवै जैसे भाव की अभिव्यक्ति हुई है, जिसमें सामाजिक बंधन और मर्यादा के कारण एक नवविवाहिता की अपने पति से मुलाकात रात में तो होती थी, किन्तु दिन में वह उसे नहीं देख पाती थी। इसलिए लम्बे समय तक उसने अपने पति का चेहरा ही नहीं देखा था।संयोग से एक दिन उस घर में आग लग गई। घर में आग लगना किसी के लिए अच्छा नहीं हो सकता, किन्तु उस कुलवधू के लिए यह घटना किसी सौभाग्य से कम नहीं थी। दिन में न सिर्फ उसने अपने पति को जी भर के देखा, वरन अपने पति को पानी से भरा घड़ा थमा-थमा कर आग बुझने में मदद भी की–

आगि लाग घर जरि गा, बिधि भल कीन्ह।
पिउ के हाथ घइलवा भरि भरि दीन्ह।।

और लोक कवि ने बिरहा बनाया–

रतियैं अइलै बिरतियै चलि गइलैं
ना चिन्हली करिया कि गोर !
एक बेर आ जाता ठीक दुपहरिया में
देखि लेइंत दुलहा सुरतिया तोर।

जिस खड़ी बिरहा में लोक कवि कम शब्दों में भी बड़ी-बड़ी बातें कह दिया करते थे, उस खड़ी बिरहा का आज कोई नामलेवा नहीं है।

खड़ी बिरहा चार चरणों का मुक्तक छंद है।इसमें लोक कवियों के भाव-विचार और संवेदनाएं अत्यंत सुन्दर ढंग से व्यक्त हुए हैं।वे ओज और माधुर्य गुणों से युक्त हैं। आधुनिक बिरहा खड़ी बिरहा से बिलकुल भिन्न है।यह कथात्मक है।इसमें अनेक विविध छंदों और धुनों का प्रयोग करते हुए किसी सामाजिक-सांस्कृतिक, ऐतिहासिक या पौराणिक घटना, समस्या, कथा-प्रसंग या चरित्र के बारे में लिखा और गाया जाता है। इसकी शुरुआत लोक कवि बिहारी ने लगभग सौ साल पहले की थी। गड़वा घाट मठ से जुड़ने के बाद उन्होंने स्वामीजी की प्रेरणा और उनसे प्राप्त

ज्ञान को बिरहा में उन्होंने ढाला ट

भक्ति काल और कबीर-रैदास के बाद संत मत की परंपरा में अनेक संत कवि हुए ।उनमें यारी साहब, दरिया साहब, बूला साहब, दया बाई, सहजो बाई, भीखा साहब प्रमुख हैं ।पूर्वांचल और देश के अन्य क्षेत्रों में आज भी निर्गुनिया संत मौजूद हैं ।गड़वा घाट मठ में भी उसी निर्गुण निराकार ब्रह्म की उपासना की जाती है, जिसकी उपासना निर्गुनिया संत करते हैं ।बिहारी ने अनेक वर्षों तक स्वामी जी से ब्रह्म, जीव, जगत और माया के बारे में सुना था ।बिहारी के बिरहों को देखने से साफ़ पता चलता है कि उन्होंने प्रवचन में मिले ज्ञान को आत्मसात कर लिया था ।अपने बिरहों में बिहारी एक तत्वदर्शी के रूप में दिखाई देते हैं। एक अशिक्षित सामान्य कारीगर के इन बिरहों को पढ़ कर किसी भी प्रबुद्ध व्यक्ति को आश्चर्य हो सकता है कि क्या इस तरह का तात्त्विक विवेचन और दार्शनिक बातें एक राजमिस्त्री ने लिखी हैं ! और तो और, उनके बिरहों में योग साधना, कुण्डलिनी जागरण, शून्य समाधि और षट्चक्रों की भी चर्चा है ।इसके अलावा उनके एक बिरहे में श्रीकृष्ण संबंधी पौराणिक प्रसंग का विस्तृत उल्लेख है ।एक बिरहे का विषय सूरदास के प्रसिद्ध पद 'अबकी राखि लेहु भगवान' से मिलता-जुलता है ।बहुत संभव है कि बिहारी ने सूरदास के उसी पद से प्रेरित होकर इस बिरहे की रचना की हो ट

अब बिहारी के बिरहों पर बात करते हैं ।उनका एक बिरहा है–

मरन-जियन का जोग, जानता है कोइ बिरलै लोग
मरना-जीना देखली सबही के नगीच ।

कवि कहता है कि जीवन-मृत्यु का ज्ञान सभी को है ।मैंने जीवन-मृत्यु को सभी के नज़दीक देखा है ।कोई इस पर ध्यान ही नहीं देता है ।सांसारिक लोगों के आलस्य, उनकी लापरवाही तथा अज्ञानता पर जैसे कबीर कह रहे हों कि 'सुखिया सब संसार है, खावे अरु सोवे ट' मनुष्य के सांसारिकता में लीन होने का कारण क्या है? बिहारी कहते हैं कि किसी को अपने मन पर नियंत्रण नहीं है ।कहा भी गया है–'मन एव मनुष्याणां कारणं बंधनमोक्षयोः ट' मन चंचल है, इसे कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा था और पूछा था कि चंचल मन को रोकना वायु से भी अधिक दुष्कर है ।इसे कैसे रोकें–

चंचलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद्दृढम् ।
तस्याहं निग्रहं मन्ये वायोरपि सुदुष्करम् ।

इस पर कृष्ण ने अर्जुन से कहा कि मन को बलपूर्वक रोको ।बिहारी ने टेरी में लिखा–मन को मारो मरने वाले तब मर जाना सूझेगा ट

कवि औपनिषदिक चिंतन को बिरहा में ले आया है ।कहता है, मन और माया नहीं मरते, बल्कि यह शरीर मरता है ।यह सारा जीवन माया के कारण सुख-दुःख, आशा-तृष्णा और कर्म के बंधन में बँधा है ।इस शरीर में ही समूचा ब्रह्माण्ड समाया है ।अर्थात जीव ब्रह्म से अभिन्न है ।लोक कवि बिहारी का यह विचार 'न खलु सर्वमिदं ब्रह्म' का भाष्य प्रतीत होता है ।ब्रह्म अंशी है और जीवात्मा उसका एक अंश ।माया-भेद से जीव ब्रह्म से विरत हो जाता है, लेकिन जब वह ज्ञान, प्रेम या साधना से माया के बंधन को तोड़ देता है तब ब्रह्म से एकाकार हो जाता है ।यही अद्वैत की स्थिति है ।इसी को बताने के लिए बिहारी ने योग की बात की है ।कहते हैं कि इसी काया में मानसरोवर (सहस्रार चक्र) है ।इसी में हंस (आत्मा) निवास करता है ।हानि-लाभ की बात करने वालों की क्षुधा और तृषा कभी नहीं मिटती ।तीनों गुणों से लिपटा यह जीव त्रिविध तापों को सहता रहता है ।यह जीव बार-बार मरता है ।असली मृत्यु तो निरंजन के साथ होती है ।निरंजन के साथ मृत्यु से आशय ब्रह्म में विलय से है ।विलय अर्थात जीव का ब्रह्म से एकाकार होना ।दूसरे शब्दों में वह साधक जो कैवल्य को प्राप्त कर चुका हो, वह मर कर भी नहीं मरता है ।कबीर ने कहा–हरि मरिहैं तो हमहूँ मरिहैं ।हरि न मरैं हम काहे को मरिहैं ।

इस बिरहा में लोक कवि बिहारी ने षट्चक्र, बंकनाल और सहस्रार चक्र का उल्लेख किया है ।देखिए–

नाभी ऊपर अगिन, पवन, जल
जल में कमल की नल्ली ।
नल्ली से जल ऊपर चढ़ता
जीव को होय तसल्ली ।
बल्ली बंक नाल की अहंकार अस्थाना सूझेगा ।
मन को मारो मरने वाले तब मर जाना सूझेगा ट

योग भारतीय षड्दर्शन का छठवाँ दर्शन है ।इसके प्रवर्तक महर्षि पतंजलि हैं ।चित्त या मन की स्मरणात्मक शक्ति की वृत्तियों को सभी बुराइयों से दूर कर, शुभ गुणों में स्थिर करके, परमेश्वर के समीप अनुभव करते हुए मोक्ष प्राप्त करने के प्रयास को योग कहा जाता है ।यह दर्शन व्यावहारिक और आध्यात्मिक दोनों है ।योग जीवात्मा का

सत्य के साथ संयोग का एक उपाय है ।मध्यकालीन धर्मसाधना में तांत्रिकों, अघोरियों और नाथपंथी योगियों का वर्चस्व रहा है । नाथपंथ में हठयोग को महत्व दिया गया ।योगसाधना में कुंडलिनी-जागरण आवश्यक है ।सामान्य जीवों में कुंडलिनी सुषुप्तावस्था में रहती है । योगी या साधक योग साधना के द्वारा कुंडलिनी को जगाता है। मनुष्य के शरीर में जहाँ मेरुदंड समाप्त होता है, वहाँ पायु और उपस्थ (लिंग और गुदा) के बीच एक त्रिकोण है ।इसी में एक स्वयंभू लिंग अवस्थित है ।इसे अग्नि चक्र कहते हैं ।त्रिकोण या अग्निचक्र में स्थित स्वयंभू लिंग को कुंडलिनी साढ़े तीन वलयों (वृत्तों) में लपेटकर सर्पिणी की भाँति अधोमुखी होकर अवस्थित है ।अग्निचक्र के ऊपर क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्र हैं ।इनमें से प्रथम पाँच चक्रों का संबंध अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश तत्व से है ।योगी या साधक जब साधना करता है तो यह कुंडलिनी जागृत होकर ऊर्ध्वमुखी होती है और क्रमशः एक-एक चक्र को पार करती हुई आज्ञा चक्र में पहुँचती है ।यहाँ त्रिपुर सुन्दरी का वास है ।कुंडलिनी यहाँ से ऊपर उठती है तो आज्ञा चक्र में एक स्फोट होता है ।इसके बाद कुंडलिनी सहस्रार चक्र में पहुंच जाती है ।सहस्रार चक्र को गगन, शून्य और कैलाश भी कहते हैं ।कबीर जब कहते हैं कि 'रस गगन गुफा मैं अजर झरे' तो वे उसी सहस्रार चक्र की बात कर रहे होते हैं ।यहाँ पहुँच कर योगी को अलौकिक प्रकाश दिखाई देता है और नाद सुनाई पड़ता है ।यह नाद अखंडित और अबाधित होता है, इसीलिए इसे अनाहत नाद कहते हैं ।यही अनाहत नाद कबीर के यहाँ जाकर 'अनहद नाद' हो गया ।इस अवस्था में भी साधक लगातार मन्त्र-जाप करता रहता है ।इसे 'अजपा जाप' कहते हैं ।यहाँ पहुँच कर योगी परम सुख का अनुभव करता है और ब्रह्म-रस का पान करता है ।साधक की सिद्धि की यही अवस्था है ।कुंडलिनी के सहस्रार चक्र में पहुँच जाने के बाद दसवाँ द्वार (ब्रह्मरंध्र) खुल जाता है और योगी का संबंध ब्रह्म से जुड़ जाता है ।जीव और ब्रह्म की यह अद्वैत स्थिति है ।संत मत में सहस्रार चक्र के भी ऊपर 'सुरतिकमल' नाम के आठवें चक्र की कल्पना की गई है ।कहा जाता है कि सहस्रार चक्र तक पहुँचे हुए योगी का चित्त व्युत्थान-काल में (समाधि टूटने के बाद) फिर वासना का शिकार हो जाता है, लेकिन सुरतिकाल में विलास करने वाले संत का चित्त इस खतरे से निश्चिंत रहता है ।कही-कहीं साधना ग्रंथों में कुंडली योग को हठयोग से भिन्न माना गया है ।लोक कवि बिहारी ने लिखा–

नाभी ऊपर अगिन, पवन, जल
जल में कमल की नल्ली ।
नल्ली से जल ऊपर चढ़ता
जीव को होय तसल्ली ।
बल्ली बंक नाल की अहंकार अस्थाना सूझेगा ।
मन को मारो मरने वाले तब मर जाना सूझेगा ।

इसमें प्रयुक्त 'बंक नाल' सुषुम्ना नाड़ी है ।मेरुदंड में तीन नाड़ियाँ हैं–इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना ।इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना को चन्द्र, सूर्य और ब्रह्मा नाड़ी भी कहते हैं ।सुषुम्ना सबसे सूक्ष्म नाड़ी है, लेकिन इसके भीतर भी इंद्रा और वज्रा नाम की दो सूक्ष्म नाड़ियाँ होती हैं ।कुंडलिनी इसी से सहस्रार चक्र में पहुँचती है ।

यह क्रिया आसान नहीं है ।इसमें अनेक कठिनाइयाँ हैं ।सबसे बड़ी कठिनाई तो माया है ।संतों ने माया को डाइन कहा है–

हमारै गुर दीन्हीं अजब जरी ।
डाइन एक सकल जग खायो, सो भी देखि डरी ।

लेकिन सजग साधक माया को मार करके ब्रह्मलोक (शून्य, सहस्रार चक्र) में पहुँच जाता है ।इस बिरहे में बिहारी ने इन सभी का वर्णन किया है ।उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि सत्संगति के बिना निर्गुण को जानना और उसका गान करना संभव नहीं है ।बिहारी अपने को 'मुर्शिद' कहते हैं और बताते हैं कि सद्गुरु की कृपा से उनकी काया अलौकिक प्रकाश से भर गई है ।बिरहा में भणिता (छाप) देने की प्रथा भी यहीं से शुरू हुई है–

बिहारी मुर्सिद है मसहूर
चमकते गढ़ काया में नूर ।
इ हजूर बसै सबके घट बीच
मरना-जियना देखली सबही के नगीच ट

निर्गुनिया संतों की तरह बिहारी ने भी नागिन का प्रतीक रूप में प्रयोग किया है ।

एक दूसरे बिरहे में बिहारी ने निर्गुण ब्रह्म और उसके क्रियाकलापों का वर्णन किया है ।पहले वे बताते हैं कि ईश्वर निराकार है ।वह कहाँ रहता है, उसका कुछ पता-ठिकाना नहीं है ।दरअसल वह एक है और अलक्ष्य है ।एक जगह बैठा-बैठा वह कोंहारी (सृजन) करता है और तरह-तरह के बर्तन गढ़ता है ।

यह बिरहा कथात्मक है । इसमें एक स्त्री अपनी

ननद से उस एक कुम्हार (सृजनकर्ता) के सारे खेल दिखाने का आग्रह करती है ।फिर वह उसके एक-एक सृजन का उल्लेख स्वयं करती है और फिर ननद से कहती है कि मुझे उस सिरजनहार के खेल दिखाना जिसने इस पूरी दुनिया को गढ़ा है ।सबसे पहले वह बताती है कि उस ईश्वर ने एक ही मिट्टी से एक रंग के पानी में गूँथकर हम सब को बनाया है–

एकी कोंहरा एक दर बइठल एकी चाक चलाई ।
एकी सोंटा लिए हाथ में करता खुब चतुराई ।
भाई एक रंग पानी में एक मिट्टी साना ननदी ।
हमको एकी कोंहरा के सब खेल दिखाना ननदी ।

इसके बाद वह बताती है कि उस एक मिट्टी से उसने स्त्री-पुरुष को बनाया ।वह समान रूप से दोनों में समाया हुआ है ।उसकी नज़र में स्त्री-पुरुष दोनों बराबर हैं ।तीसरी बात वह बताती है कि उस एक ईश्वर ने त्रिदेवों की रचना की और उन्हें सृजन, पालन और संहार का दायित्व सौंपा ।चौथी बात यह कि, उसने चार वर्ण और चार जातियाँ बनाईं ।उसने अंडज-पिंडज और दूसरे अन्य सभी जीव बनाए, दिग्गज बनाए ।यह पूरा वितान उसी का ताना हुआ है ।उसने कुम्हार को गुरु बनाया ।पाँचो शत्रुओं को वश में करने के लिए जीवों को योग की शिक्षा दी और जब संसारिकता में डूबे रहने के कारण जीव की मैली काया योग साधना से शुद्ध हो गई तो जीव ने सिरजनहार को पहचान लिया । छठवीं बात, अष्टांग योग के सहारे इस भवसागर में पैठकर स्नान करो और मन को नियंत्रित करो ।सातवीं बात, सत्य की पहचान है ।यही साधक का परम लक्ष्य होता है ।जिस साधक को सत्य की प्राप्ति हो जाती है वह कभी नहीं मरता है ।आठवीं बात, ब्रह्मा के आठ आँखें हैं ।ब्रह्मा भी निराकार हैं ।अंगहीन होकर भी वे इन्हीं आँखों से पूरे ब्रह्माण्ड को देखते रहते हैं और आठों पहर सृजनरत रहते हैं ।सारा जहान उन्हीं का बनाया हुआ है ।नौवीं बात, ब्रह्म से मिलने के लिए उससे लौ लगाना पड़ता है ।यह बहुत कठिन है, लेकिन सच्ची साधना से उसको प्राप्त किया जा सकता है । ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि कुंडलिनी के सहस्रार चक्र में पहुँचने के बाद दसवाँ द्वार (ब्रह्मरंध्र) खुल जाता है और ब्रह्म से साधक का सीधा संबंध जुड़ जाता है ।उस कुम्हार के घर पहुँचने के बाद जीव को मोक्ष मिल जाता है–

नव रस्ता कोंहरा के मिलन के, जो कोई धावै पावै त
लौ के सीढ़ी लगावै तब कोंहरा के दरसन पावै ।
जावै कोंहरा के घर, आवागमन नसाना ननदी ।
हमको एकी कोंहरा के सब खेल दिखाना ननदी त

कबीर का एक मशहूर पद है 'रस गगन गुफा मैं अजर झरै ।' उसमें प्रकाश और नाद का उल्लेख करने के बाद कबीर कहते हैं कि–

दसवें द्वारे ताड़ी लागी अलख पुरुख जाको ध्यान धरै।

काल कराल निकट नहिं आवै, काम, क्रोध, मद, लोभ जरै ।

यह सब बताने के बाद वह स्त्री अपनी ननद से कहती है कि वह कुम्हार अरूप है, परन्तु सभी पर शासन करता है ।माया उसकी पत्नी है, जो घर-घर घूमती है ।मनुष्य उसका गुलाम है। वह उससे निश्चिंत रहता है ।वे मनुष्य कितने अनाड़ी हैं जो उस कोंहार को नहीं जानते ।लेकिन ज्ञानी पुरुष उस माया से दूर भागते हैं ।वे कष्ट सहकर और अच्छे कर्म करते हुए कोंहार को पाने की कोशिश करते हैं । बिहारी उस स्त्री से कहलवाते हैं कि तुम्हें अगम राह पर चलना है ।जीवन के अंत में कुछ नहीं बचता है ।पानी मिट्टी में मिल जाता एगा और पानी की जगह पानी की लहर रह जाएगी ।

इस गीत में एक लोक कवि की दार्शनिक चिंता और चेतना तो प्रशंसनीय है, लेकिन उसका यह कहना कि ईश्वर ने चार वर्ण और जातियाँ बनाया, ग़लत है ।इस जगह आकर वह पारंपरिक सोच का शिकार हो गया है, जबकि इसी बिरहे में उसने ईश्वर के सम्मुख सभी स्त्री-पुरुषों को समान बताया है ।

बिहारी का एक बिरहा सूरदास के मशहूर पद 'अबकी राखि लेहु भगवान' से प्रेरित है ।सूरदास के इस पद में पेड़ की डाल पर बैठा एक पक्षी दोहरी मुसीबत में फँसा है ।पेड़ के नीचे से बहेलिया उस पर निशाना साधे खड़ा है और ऊपर बाज बैठा है ।ऐसी स्थिति में अगर वह उड़ता है तो उसे बाज पकड़ लेगा और वहीं बैठा रहता है तो बहेलिया उसे मार देगा ।संकट की इस घड़ी में उसने भगवान से अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना की ।भगवान को याद करते ही एक साँप ने बहेलिये को डँस लिया ।साँप के डँसते ही बहेलिया हड़बड़ा गया और उसके हाथ से बाण छूट गया ।वह बाण पक्षी का शिकार करने के घात में बैठे बाज को लग गया । इस तरह ईश्वर ने उस आर्त और संत्रस्त पक्षी के दोनों शत्रुओं को मारकर उसकी रक्षा की ।

बिहारी के बिरहे में आम की डाल पर दो पक्षी सुखपूर्वक बैठे हैं ।घर से शिकार के लिए निकले एक बहेलिये की निगाह उन दोनों पर पड़ी ।उसने दो में से एक पक्षी को मारने के लिए बाण का निशाना लगाया और दूसरे को मारने के लिए एक बाज को छोड़ दिया ।इस संकट को देखकर मादा पक्षी ने नर पक्षी से कहा कि अब तुम जीवन से मुक्त होने वाले हो ।मादा की बात सुनकर नर ने कहा कि समय से पूर्व कोई किसी को नहीं मार सकता ।निर्धारित समय से पहले कोई इन्सान किसी दूसरे प्राणी की जान नहीं ले सकता ।ईश्वरी विधान पर इतना विश्वास होने के बावजूद उन दोनों पक्षियों के सामने भीषण संकट था ।नीचे बहेलिया निशाना लगाये खड़ा था और ऊपर बाज मँडरा रहा था ।इस घोर संकट से मुक्त होने का कोई उपाय न देखकर दोनों पक्षी रोने लगे कि हमसे भगवान भी रूठ गए हैं ।संकट के समय नर पक्षी को राम की याद आई ।राम को याद करते ही बहेलिये के पास एक काला नाग प्रकट हुआ और उसने उसे डँस लिया ।साँप के डँसते ही बहेलिये के हाथ से उसका बाण छूटकर बाज को जा लगा ।बिहारी कहते हैं कि पक्षियों ने सब्र से काम लिया और वे बच गए ।वास्तव में सब्र की मार से कोई नहीं बच सकता ।यही इस बिरहे का संदेश है।

मुझे लगता है कि सिर्फ भगवद्भक्ति कवि का उद्देश्य नहीं है । इसका एक लोक-पक्ष भी है ।जिस दौर में बिहारी यह बिरहा रच रहे थे, उस समय सामान्य जनता बदहाल थी और उस पर बहुत अत्याचार हो रहे थे ।सम्भव है बिहारी कहना चाहते हों कि एक तरफ अंग्रेज और दूसरी तरफ़ जमींदार असहाय जनता का शोषण-दमन कर रहे थे ।उनके अत्याचार से बचने के लिए उनके पास सब्र के सिवा कोई रास्ता नहीं था ।बिरहा में यह पक्षी के द्वारा साधारण जनता को दी गई सांत्वना है । यद्यपि इससे अत्याचारियों का कुछ नहीं बिगड़ने वाला था, फिर भी यह 'हारे को हरि नाम' जैसा था–

ऐसी हालत देख के पंछी रो रो करते बातें जी ।
नीचे देखो सजी तीर है ऊपर बाँझ मड़राते जी ।
नीचे जइबै तीर से मरिहैं ऊपर बाँझ के हाथे जी ।
एकदम हमसे रूस गइलैं करतार प्यारे साँवरिया ।
इतनी बातें देख के नर को राम नाम तब आई जी ।
जहाँ बहेलिया खड़ा वहाँ पर काला नाग देखाई जी ।
काला नाग डँस लिया बहेलिया गरल खाय गिर जाई जी।
हाथ से तीर छूट जाई तब बाँझ बदन लग जाई जी ।
कहैं बिहारी देख सबर कै मार प्यारे साँवरिया ।

लोक कवि बिहारी का एक बिरहा श्रीकृष्ण के बालपन की एक घटना पर आधारित है ।कृष्ण ने माँ से किसी चीज़ के लिए जिद किया ।माँ यशोदा ने उन्हें बहुत मनाया, बहलाया-फुसलाया, लेकिन वे अपनी जिद पर अड़े रहे ।जब कृष्ण ने देखा कि इच्छित वस्तु नहीं मिलेगी तो वे रोने लगे ।यशोदा उन्हें चुप कराने लगीं, मगर जब वे चुप नहीं हुए तो उन्होंने कृष्ण को एक काल्पनिक जानवर का नाम लेकर डराया और कहा कि अगर रोना बंद नहीं किया तो मैं तुम्हें 'घोंघर' से कटवा दूँगी ।बच्चों के ज़िद करने पर गाँवों में आज भी माँ-बाप या बड़े-बूढ़े छोटे बच्चों को किसी न किसी जानवर का नाम लेकर डराते हैं ।हमारे यहाँ पुराने लोग बच्चों से कहते हैं कि 'भकाऊँ' से कटवा दूंगा ।कृष्ण को चुप कराने के लिए यशोदा ने भी इसी तरह की युक्ति लगाई थी ।लेकिन कृष्ण तो कृष्ण थे ।वे 'घोंघर' से कब डरने वाले थे! कहा कि, मैंने बड़े-बड़े बलवान और भीषण असुरों का वध किया तब तो कहीं घोंघर नहीं दिखाई दिया ।आखिर यह है क्या बला?

कवि ने यशोदा को कृष्ण के अलौकिक रूप से अनभिज्ञ चित्रित किया है ।उनकी बिरहा के कृष्ण आदि से लेकर अपने इस जन्म तक की सभी बातों से परिचित हैं ।उन्होंने कहा कि माँ, जब मैंने मीन रूप धारण किया, कच्छप रूप में आया, परशुराम के रूप में अवतार लिया और सभी क्षत्रियों का वध किया, या राम रूप में जन्म लेकर ताड़का-सुबाहु और रावण को मारा तब तो यह 'घोंघर' कहीं नहीं दिखा ? इसके बाद कृष्ण ने रामावतार के समय की सभी मुख्य घटनाओं का उल्लेख करते हुए यशोदा से कहा कि मुझे किसी घटना के समय यह भयंकर जानवर नहीं दिखाई दिया ।आखिर यह है कौन-सा जानवर ? यहाँ तक तो ठीक है, किन्तु इस बिरहा में बिहारी ने कृष्ण से अपने वर्तमान समय की घटनाओं का उल्लेख करा दिया है ।इससे इस बिरहा में काव्यौचित्य दोष आ गया है ।क्या यशोदा इतनी भोली थीं कि उनके समय में घटित कृष्ण की इन बातों को भी नहीं समझ रही थीं कि यह बच्चा नानी के आगे ननिहाल का बखान कर रहा है ।और एक घटना तो उनके बालपन के बाद की है, जैसे कंस-वध–

देवकी गोद बंदीगृह जन्मे बेड़ी बंधल छुटल जहिया ।
बासुदेव के कंधे चढ़ के नंदगाँव अयली जहिया ।
जमुना जी के चरन छुवावल घोंघर ना देखल तहिया ।
पइठ पताल नाग के नाथल फन पर बंसी बजल जहिया ।

नागनाथ गोकुल में आके घर घर देखावल जहिया ।
लार पुल केतकी कै सवा भार कंस भयन गइली जहिया ।
कंसा कै देवी परगट भई जै जैकार मचल जहिया ।
नाना रूप धरे जग छान्यो घोंघर ना देखल तहिया ।

वास्तव में यह एक लोक कवि की रचना है ।लोक कवि प्रायः काव्य-गुण और काव्य-दोष की परवाह नहीं करते ।और जहाँ अध्यात्म और भक्ति का मामला हो, वहाँ तो वे विशेष छूट ले लेते हैं ।बिहारी ने भी विष्णु के अवतारी पुरुष श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन करते हुए उनकी अलौकिक शक्तियों की ओर संकेत किया है ।भक्ति-भावना के अतिरेक में वे भूल गए कि वे कृष्ण से उनके बचपन वाली घटनाओं का भी ज़िक्र करा रहे हैं ।लेकिन लोक की दृष्टि से देखें तो इस कमी के बावजूद यह एक अनोखा बिरहा है ।बिरहा या लोकगीत के श्रोता भी ऐसी बातों पर ध्यान नहीं देते हैं ।

यहाँ एक बात का उल्लेख कर देना आवश्यक है कि बिहारी ने प्रेम और श्रृंगार-आधारित बिरहों की रचना न के बराबर की है ।बिरहा के वरिष्ठ कवि-गायक श्री मंगल कवि से चर्चा के दौरान ये बातें सामने आईं ।बिहारी द्वारा प्रेम और श्रृंगार पर बिरहा न लिखने का क्या कारण हो सकता है, यह बता पाना मुश्किल है ।संभव है यह गड़वा घाट मठ के स्वामी का प्रभाव हो ! ऐसा इसलिए हो सकता है कि बिहारी लगभग आधी उम्र बीत जाने के बाद स्वामी आत्मविवेकानंद जी के सम्पर्क में आए, इसलिए उन पर निर्गुनिया संतों वाली बातों का ऐसा असर हुआ कि वे मन की कोमल वृत्तियों से विरत हो गए ।उन्होंने राष्ट्रीय चेतना और जनजागरण वाले गीत भी नहीं लिखे, जबकि यह उस समय की माँग थी ।

बिहारी के इन गीतों का शिल्प साधारण है ।इनमें एक छोटी-सी भूमिका के बाद एक टेरी दी गई है और उसके बाद कई-कई अंतरों का प्रयोग किया गया है ।अंत में 'छाप' देकर उसे टेरी के तुक से मिला दिया गया है ।एक बिरहे में उन्होंने 'तोड़' का प्रयोग किया है ।ये सभी बिरहे वर्णनात्मक शैली में हैं ।इनका रसास्वादन लोक के स्तर पर जा कर ही किया जा सकता है ।इनकी भाषा ठेठ भोजपुरी नहीं है ।तात्विक और दार्शनिक विषयों को व्यक्त करने के लिए उन्होंने भोजपुरी मिश्रित खड़ीबोली का प्रयोग किया है, जबकि श्रीकृष्ण वाले बिरहे में भोजपुरी का इस्तेमाल किया गया है ।भोजपुरी में खड़ीबोली के मिश्रण का कारण स्वामी जी के प्रवचन का प्रभाव प्रतीत होता है ।बिहारी के बाद बिरहा के अनेक अखाड़े बने ।रम्मन, गणेश, पत्तू, जगनू, शिवचंद मल्लाह, अम्बिका पंडित, रामजतन बिन्द और अकलू खलीफा उनके आठ शिष्य थे ।इन सभी शिष्यों के घराने चले ।इनमें से रम्मन, गणेश, पत्तू, अम्बिका एवं रामजतन के घराने कायम हैं ।इनके अलावा स्वतंत्र रूप से भी बिरहा का विकास हुआ ।इनमें दीन मोहम्मद, जै जखाड़ जद्दू और इलाहाबाद के बिरहा के घराने प्रमुख हैं ।बिहारी के कथात्मक बिरहों से प्रभावित होकर कजरी और शायरी वाले भी बिरहा की ओर उन्मुख हुए ।इन सभी अखाड़ों के कवियों ने बिरहा के शिल्प में बहुत कुछ जोड़ा, लेकिन उसका आधारभूत ढाँचा बिहारी वाला ही रहा । बिहारी के बाद के बिरहा के कवि-गायकों ने उनकी भोजपुरी -खड़ीबोली मिश्रित भाषा को अपनाया ।अवधी क्षेत्र के बिरहा गायकों और कवियों ने भी ऐसा ही किया है ।उनके बिरहों में भी खड़ीबोली और अवधी का मिश्रण है ।

प्रो. चन्द्रदेव यादव
हिंदी विभाग,
जामिया मिल्लिया इस्लामिया
नई दिल्ली-११००२५
ईमेल : cdsyadav@gmail.com

राहुल सांकृत्यायन की प्रासंगिकता

प्रो.शिवप्रसाद शुक्ल

हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
प्रयागराज- 211002
ईमेल : shukla.shiv67@gmail.com
मो. : 9409214619 / 7016394609

नवजागरण,स्वाधीनता आंदोलन एवं दो विश्वयुद्धों की उपज राहुल का वैश्विक दर्शन है, जहाँ लोग भौगोलिकता, नस्ल के आधार पर विश्व में घृणा फैला रहे थे,वहीं राहुल लोगों को विश्वबंधुत्व का पाठ पढ़ा रहे थे । मध्यदेश या उत्तर प्रदेश में जन्में रूढ़िवादी समाज के बाह्याडंबरों को ठेंगा दिखाते हुए विश्वभ्रमण की कोशिश के माध्यम से वैश्विक मानवीय ज्ञान को अर्जित करते हुए कई भाषाओं के साहित्य, दर्शन , कोश, धर्म , जाति का वृहद् अध्ययन किया। इसीलिए उनकी यायावरी वृत्ति के चलते लेखन की सच्चाई साफ परिलक्षित होती है। भले ही विश्वबंधुत्व का तमगा हिंदुस्तान के शेहरे पर मढ़ा जाता रहा हो लेकिन यहाँ की संकीर्णतावादी मानसिकता आज भी दिखाई देती है, राहुल जी एक ऐसे समाज में जन्म लिए जहाँ उनको कई मुसीबतों का सामना करना पड़ा, लेकिन वे आद्यंत घबड़ाए नहीं और विश्वमानवता के फलक को साकार करने के लिए समग्र जीवन खपा दिया।९ अप्रैल १८८३ ई० में ग्राम पंदहा ,आज़मगढ़ उत्तर प्रदेश ननिहाल में जन्म कुलवंती माँ पिता गोवर्धन पाण्डेय धार्मिक विचारों के गरीब किसान के यहाँ हुआ । माँ २८ वर्ष एवं पिता ४५ वर्ष में स्वर्ग सिधार गए तो स्वाभाविक है, कि केदार पांडेय उर्फ राहुल सांकृत्यायन का लालन -पालन नानी ही करेंगी । भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का १८८५ में स्थापित किया जाना ',राहुल का १८९८ ईस्वी में मदरसे में नाम लिखवाया गया जहाँ उर्दू सीखी । संगी - साथी सैयद शिया मुस्लिम एवं रानीसराय लोअर प्राथमिक विद्यालय में छात्रों को पूरी तरह पीटने वाले मास्टर बाबू पत्तर सिंह की स्मृति आद्यंत बनी रही । उनके चार भाई एवं एक बहन थी । बचपन में शादी होने से पहली पत्नी को कभी नहीं देखा। नौ वर्ष में घर छोड़कर बनारस आना, यायावरी करते हुए कलकत्ता जाना, १९०९ में गाँव लौटना , कलकत्ता फिर जाना नशीली मिठाई खाकर मेडिकल कॉलेज अस्पताल में भर्ती होना । बंगाल विभाजन , शिवशम्भू के चिट्ठे, १९११ में बंगाल के विलय को देखते हुए १९१२ -१३ में परसा मठ में साधु और संभावित मठाधीशी को ठुकराते हुए १९१३ -१४ में दक्षिण भारत की यात्रा ,१९२२ में बक्सर की जेल में ६ माह ',जिला कांग्रेस सचिव , १९२३ -२५ में हजारीबाग जेल में रहते हुए '२२वीं सदी ' लिखा १९२७ -२८ में श्रीलंका में संस्कृत अध्यापक ', बौद्ध

साहित्य का अध्ययन ,१९२९- ३० में तिब्बत में सवा वर्ष ',१९३२ -३३ में इंग्लैंड यूरोप की यात्रा , १९३४ में तिब्बत की दूसरी यात्रा ,१९३५ में जापान ,कोरिया ,मंचूरिया ,सोवियत रूस, ईरान की यात्रा के साथ १९३६ में तिब्बत की तीसरी यात्रा ,१९३७ में सोवियत रूस की दूसरी यात्रा ,१९३८ तिब्बत की चौथी यात्रा ', पुत्र ईगोर का जन्म ,१९३९ अमरावती में किसान सत्याग्रह एवं जेल , १९४० -४२ हजारीबाग जेल एवं देवली बंदी कैंप में ',१९४३ में गॉव वापस आना ,पहली पत्नी मिलने आई , उत्तराखंड की यात्रा ,१९४४-४७ सोवियत रूस में लेनिनग्राद में प्रोफेसर , १९४७-४८ हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग के मुंबई अधिवेशन के अध्यक्ष , १९५० मसूरी में मकान खरीदा और बाद में बेच दिया ', १९५३ में पुत्री जया का जन्म , १९५५ पुत्र जेता का जन्म , १९५८ चीन के गणवादी जनतंत्र में साढे चार मास , १९५९-६१ श्रीलंका में दर्शन के प्रोफेसर ,दिसंबर १९६१ में स्मृतिनाश ,१९६२-६३ सोवियत रूस में ७ महीने इलाज एवं १४ अप्रैल १९६३ को मृत्यु हुई ।लेनिनग्राद में १७ नवंबर १९३७ से १३ जनवरी १९३८ के बीच भारतीय तिब्बती विभाग के सचिव लोला संस्कृत तिब्बती कोश में राहुल से मैत्री उनसे ही ईगोर (जिसका नाम वह अग्नि रूसी ओगोन) नामक पुत्र ५ सितंबर १९३८ में हुआ ', लोला एवं ईगोर को हिंदी नहीं आती ,दोनों के पास राहुल की एक भी पुस्तक नहीं और वे दोनों भारत कभी नहीं आए । १९४०-४२ मोतिहारी किसान सम्मेलन की अध्यक्षता करते हुए पकड़े गए हजारीबाग एवं देवली जेल में डाल दिए गए । उसी समय यूनानी ,इस्लामी ,यूरोपीय ,भारतीय विचारधाराओं का विश्लेषणात्मक परिचय और मार्क्सवादी दृष्टि से समीक्षा करने वाला ग्रंथ 'दर्शन दिग्दर्शन ' में ३००० वर्षों के दार्शनिक ऊहापोह का बुद्धिवादी-मानवतावादी दृष्टिकोण से किया गया एक विराट सर्वाग्रही ऐतिहासिक प्रयत्न में हेगेल ,राजा राममोहन राय , मार्क्स,दयानंद , डेकार्ट ,स्पिनोजा लाक,बर्कले,वाल्टर ह्यूम ,रूसो, कांट, फिक्टे, शेलिंग, शौपेन हाउर, फ्यूएरबाख, स्पेंसर, एंजल्स, माख ,विलियम जेम्स, नीत्शे, ब्रैडले बर्गसॉ,व्हाइटहेट, लेनिन एवं रसेल के घाल मेल जखीरे को देख सकते हैं ।अनेक संस्कृत ,पालि ,अरबी ,फारसी ग्रंथों के साथ-साथ तीन भारतीय दार्शनिकों एस एन दास गुप्ता , राधाकृष्णन , एस सी विद्याभूषण के साथ ही मार्क्स, एंजेल्स, फ्यूरबाख और श्चेर्बास्की के पांच ग्रंथों का ही समावेश किया है।

उनके रचना संसार की विविधता उनके नौ उपन्यासों ' बाईसवीं सदी '१९२३ ,जीने के लिए १९४०, सिंह सेनापति १९४४ ,जय यौधेय १९४४ ,भागो नहीं, दुनिया को बदलो १९४४, मधुर स्वप्न १९४९ ,राजस्थानी रनिवास १९५३ , विस्मृतयात्री १९५४, दिवोदास१९६०, चार कहानी संग्रह :, सतमी के बच्चे १९३५ , वोल्गा से गंगा १९४४, बहुरंगी मधुपुरी १९५३, कनैला की कथा १९५५-५६,आत्मकथा : मेरी जीवन यात्रा पांच खंडों में पहला खंड १९४४ एवं दूसरा खंड १९५० तथा तीन खंड मरणोपरांत प्रकाशित हुए।उन्होंने लोगों की जीवनियां : 'सरदार पृथ्वी सिंह १९५५ ' नए भारत के नए नेता १९४२ (दो खंड),बचपन की स्मृतियां १९५३ ,अतीत से वर्तमान (खंड एक) १९५३ ,स्टालिन १९५४, लेनिन १९५४, कार्ल मार्क्स १९५४ , माओ -त्से -तुंग १९५४, घुमक्कड़ स्वामी १९५६, मेरे असहयोग के साथी १९५६, जिनका मैं कृतज्ञ हूं १९५६ ,वीर चंद्र सिंह गढ़वाली १९५६ ,सिंगल घुमक्कड़ जयवर्धन १९६० ,कप्तान लाल १९६१, सिंघल के वीर पुरुष १९६१, महामानव बुद्ध १९५६ ,यात्रा वृतांत में मेरी लद्दाख यात्रा १९२६ ,लंका १९२६-२७, मेरी यूरोप यात्रा १९३२, मेरी तिब्बत यात्रा १९३७, यात्रा के पन्ने १९३४ से ३६ ,जापान १९३५ ,ईरान १९३५-३६, रूस में पच्चीस मास १९४४-४७ , किन्नर देश१९४८ ,तिब्बत में सवा वर्ष १९३१ , घुमक्कड़ शास्त्र १९४९ , एशिया के दुर्गम भूखंडों में १९५६, चीन में क्या देखा?१९६०, निबंधों में साहित्य निबंधावली १९४९,पुरातत्व निबंधावली १९३६, दिमागी गुलामी १९३७,तुम्हारी क्षय '१९३७, आज की समस्याएं १९४४, साम्यवाद ही क्यों ?१९३४, अतीत से वर्तमान (खंड २) १९५३, भोजपुरी में तीन नाटक, पांच नाटक १९४२, तिब्बती में तिब्बती बाल शिक्षा १९३३ , पाठावली भाग (एक, दो,तीन) १९३३, तिब्बती व्याकरण १९३३ ,उनके वैश्विक ग्राम के व्यक्तित्व के साथ भाषिक संरचना का जीवंत वातावरण राहुल की प्रासंगिकता ही सिद्ध करते हैं ।

उन्होंने कई साहित्येतर कृतियों विज्ञान में विश्व की रूपरेखा १९४२ ,समाज विज्ञान में मानव समाज १९४२, राजनीति पर सोवियत न्याय १९३९ ,राहुल जी का अपराध १९३९ ,कम्युनिस्ट क्या चाहते हैं ?१९५३ ,क्या करें? १९३७ ,चीन में कम्यून १९६०, सोवियत कम्युनिस्ट पार्टी का इतिहास १९३९ , रामराज्य और मार्क्सवाद, दर्शन पर वैज्ञानिक भौतिकवाद १९४२, दर्शन -दिग्दर्शन १९४२, बौद्ध दर्शन १९४२, धर्म पर बुद्ध चर्या १९३०, धम्म १९३३, मज्झिम निकाय १९३३, विनय पिटक १९३४, दीघ निकाय १९३५, तिब्बत में बौद्ध धर्म १९३५, बौद्ध संस्कृति, इस्लाम धर्म की रूपरेखा १९२३, यात्रा पर सोवियत भूमि, सोवियत मध्य एशिया, दार्जिलिंग परिचय १९५० ,कुमायूं १९५१ ,गढ़वाल १९५२ , जौनसार - देहरादून १९५५, आजमगढ़ की पुरा कथा, हिमाचल प्रदेश १९५५ ,नेपाल १९५३ , कोश और शब्दावली पर शासन शब्दकोश १९४८, तिब्बती हिंदी-कोश भाग १ , साहित्येतिहास पर हिंदी काव्य धारा (अपभ्रंश) १९४४, दक्खिनी काव्य धारा १९५२ ,लोक साहित्य पर आदि हिंदी की कहानियां और गीतें १९५० ,शोध पर सरहपाद का दोहा कोश १९५४, इतिहास पर मध्य एशिया का इतिहास(खंड एक एवं दो) १९५२, ऋग्वैदिक आर्य १९५६, अकबर १९५६, भारत में अंग्रेजी राज्य के संस्थापक १९५७, पालि साहित्य का इतिहास, संकलन पर तुलसी रामायण संक्षिप्त १९५७, सूत्र-कृतांग(संपादित)संस्कृत, संस्कृत काव्य धारा १९५५, पालिकाव्य धारा, अनुवाद पर शैतान की आंख १९२३, विस्मृत के गर्भ में १९२३ ,जादू का मुल्क १९२३, सोने की ढाल १९२३, दाखुंदा १९४७, जो दास थे १९४७, अनाथ १९४८ ,संविधान का मसौदा १९४८, अदीना १९५१, सूदखोर की मौत १९५१ , शादी १९५२ के अलावा संस्कृत पाठ माला (पांच खंड)१९२८ अभिधर्मकोश १९३०, विज्ञप्ति मात्रता सिद्ध १९३४, हेतु बिंदु १९४४ ,संबंध परीक्षा १९४४, निदान- सूत्र(परीक्षा) १९५१ , महापरिनिर्वाण सूत्र १९५१, वाद न्याय, प्रमाण वार्तिक १९३५, प्रमाण वार्तिक भाष्य १९३५-३६ ,प्रमाण वार्तिक वृत्त १९३६, प्रमाण वार्तिक स्व -वृत्ति १९३६, प्रमाण-वार्तिक स्व -वृत्ति टीका १९३७ ,अध्याय शतक १९३५ ,विग्रह व्यवर्तिनी ,विनय सूत्र १९४३ आदि के माध्यम से भौगोलिक ,भाषिक ,सामाजिक, सांस्कृतिक समरसताओं को देख ,पढ़ ,सकते हैं।

वे संस्कृत, अरबी ,पाली, हिंदी, अपभ्रंश, हिंदी बोलियों .के साथ विदेशी भाषाओं को सीखा । 'कल्पने तू नित्य भटका कर, सुख नहीं घर में, अटकाकर ' के नारे से घुमक्कड़ शास्त्र को व्यावहारिक आयाम प्रदान करते हुए घुमक्कड़ राज नरेंद्र यश या घुमक्कड़ भट्ट दिवाकर या महा पर्यटक किंथुप या पर्यटक नैन सिंह ,फक्कड़ बाबा को रेखांकित किया है। उनको यात्री, स्वामी , भिक्षु , भदंत,महंत , परिव्राजक, ब्रम्हचारी , बाबा आदि नाम से लोग पुकारना पसंद करते हैं।' अतीत से वर्तमान 'और 'जिनका मैं कृतज्ञ हूँ ' नामक दो पुस्तकों में साधु ,विद्वान ,हिंदू ,सिख, बौद्ध, जैन ,ईसाई और नास्तिक रूप भी देखने को मिलता है ।आचार्य नरेंद्र देव के बारे में लिखते हैं : 'नरेंद्र देव जी बुद्धिवादी थे और आखिर तक बुद्धिवादी रहे ।ष्ठष्ठचोंच पंथ के पैगंबर आचार्य जी थे ,लेकिन इस पंथ में पैगंबर और अनुयायियों में १००- ५० गज तो दूर २ इंच का भी अंतर नहीं था ।ष्ठ..आचार्य नरेंद्र देव विद्वान, गंभीर चिंतक, विनोदी होने के साथ-साथ आदर्शवादी थे ।ष्ठ..हमेशा मार्क्सवादी समाजवादी रहे ।इसमें हम दोनों एकमत थे। यद्यपि मुझे कम्युनिज्म ने आकृष्ट किया और वह सोशलिस्ट थे। दोनों पार्टियों के संबंध अच्छे नहीं रहे, तो भी हमारे वैयक्तिक संबंध में कोई अंतर नहीं आया।ष्ठ.. नमक सत्याग्रह के समय मैं काशी विद्यापीठ में था। सलाह हुई ,कि मार्क्स की 'कम्युनिस्ट घोषणा 'का हिंदी में अनुवाद किया जाए ।दोनों ने मिलकर अनुवाद किया ।उसके कुछ फॉर्म प्रेमचंद जी के प्रेस में छपे भीष्ठष्ठ'१

' मैंने पहले पहल महमूद को देवली कैंप जेल में देखा था।....लेखनी में शक्ति थी, पर उसका भी उपयोग वह बड़े संयम से करते थे... देवली कैंप में रहते पुस्तक लिखने के लिए मुझे कुछ ऐसी पुस्तकों की आवश्यकता थी, जो हमारे बड़े-बड़े पुस्तकालयों में भी दुर्लभ थी। महमूद उन्हें पढ़ चुके थे और उन्होंने पुस्तकें मेरे पास भेजी । महमूद अत्यंत मधुर थे।... वह कम्युनिस्ट थे , कम्युनिस्ट का जैसा रुखा- सूखा चित्र लोगों के सामने रखा जाता है ,उसे देखकर कोई विश्वास भी न करता कि कम्युनिस्ट ऐसा हो सकता है ।ष्ठ..कितने ही समय तक वह पंडित

जवाहरलाल नेहरू के प्राइवेट सेक्रेटरी रहे। मान- सम्मान ,प्रभुता - वैभव उनको अपनी तरफ खींच नहीं सकते थे । जहां अपने आदर्श और सिद्धांत का सवाल आता वहां पर जरा भी झुकने के लिए तैयार न थे।'२

राहुल जी ने लिखा है :'अलेक्सी पेत्रोबिच बरान्निकोव को भारत के लोग उतना नहीं जानते ,जितना की जानना चाहिए ।लल्लू लाल जी के 'प्रेम सागर ' और तुलसी के' रामचरितमानस' का उन्होंने रूसी में बहुत ही सुंदर अनुवाद किया है ।तुलसीकृत रामायण के अनुवाद करने में केवल अपनी विद्वता का ही नहीं बल्कि श्रद्धा का भी उन्होंने खूब परिचय दिया है ।उन्होंने तुलसी के अमर काव्य को पद्यबद्ध करते हुए यह भी कोशिश की कि चौपाई दोहा और दूसरे पद उतने ही अक्षरों वाले रूसी छंदों में अनुवादित किया जाएं ।जिस समय पुस्तक प्रेस में थी और उसके लिए चित्रों का चुनाव हो रहा था, उस समय इन पंक्तियों का लेखक भी लेनिनग्राद में था, और अनेक बार चित्रों और दूसरी बातों के संबंध में हमारी बातें होती थी । अभी उस समय भारत के साथ रूस का राजनीतिक संबंध स्थापित नहीं हुआ था, इस कारण हमारे यहां से उनको उतनी सहायता भी नहीं मिल सकती थी ।जब एक दो रामायण की पुरानी सचित्र प्रतियों के बारे में मालूम हुआ, तो बरान्निकोव ने बहुत कोशिश की कि रूसी अनुवाद में वही चित्र दिए जाएं। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने इसके बारे में उनकी सहायता की थी ,जिसके लिए बहुत कृतज्ञ थे। वे बड़े भाषाविद् थे ।उन्होंने मुझे बताया कि सिगान (जिप्सी) रोमनी-डोमनी भाषा बोलते थे और वह भारत आए थे।'३

राहुल की विश्व बंधुत्व भावना काफी विराट थी ।वे नेपाली महाकवि देवकोटा के बारे में लिखते हैं कि' जनवरी १९५३ में मैं(राहुल) पांचवीं बार नेपाल गया । और मेरा स्वागत करते हुए 'विदेशी अतिथि 'शब्द प्रयुक्त किया। मैं उसे एक विदेशी नहीं मान सकता। उसी हिमाचल के वरपुत्र हमारे पंत हैं ,जिसके दूसरे श्रेष्ठ पुत्र महाकवि लक्ष्मी प्रसाद देवकोटा हैं। महाकवि देवकोटा में हम नेपाली के 'पंत-प्रसाद-निराला ' को पूर्ण रूप से पाते हैं ।'निराला ' के कुछ और गुण भी उनमें मौजूद हैं , यद्यपि उतनी मात्रा में नहीं ।असाधारण प्रतिभा कभी-कभी पागलपन की सीमा रेखा को मिटाती दीख पड़ती है वही बात देवकोटा के बारे में भी है ।उन्होंने नेपाली और अंग्रेजी में सब मिलाकर ,आज ४४ वर्ष की आयु में ८० पुस्तक लिखी ,जिनमें से २६ खो गई या फाड़ डाली। १९३४ में उनकी 'गरीब' नामक पहली कविता प्रकाशित हुई । उसी वर्ष उन्होंने 'मुन्नामदन' ग्राम खंडकाव्य लिखा । इस खंडकाव्य में प्रकाशित दृश्यों का और नायक की तिब्बत यात्रा का सुंदर वर्णन है । उन्होंने कविताएं ,कहानियां ,नाटक, निबंध लिखे । वे भाषा के जादूगर हैं ।अपनी भाषा को उन्होंने कई नए शब्दों से समृद्ध किया।'४

राहुल के श्रीमुख एवं लेखनी से यह पता चला कि 'यात्री लोग यात्रा के बारे में पूछा ही करते हैं और हर यात्री श्रोताओं की जिज्ञासा पूरी करने के लिए कुछ कहता भी है ।१९१५ में मैं आगरे में था । वहां मैं उपदेशक बनने गया थाष्ठ. वहां से एक उर्दू अखबार निकलता था , उसी में खंडन-मंडन के रूप में आर्य समाज ढंग का कोई लेख पहले- पहल मुझे लिखने के लिए कहा गया । १९१५ ईस्वी में ही मैंने पहला हिंदी लेख जो कि आधा कहानी और आधा यात्रा के रूप में था अधिकतर यात्रा वर्णन जैसा ही । ३७ वर्ष हो गए उसके बाद मैं फिर उस लेख को नहीं देख पाया ।....१९२१ ईस्वी में असहयोग आंदोलन में तथा राजनीतिक क्षेत्र में मैं काम करने लगा। १९२१ के अंत में सजा हुई और ६ महीने के लिए जेल चला गया । १९१८- १९ में रूसी क्रांति की जो खबरें निकलती ,उनमें कल्पना का नमक मिर्च लगाकर मैंने अपने मन में एक साम्यवादी दुनिया की सृष्टि कर ली थी। उसी दुनिया को मैं कागज पर उतारना चाहता था।..... इस प्रकार संस्कृत पद्यबद्ध कथा लिखने का काम शुरू किया ; बक्सर की पहली जेल-यात्रा में जिस कथा को मैंने संस्कृत काव्य के पांच सर्गों तक पहुंचाया था ,अब उसे बेकार समझ उसकी जगह मैं 'बाइसवीं सदी' लिखी। जेल में मैंने चार अंग्रेजी उपन्यास भावानुवाद करके भौगोलिक और वैयक्तिक तौर से उनका बहुत कुछ भारतीयकरण कर दिया । ...१९३४ ईस्वी में कुछ वास्तविक घटनाओं को लेकर कहानियां लिखने की इच्छा हुई और एक-एक करके मैंने उन कहानियों को लिखा जो 'सतमी के बच्चे' में संग्रहीत हैं।...१९३८ में मैंने' जीने के लिए ' नामक अपना पहला उपन्यास

लिखा ।.... १९४१ या ४२ में श्री भगवत शरण उपाध्याय की कुछ ऐतिहासिक कहानियों को मैंने देखा। यदि भगवत शरण जी ने ऐतिहासिक कहानियों को परिमित संख्या में लिखकर प्रकाशित करवा दिया होता, तो शायद 'वोल्गा से गंगा' लिखने में मैं हाथ नहीं डालता ।ष्ठ..१९४२ ईस्वी में हजारीबाग जेल में रहते हुए मैंने 'वोल्गा से गंगा' की २० कहानियां लिख डाली।..... मैं अपनी कहानियों में किसको सबसे अच्छी समझता हूँ, यह कहना मेरे लिए मुश्किल है।' वोल्गा से गंगा ' की कहानी 'प्रभा' को श्रेष्ठ कहते पहले मैं दूसरों को सुना, और सुन सुनकर ही मेरा भी उसके बारे में वही धारणा हो गई, नहीं तो इस संग्रह की' नागदत्त ','प्रभा 'और 'सुरैया' इन तीनों में मैं कम ही अन्तर मानता हूं।'५

' वोल्गा से गंगा 'राहुल का कीर्तिमान कथा साहित्य है तो २३ जून १९४२ की प्रथम संस्करण की भूमिका दृष्टव्य है : 'मानव आज जहां है ,वहां आरंभ में ही नहीं पहुंच गया था; इसके लिए उसे बड़े-बड़े संघर्षों से गुजरना पड़ा। मानव समाज की प्रगति का सैद्धांतिक विवेचन मैंने अपने ग्रंथ 'मानव-समाज' में किया है। इसका सरल चित्रण भी किया जा सकता है ,और उसमें प्रगति को समझने में आसानी हो सकती है, इसी ख्याल ने मुझे 'वोल्गा से गंगा' लिखने के लिए मजबूर किया । मैंने यहां हिंदी यूरोपीय जाति को लिया है ,जिसमें भारतीय पाठक को सुभीता होगा। मिश्री , सूर्यानी या सिंधु-जाति,विकास में ,हिंदी-यूरोपीय जाति से सहस्त्राब्दियों पहले अग्रसर हुई थी , किंतु उनको अपना लेने पर लेखक और पाठक दोनों की कठिनाइयां बढ़ जाती है। मैंने हर एक काल के समाज को प्रमाणित तौर से चित्रित करने की कोशिश की है ,किंतु ऐसे प्राथमिक प्रयत्न में गलतियां होना स्वाभाविक है ।यदि मेरे प्रयत्न ने आगे के लेखकों को ज्यादा शुद्ध चित्रण करने में सहायता की ,तो मैं अपने को कृत-कार्य समझूंगा। 'बंधुल मल्ल ' (बुद्ध) के काल पर मैंने एक स्वतंत्र उपन्यास 'सिंह सेनापति' लिखा है।'६

इस पुस्तक में भारतीय इतिहास के ८००० वर्ष अज्ञात अंधेरे प्राचीनतम काल से १९४२ तक के फलक को पहली बार चार कहानियां प्रागैतिहासिक कालखंड से सम्बद्ध 'निशा' 'दिवा' 'अमृताश्व' और 'पुरुहत' ईसा पूर्व ६००० से २६०० ई तक की कथाएं हैं ।इसीलिए भदंत आनंद कौशल्यायन लिखते हैं कि ' यद्यपि इन कहानियों की पुनर्रचना में कल्पना का सहारा लिया गया है, फिर भी निरी फंतासिया नहीं हैं ।इन कहानियों में जो विशेषताएं हैं वह राहुल के यूरोपीय और भारत-ईरानी शब्द शास्त्र और ऐतिहासिक भाषा विज्ञान के गहरे अध्ययन का फल है ।' सुदामा की कथा ऋग्वेद,बंधुल मल्ल बौद्ध कथा , नाग दत्त कौटिल्य के अर्थशास्त्र ,काशी प्रसाद जायसवाल के 'Hindu Polity' को, 'प्रभा' अश्वघोष के 'बुद्धचरित 'एवं 'सौंदरानंद 'पर लिखा। इस बात को व्हिस डेविट्स की 'बुद्धिस्ट इंडिया' से तस्दीक किया जा सकता है। 'सुपर्ण यौधेय ' कालिदास की कविता ,'दुर्मुख' बाणभट्ट के हर्ष चरित्र एवं कादंबरी,' चक्रपाणि' नैषध पर बीस में से १४ कहानियां संस्कृत ,पालि को आधार बनाकर लिखा है। अलाउद्दीन खिलजी के राज्यकाल की पार्श्व भूमि 'बाबा नूरुद्दीन' अकबर की उदार दृष्टि 'सुरैया',' रेखा भगत' में ब्रिटिश राज की गड़बड़ियों पर केंद्रित किया है। मंगल सिंह (१८५७), 'सफदर' (१९२२), एवं 'सुमेर' (१९४२) कहानियों में कड़े सामाजिक ,आर्थिक और राजनीतिक तथ्यों को विलोक सकेंगे।

विद्वानों की टीका -टिप्पणियों में 'मनमाना' ,पूर्वाग्रह युक्त चित्रण 'पुरुधान' एवं 'अंगिरा' में असुर जाति का वर्णन दृष्टव्य है। इसे डॉक्टर वासुदेव शरण उपाध्याय आसुरी एवं द्रविड़ जातियों का सिंधु नदी के किनारे पर, मिश्रण मानते हैं। बाल्मीकि रामायण का रचना काल राहुल ने शुंग वंश का माना है।डॉ रामविलास शर्मा ने व्यंग्य किया : 'क्या नया समाजशास्त्र है। राम शुंग सम्राट का प्रतीक है ,कालिदास के 'कुमार संभव' में कुमार कुमार गुप्त का प्रतीक है, अब राहुल यह भी बता दें कि दशरथ, कौशल्या, सीता, रावण के मूल ऐतिहासिक आधार क्या हैं।' डॉ रामविलास शर्मा हजारी प्रसाद द्विवेदी को भी ब्राह्मण संकीर्णतावादी और पुनुरुत्थानवादी कह डाला था। 'सुपर्ण यौधेय ' में हूणों को पराजित करने वाला सम्राट गुप्त बताया गया है। पर वह था स्कंदगुप्त।' दुर्मुख' में हर्षवर्धन के भाई राज्यवर्धन को कान्यकुब्जाधिपति कहा है। वस्तुतः वह स्थाणेश्वर (आधुनिक थानेश्वर) का शासक था। हर्ष को क्षत्रिय सातवाहनों के वंश से सम्बद्ध

बताया है, पर सातवाहन ब्राह्मण थे और वे हर्ष के पूर्ववर्ती नहीं थे ।जयचंद का जैसा चित्र कहानी में है वह मूल ऐतिहासिक व्यक्तित्व से मिलता जुलता नहीं है। मुस्लिम इतिहासकारों ने उसे योद्धा के नाते चित्रित किया है , राहुल ने उसे वृद्ध विलासी स्त्री- लंपट दिखाया है।'सुरैया' में नायिका को अबुल फजल की बेटी बताया गया ,जो टोडरमल के पुत्र कमल से विवाह करके दोनों यूरोप की यात्रा पर चले जाते हैं, यह इतिहास के साथ ज्यादती है।

तमाम अंतर्विरोधों के बावजूद ८००० के इतिहास को ३८६ पृष्ठों में विन्यस्त करके लिखना' गागर में सागर ' जैसा है ।कुछ गुमनाम साधुओं ने 'विश्व बंधु' पत्रिका में 'नग्नवादी' वेदनिंदक राहुल नामक लेख में की, परंतु गोर्की की मां की तरह यह किताब भारतीय एवं विदेशी भाषा में अनुदित हुई । राहुल की यह पुस्तक समग्र भारतीय साहित्य को एक ऐतिहासिक देन है। राहुल प्रेमचंद पर दो टूक लिखते हैंः '१९१५ के आसपास उसी (जमाना मासिक) में मुझे प्रेमचंद के नाम और उनकी लेखनी से परिचय प्राप्त करने का अवसर मिला ।लेकिन उनके दर्शन का मौका बहुत पीछे मिला । उनकी लेखनी का लोहा उस समय भी लोग मानने लगे थे किंतु उनकी शैली में जो एक बड़ा गुण था, उसे ही उनके समसामयिक हिंदी या उर्दू के कितने ही विद्वान दोष समझते थे। प्रेमचंद का जीवन जैसा सीधा-सादा था, उसी तरह वह अपनी लेखनी को भी अनावश्यक कृत्रिम साज-वाज से सजाना पसंद नहीं करते थे।..... वह बहुजन हित के पक्षपाती थे और बहुजन हिताय लिखते थे।..... १९२१ में छपरा जिले में आकर एक-दो दिन वहां के एक गाँव रेवतिया में रहना पड़ा। वहां प्रेमचंद का दर्शन दूसरी बार हुआ ।अभी साक्षात् नहीं केवल उनकी कृतियों द्वारा ही रेवतिया जैसे ग्राम में प्रेमचंद की दो-तीन कृतियों को देखकर मुझे मालूम हुआ कि प्रेमचंद ने हिंदी पाठकों को एक नई और उच्चदिशा में आकृष्ट किया है । १९२० से ३० के १० वर्षों में प्रेमचंद ने राष्ट्रीयता, राजनीतिक जागृति ,उच्च आदर्श के प्रसार में जितना काम किया उतना बहुत से लेखकों ने मिलकर भी नहीं किया । शायद १९२६ का साल था .....बनारस में ही उनके साक्षात दर्शन का अवसर मिला । .....मेरे सामने प्रेमचंद की भाषा पर एक उर्दू के ख्यातनाम लेखक और कवि ने आक्षेप किया था कि वह उर्दू नहीं जानते, वे तो पूरब की बोली में लिखते हैं ।मैं जानता था कि साहित्यिक महाशय लखनऊ के उन नवाबों के वर्ग के हैं जो समझते थे कि गेहूं का कोई दरख्त़ होता है। उनकी लच्छेदार उर्दू में अरबी के शब्द भरे पड़े रहते हैं। शायद वह स्वयं यदि उपन्यास या कहानी लिखते - सौभाग्य से खुदा गंजे को नाखून नहीं देता -तो वह 'होरी 'के मुंह से भी अपनी पसंद की भाषा कहलवाते।हिंदी के कुछ साहित्यिकों का भी कहना था कि उनकी हिंदी में भाषा की मजाई और गहराई नहीं है ।क्योंकि प्रेमचंद से ही पहले भी चाहे कुछ उपन्यास लिखे गए हों , लेकिन उन्हें विश्व के उपन्यासों के सामने रखा नहीं जा सकता । प्रेमचंद का इस विषय में पहला प्रयास था। अंतिम बार जब प्रेमचंद के दर्शन का अवसर मिला तब मैं जाड़ों में सारनाथ गया हुआ था । एक दिन प्रेमचंद जी आए उनका गांव सारनाथ से मील डेढ़ मील ही पर है, (जहाँ मुझे एक टूटी हुई मूर्ति का सिर मिला था ।वह किसी देवता की मूर्ति नहीं थी, बल्कि एक प्राग इस्लामिक या आदि इस्लामिक काल के पुरुष की मूर्ति थी ,सो भी किसी कायस्थ की। सिर के केशों की बनावट तथा गांव में कायस्थों की प्रधानता इसी ओर संकेत करती है ।हो सकता है कि वह प्रेमचंद के किसी पूर्वज की ही हो ।मूर्ति मैंने प्रयाग म्यूजियम को भिजवा दी।) वहां चटाई पर बैठे हुए जब हम दोनों बातें कर रहे थे, तो उस समय मुझे कभी ख्याल नहीं आया था कि वह हमारी अंतिम बातचीत है । जाड़ों के बीतने के साथ मैं तिब्बत गया और वहीं उनके निधन की खबर मिली। उनकी कृतियों के जितने श्रेष्ठ नाम हैं , उन्हीं की मूर्ति प्रेमचंद के रूप में मुझे उसी दिन सामने दिखाई पड़ी ।प्रेमचंद भारत के अमर लेखक और कहानीकार हैं। शताब्दियां बीतती जाएंगी, प्रेमचंद की देखी-भाली, खेली -खाई , रोई-गाई दुनिया का कहीं पृथ्वी पर पता नहीं रहेगा ,उस वक्त प्रेमचंद का यह चिंतन कम मनोरंजन और उत्साहवर्धन नहीं होगा।'७

१९४२ सेंट्रल जेल हजारीबाग में 'दर्शन-दिग्दर्शन' दो खण्डों में संसार की दार्शनिक विचारधाराओं को भारतीय षट्दर्शनों एवं अन्य दर्शनों का तुलनात्मक अध्ययन है । तमाम दोषारोपणों के बावजूद राहुल चौथे शतक में भारतीय परिस्थिति के विषय में यूं लिखते हैं :' मानव का अस्तित्व

पृथ्वी पर यद्यपि लाखों वर्षों से है, किंतु उसके दिमाग की उड़ान का सबसे भव्य-युग ५००० से ३००० ईसवी पूर्व है ,जबकि उसे खेती, नहर, सौर पंचांग आदि.. आदि कितने ही अत्यंत महत्वपूर्ण तथा समाज की कायापलट करने वाले आविष्कार किए ।इस तरह की मानव मस्तिष्क की तीव्रता हम फिर १७६० ई के बाद से पाते हैं, जबकि आधुनिक आविष्कारों का सिलसिला शुरू होता है ।किंतु दर्शन का अस्तित्व तो पहले युग में था ही नहीं ,और दूसरे युग में वह एक बूढ़ा बुजुर्ग है ,जो अपने दिन बिता चुका है ; बूढ़ा होने से उसकी इज्जत जरूर की जाती है ,किंतु उसकी बात की ओर लोगों का ध्यान तभी खिंचता है, जबकि वह प्रयोग-आश्रित चिंतन-साइंस-का पल्ला पकड़ता है । यद्यपि इस बात को सर राधा कृष्णन जैसे पुराने ढर्रे के 'धार्मिक प्रचारक' मानने के लिए तैयार नहीं हैं, उनका कहना है :'प्राचीन भारत में दर्शन किसी भी दूसरी साइंस या कला का लग्गू-भग्गू न रहा हो , सदा एक स्वतंत्र स्थान रखता रहा है।' भारतीय दर्शन साइंस या कला का लग्गू-भग्गू न रहा हो। किंतु धर्म का लग्गू-भग्गू तो वह सदा से चला आता है, और धर्म की गुलामी से बदतर गुलामी और क्या हो सकती है?'

विश्वव्यापी दर्शन की धारा को देखने से मालूम होगा, कि वह राष्ट्रीय की अपेक्षा अंतरराष्ट्रीय ज्यादा है। दार्शनिक विचारों के ग्रहण करने में उसने कहीं ज्यादा उदारता दिखलाई ,जितना कि धर्म ने एक दूसरे देश के धर्म को स्वीकार करने में। यह कहना गलत होगा ,कि दर्शन के विचारों के पीछे आर्थिक प्रश्नों का कोई लगाव नहीं था, तो भी धर्मों की अपेक्षा व बहुत कम एक राष्ट्र के स्वार्थ को दूसरे पर लादना चाहता रहा, इसीलिए हम जितना गंगा , आमूदजला और नालंदा-बुखारा-बगदाद-कार्दोवा का स्वतंत्र स्नेह पूर्ण समागम दर्शनों में पाते हैं, उतना साइंस के क्षेत्र से अलग कहीं नहीं पाते। हमें अफसोस है, समय और साधन के अभाव से हम चीन-जापान की दार्शनिक धारा को नहीं दे सके ,किंतु वैसा होने पर भी इस निष्कर्ष में तो कोई अंतर नहीं पड़ता कि दर्शन क्षेत्र में राष्ट्रीयता की तान छेड़ने वाला खुद धोखे में है और दूसरे को धोखे में डालना चाहता है।'८

वे साहित्य में सामाजिकता को विशेष तरजीह देते हैं। उनका मन्तव्य है कि 'हिन्दी साहित्य में ऐसी भी एक त्रुटि दिखाई देती है। चाहे बिहार के धान के खेत या विस्तीर्ण मैदान हों, चाहे गढ़वाल के देवदार वृक्षों से आच्छादित हिमालय की पर्वत श्रेणियां या शिखर, चाहे मारवाड़ की भूमि हो या जबलपुर की विंध्याटवी, सभी जगह के लेखक और कवि मानो आपस में समझौता कर चुके हैं कि भरसक वे अपने लेखों में इन स्थानीय दृश्यों को आने न देंगे।इसी कारण हिन्दी साहित्य में रचना-वैचित्र्य आने नहीं पाता। '९गाँधी की मृत्यु के आस पास १५अगस्त १९४७ से ३०जनवरी १९४८ के बीच गाँधी की कटु आलोचना बड़े पूंजीपतियों के एजेंट या अहिंसक रामराज में विश्वास करने वाले आदर्शवादी के बजाय'बुद्ध' एवं 'गाँधी' 'को यों आँकते हैं ' बुद्ध प्राणी मात्र की भलाई चाहते हैं, 'सब्बे संताभवंतु सुखी तत्ता ' परंतु वे निष्क्रिय स्वप्न द्रष्टा नहीं थे।.... बुद्ध के पश्चात गांधी जी के अतिरिक्त कोई ऐसा अन्य महापुरुष नहीं हुआ जो संपूर्ण समाज को इतना महान संदेश दे सकता।..... उनके दर्शन में बुद्ध की मौलिकता नहीं।.... बुद्ध ने यात्री दलों पर घातक आक्रमण करने वाले अंगुलिमाल का जान-बूझकर सामना किया। महात्मा जी को सैकड़ों बार लोगों को बचाने के लिए अपनी जान संकट में डालनी पड़ी। यद्यपि गांधी जी परमात्मा और अपरिवर्तनशील जगत को मानने वाले दर्शन में विश्वास करते हैं, परंतु अपने कार्यों में वे जड़ नहीं हैं।..... बुद्ध के समान वे कुछ लोगों द्वारा अपने समाज पर प्रभुत्व और विषमता के शाप को अनुभव करने लगे हैं। वे खुले शब्दों में देशी राजाओं की निरंकुशता की भर्त्सना करते हैं।..... वे लहू की एक बूंद बहाए बिना जमींदारों की जर्जरित निकम्मी प्रणाली का अंत करके समाज में से सदा सर्वदा के लिए वर्ग-जन्य अत्याचार का अंत कर देंगे।..... यदि इस वृद्धावस्था में अपने परिपक्व अनुभव को लिए गांधी जी भारतीय जनता को आर्थिक बंधनों एवं वर्ग जन्य अत्याचार से मुक्त करने में सफल हो गए तो वह कार्य संपन्न कर जाएंगे जिसे अपनी सद्भावना के रहते बुद्ध भी नहीं कर पाए। यदि ऐसा हो गया तो मानव आनंद की प्राप्ति में महात्मा गांधी भगवान बुद्ध से भी आगे बढ़ जाएंगे और इतिहास उनको इसी रूप में स्मरण करेगा।'।१०यूं देखा जाए तो विश्वबंधुत्व के सबसे

बड़े पैरोकार राहुल जी ने दर्शन, इतिहास,समाज-विज्ञान,विज्ञान,यात्रा साहित्य, जीवनी, उपन्यास, कहानी, नाटक,निबंध, कोश-विज्ञान,व्याकरण, पाठानुसंधान, शोध, तिब्बत विद्या,बौद्ध धर्म,लोक साहित्य,राजनीति और पर्चेबाजी तक में अपने को खपाया। एक अच्छे अनुवादक के साथ, संस्कृत पाठमालाएं, बौद्ध -न्याय एवं वार्तिकों की टीकाएं भी लिखी। हिंदी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में १६००० शब्दों के अंग्रेजी हिंदी शासन शब्दकोश के संपादन की जल्दबाजी को देखकर लोगों ने आलोचना की तो राहुल मुस्कुराते हुए खास अंदाज में जवाब दिया, 'बुद्ध कह गए हैंः' सब्बम् खनिकम्'। सब कुछ क्षणिक है। कोई चीज स्थिर नहीं है। लेनिन ने भी कहा था-'कुछ भी अंतिम नहीं है।'मैं नहीं मानता हूं कि कोई भी मनुष्य संपूर्ण है। मैंने कोई सत्य का एकाधिकार नहीं रखा है। मैं अपना काम करता हूं। भावी पीढ़ी आएगी और मेरे काम को सुधारेगी' यानी राहुल का बहुआयामी व्यक्तित्व विश्वबंधुत्व को हर स्तर पर स्थापित करने की चेष्टा कर रहा था। तथाकथित विघ्न करने वाले हर युग में होते हैं और होते रहेंगे, फिर भी राहुल जी ने घुम्मकड़ी के माध्यम से शिक्षा, ज्ञान,भाषा,संस्कृति,सभ्यता,स्त्री-पुरुष के संबंध को नई ऊर्जा एवं दिशा दी। विचारधारा के आधार पर उन पर आरोप प्रत्यारोप लगाना अलग बात है परंतु राहुल का समग्रता से अध्ययन किया जाए तो वैश्वीकरण बनाम विश्वबंधुत्व के अद्भुत पारखी थे। वे अपनी भौगोलिक सीमाओं को ध्यान में रखते हुए देवनागरी लिपि का समर्थन किया।हालांकि वे बहुभाषाविद थे । फिर भी कम्युनिस्टों ने उन्हें १९४८ में पार्टी से निकाल दिया। इसलिए वैचारिक दल-दल में न फंसकर राहुल का तटस्थ मूल्यांकन २१वीं शताब्दी में होगा, राहुल सांकृत्यायन मात्र घुमक्कड़ , परिब्राजक के साथ साहित्य अध्येता,लेखक, बहुभाषविद,अनुवादक,किसान नेता एवं लोकतांत्रिक मूल्यों के चितेरे थे।

संदर्भ ग्रंथ

१ - जिनका मैं कृतज्ञ हूँ : राहुल सांकृत्यायन :पृष्ठ १८३-१८४

२ - जिनका मैं कृतज्ञ हूँ :राहुल सांकृत्यायन : पृष्ठ २३७-२३८

३- अतीत से वर्तमान : राहुल सांकृत्यायन : पृष्ठ ९४-१०२

४ - अतीत से वर्तमान : राहुल सांकृत्यायन : पृष्ठ १०५-११८

५ - राहुल निबंधावली : राहुल सांकृत्यायन :पृष्ठ ३-५

६ - राहुल निबंधावली : राहुल सांकृत्यायन :पृष्ठ ३

७- राहुल निबंधावली : राहुल सांकृत्यायन : पृष्ठ ७-९

८- दर्शन-दिग्दर्शन : राहुल सांकृत्यायन : पृष्ठ ५-८

९ - साहित्य निबंधावली (१) : राहुल सांकृत्यायन : पृष्ठ ८

१० - अतीत से वर्तमान : राहुल सांकृत्यायन :: पृष्ठ १२०-१२३

आराजी संख्या १८ चक तेजऊ दीक्षित, गंगापुरम,नैनी, प्रयागराज २११००८

हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
प्रयाग- 211002
shukla.shiv67@gmail.com
Mob – 9409214619 / 7016394609

राष्ट्रीय आंदोलन में आदिवासी स्त्रियों की भूमिका

डॉ.स्नेहलता नेगी

प्रोफेसर,हिंदी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय,
दिल्ली

भारतीय समाज में स्त्रियों की प्रतिभा और राष्ट्र निर्माण में उनकी सहभागिता को स्वीकार न करने की प्रवृत्ति हर युग में रही है। चाहे वह राष्ट्र आंदोलन में उनके त्याग हो या समाज के निर्माण में उनका समर्पण। इतिहास में जो स्थान उन्हें मिलना चाहिए वह नहीं मिला है। इतिहास में केवल उन्हीं स्त्रियों का जिक्र आता है जो राजघरानों और सामंती परिवारों से आतीं हैं। उनके सहयोगी दासी आदिवासी और दलित समाज से आते हैं उनके बारे में इतिहास मौन है। हाशिए के दलित और आदिवासी स्त्रियों की राष्ट्रीय आंदोलन में उनकी संघर्ष यात्रा का लिखित इतिहास में कोई स्थान नहीं मिलता है ना ही वे जनमानस की स्मृतियों में हैं।

यह वर्ष देश में आजादी के अमृत महोत्सव का वर्ष है । देश के आजाद होने के ७५ वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष में यह महोत्सव देश के हर कोने में बड़ी धूमधाम से मनाया जा रहा है। देश के स्वाधीनता कराने में समाज के हर वर्ग और समुदाय की अपनी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस दृष्टि से स्वतंत्रता के लिए अंग्रेजों के विरुद्ध आदिवासियों का संघर्ष विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। १९वीं सदी शुरू होने से पहले ही आदिवासियों ने ब्रिटिश शासन के खिलाफ शस्त्र उठा लिए थे। १७६६ में मेदनीपुर विद्रोह से शुरू हुआ। मेदनीपुर का यह विद्रोह एक दशक तक पहाड़िया लोगों के विद्रोह, चोआड आदिवासियों का विद्रोह, चकमा जनजातियों का ठेकेदारों के खिलाफ संघर्ष के रूप में एक दशक तक चला। अंग्रेजों के विरुद्ध आदिवासियों का यह संघर्ष देश के स्वाधीन होने तक अलग अलग आदिवासी क्षेत्र निरंतर चलता रहा।

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में आदिवासी क्षेत्रों में मुगलों और अंग्रेजो के खिलाफ जितने भी आंदोलन हुए उसमें आदिवासी क्रांतिकारी स्त्रियों ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया है और उन्हें मुंह तोड़ जवाब दिया। इन स्त्रियों के बारे में बेशक इतिहास मौन है। लेकिन स्वतंत्रता संग्राम में उनके बलिदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। आइए भारत में आदिवासी क्षेत्रों में आदिवासी स्त्रियों की संघर्ष यात्रा पर दृष्टि डालें।

रानी दुर्गावती (५ अक्टूबर १५२४ - २४ जून १५६४) भारत की प्रसिद्ध वीरांगना रानी दुर्गावती गोंडवाना राजवंश की शासिका थी। विवाह के चार वर्ष पश्चात राजा दलपत शाह की मृत्यु के बाद अपने पुत्र वीरनारायण को सिहासन पर बिठाकर उसकी संरक्षक के रूप में १६ वर्ष तक कुशलतापूर्वक साम्राज्य की बागडोर संभाली। रानी दुर्गावती गोंडवाना राज्य जिसका केंद्र जबलपुर था। जहां मुगल बादशाह अकबर को तीन बार रण क्षेत्र में परास्त कर उन्हें खदेड़ दिया। अकबर के सेनापति आसम खां के नेतृत्व में गोंडवाना साम्राज्य पर दुबारा धावा बोला तो रानी के पास बहुत कम सैनिक थे। ऐसे में वह स्वयं पुरुष का वेश धारण कर जबलपुर के पास नरई नाले के किनारे मोर्चा लगाया। इस युद्ध में मुगलों के तीन हजार सैनिक मारे गए साथ ही रानी की भी अपार क्षति हुई। २४ जून १५६४ के हमले में मुगलों के समक्ष रानी का पक्ष

काफी कमजोर था। जिसमें उन्हें अपनी हार दिख रही थी। रानी ने अपने पुत्र नारायण को सुरक्षित स्थान पर भेज दिया और स्वयं रणक्षेत्र में डंटी रहीं। इस युद्ध में उनकी बाजू में एक तीर लगा और दूसरा तीर उनकी आंख में लग गई और तभी तीसरा तीर उनके गर्दन में आकर धंस गया। रानी अपना अंतिम समय समीप देख अपने वजीर आधार सिंह से कहा कि वह अपनी तलवार से उनकी गर्दन काट दे पर आधार सिंह तैयार नहीं हुआ तो अंत में रानी ने अपनी कटार पेट में भोंककर आत्म बलिदान कर दिया। जबलपुर के पास बरेला में रानी दुर्गावती की समाधि पर आज भी गोंड आदिवासी रानी दुर्गावती के बलिदान को याद करते हुए उन्हें श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं। आदिवासी समाज आर्य वर्ण व्यवस्था में नहीं आते हैं। इसलिए आर्यों से परास्त उपेक्षित आदिवासी वीरांगनाओं की शौर्य गाथायें राष्ट्रीय आंदोलन में महत्वपूर्ण नहीं लगा। इसलिए जानबूझकर उन्हें इतिहास और जनमानस से दूर रखा गया। आदिवासी स्त्रियों की शौर्य गाथाएं आदिवासी मौखिक साहित्य में बिखरी पड़ी है इस पर विस्तार से काम करने की जरूरत है।

रानी गाइदिनल्यू विलक्षण प्रतिभा की धनी अदम्य साहस और निर्भीक वीरांगना थी। जिनका जन्म २६ जनवरी १९१५ में मणिपुर के रांगमई गांव में हुआ। इनके पिता लोथानांग पामई समाज के शासन व्यवस्था के संचालन की भूमिका अदा करने वाले अगुआ थे। रानी ने अपने समाज को विदेशी धर्म और संस्कृति से सावधान रहने का आह्वान किया। नागाओं को अपनी पहचान कायम रखने के लिए प्रेरित किया। अपनी मातृभूमि नागालैंड से अंग्रेजों को खदेड़ने का खामियाजा जेल में रहकर किया। रानी गाइदिनल्यू स्वतंत्र भारत की संभवतः पहली आदिवासी स्त्री हैं जो देश के स्वतंत्रत होने के बाद रिहा हुईं। नागालैंड के स्वतंत्रता सेनानी जादोनाग के विचारों और कार्यों से प्रभावित हुई और जादोनाग के कट्टर अनुयाई बनकर स्वतंत्रता संग्राम का पथ प्रदर्शक बनी। अंग्रेजों ने २८/०१/ १९३१ में जादोनाग को धोखे से पकड़ा और जेल में भेज दिया। तब रानी जादोनाग से कहती हैं 'स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है। अंग्रेजों के क्रूर शासन का अंत करना तथा ईसाई मिशनरियों से अपने धर्म को बचाना हमारे जीवन का लक्ष्य है। आप की गिरफ्तारी के बाद भी यह युद्ध निरंतर चलता रहेगा'१ ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध बगावत के लिए उन्हें आजीवन कारावास की सजा सुनाई गई और आजाद भारत में भी उन्हें नजरबंद रखा गया। उनके बारे में कहा जाता है कि वह चमत्कारी क्षमता वाली महिला थी। कोई बीमार हो जाए तो उसे ठीक कर देती थी। रानी गाइदिनल्यू स्वतंत्रता सेनानी के साथ-साथ एक समाज सुधारक और धार्मिक महिला थी।

राष्ट्रीय आंदोलन में मिजोरम की रानी रौपुइलियानी पूर्वोत्तर भारत की ऐतिहासिक महिलाओं में से एक हैं। उन्होंने ब्रिटिश साम्राज्य के खिलाफ वहां की जनता को एकजुट कर मोर्चा संभाला था। रानी रुपौइलियानी आइजोल के राजा लालसावुडा की बेटी थी। मिजोरम की जनता से ब्रिटिश सरकार गुलामों की तरह काम करवाती थी। उनका अपना कुछ भी निजी नियंत्रण जीवन पर नहीं था। जिसके विरोध में रानी ने सरकार के आदेशों को मानने से जनता को रोकती थी और उन में चेतना पैदा करने का काम किया। 'रानी रुपौइलियानी ने फिरंगियों के आदेशों का कठोरता से निषेध किया और अपनी प्रजा से कहा कि ब्रिटिशों की बातों पर विश्वास ना करें। वे उन्हें लूटने और उन पर शासन करने आए हैं। ऐसा करने से वे हमेशा ही गुलामी की जंजीर से बध जाएंगे और उनके देश में उनका राज स्थापित हो जाएगा।'२ १८८९ में पति की मृत्यु के बाद रानी रुपौइलियीन ने अपने अधीन के गांव पर शासन कर अपनी प्रतिभा और साहस का परिचय दिया। अंग्रेजो के खिलाफ संघर्ष के लिए सबसे पहले उन्होंने अपने सगे संबंधियों को एकत्रित करना शुरू किया। गांव के लोगों के साथ मिलकर ब्रिटिश हुकूमत से लोहा लेने की रणनीति बनाई। अंग्रेजों ने रानी की रियासत को अपने अधीन करने के एवज में रानी के सामने तमाम सुख-सुविधाओं का प्रस्ताव रखा लेकिन रानी ने उसे ठुकरा दिया। उनका दृढ़ संकल्प था कि किसी भी कीमत पर गुलामी का जीवन नहीं जीयेंगे और किसी भी कीमत पर अपनी देशभक्ति की भावना को नहीं छोड़ेंगे।रानी ने बंदूकों से लेस अपना एक सैनिक दल तैयार किया और ब्रिटिश अधिकारियों के मुख्यालय पश्चिमी लूङ में धावा बोलने की रणनीति बनाई लेकिन दुर्भाग्यपूर्ण रानी की योजना

की जानकारी ब्रिटिश अधिकारी सी.एस. मुरै को मिल गई। खबर मिलते ही मुरै ने १८९३ में रानी के गांव में सैनिकों के साथ दावा बोला जिससे बेखबर रानी गिरफ्तार कर ली गई और बंदी बना लिया गया और दस महीनों तक जेल में रही। जहां उनकी प्रजा, गांव के मुखिया, रिश्तेदार मिलने आते थे, रानी उनसे से यही कहती कि अपनी एकजुटता कम मत करो और मिजोरम से अंग्रेजों को खदेड़ने के लिए लामबंद हो जाओ। तीन जनवरी १८९५ रानी की मृत्यु हो गई। रानी रुपैइलियानी ने अपने स्वाभिमान और देशभक्ति के जज्बे को अंतिम समय तक बनाए रखा और मिजोरम की जनता से भी इस जज्बे को बनाए रखने का आह्वान किया।

दक्षिण भारत की आदिवासी स्त्रियां भी अपने समाज और देश के प्रति समर्पण में पीछे नहीं हैं। मेडाराम (आंध्र प्रदेश के तेलंगाना जिला के अंतर्गत आता है) आदिवासी बहुल क्षेत्र है। जहां के लोकगीतों और पर्वों में अपनी वीरांगना बेटियों साम्मक्का और सारालम्मा जतरा पारंपरिक उत्सव के रूप में मनाया जाता है। कोया आदिवासी समाज एक हज़ार साल पहले काकतिया साम्राज्य के शोषण और उत्पीड़न से पीड़ित था। इतिहास के पन्नों में काकतिया साम्राज्य का साल काल १००० से १३०० ए.डी. (ईसा बाद) माना जाता है। काकतिया राजा अकाल के दिनों में भी कोया और अन्य आदिवासियों से जबरन कर वसूली करते थे जिससे वहां की गरीब जनता त्रस्त थी। कर न दे पाने पर जबरन कैद करना,हत्या करना उनके लिए आम बात थी। काकतिया साम्राज्य के अनाचार और शोषण के खिलाफ साम्मक्का ने विद्रोह का आह्वान किया इन विद्रोह में उनकी बेटी सारालम्मा भी शामिल हुई ।दोनों ने काकतिया साम्राज्य का नाश कर साराक्का के जंगलों में अदृश्य हो गईं। अब वे कोया आदिवासीयों के बीच साहस और वीरता की देवी के रूप में पूजी जाती है। मेडाराम के आदिवासी स्त्रियां यह मानती हैं कि जतरा में साम्मक्का सारालम्मा को दिया सिंदूर अपने माथे पर लगाने से विरता का एहसास होता है। मेडाराम के अगुआ आदिवासी कहते हैं कि १९४२ से कोया आदिवासी समुदाय अपनी वीरांगनाओं की स्मृति में साम्मक्का सारालम्मा जतरा का आयोजन किया जा रहा है।

झारखंड की उरांव आदिवासी औरतें सिनगी दई और कइली दई को जब हम याद करते हैं, तो आदिवासी स्त्रियों का शौर्य पूर्ण इतिहास चमक उड़ता है। उन्होंने रोहतासगढ़ पर जब मुगलों ने तीन बार हमला किया और तीनों बार सिनगी दई और केइली दई के नेतृत्व में उरांव औरतों ने मुगलों को पछाड़ दिया। आज भी उरांव औरतें रोहतासगढ़ के विजय स्मृति रूप में अपने माथे पर गोदना के तीन निशान लगातीं हैं और १२ साल में एक बार जनी शिकार का पर्व झारखंड में उरांव औरतों के विजय के प्रतीक स्वरूप मनाया जाता है। संथाल विद्रोह मैं सिद्धू-कान्हू और चांद भैरव ने मिलकर महाजनी और सूदखोरों के जुल्म और अत्याचार के विरुद्ध संपूर्ण संथाल परगना में विद्रोह किया। सिद्दू-कान्हू ने कहा हम अपना संताल देश बनाएंगे। सिद्धू-कान्हू , चांद भैरव और उनकी बहनें फूलों और झानो ने अंग्रेज सिपाहियों को सबक सिखाने के लिए सुबह- सुबह सैनिकों के कैंप पर हमला बोल दिया और २१ सिपाहियों को मार गिराया। बिरसा के उलगुलान में स्त्रियों की व्यापक भागीदारी रही है। उलगुलान में स्त्रियों ने बिरसा का साथ नहीं छोड़ा। कुमार सुरेश सिंह 'बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन' में लिखते हैं 'गया मुंडा ने जिस हिम्मत और अदम्य में निर्भीकता से संघर्ष किया वह अपने में एक रहस्योद्धारक और आश्चर्यजनक घटना थी और इस घटना में उससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण औरतों की भूमिका थी जिसने आंदोलन के नये मोड़ का संकेत दिया।' १९०० के जनवरी में मुंडाओं ने सिंहभूम और खूंटी रांची में जबरदस्त बगावत किया। जिसकी कीमत गया मुंडा को फांसी पर झूल कर देनी पड़ी और उसकी पत्नी माकी को दो साल की कड़ी कैद की सजा सुनाई गई। इस आंदोलन में चंपी, केली, बनकन मुंडा, मंझिया मुंडा और डुनडंग मुंडा की पत्नियों की भी महत्वपूर्ण भागीदारी रही।

वीर बुद्ध भगत की बेटियां रुनिया और झुनिया भगत छोटानागपुर में अंग्रेजो के खिलाफ लोहा लेने में अपने पिता का साथ दिया और वीरगति को प्राप्त हुईं। १८२८ में वे गांव-गांव जाकर जंगल पहाड़ में मुंडा, हो, संथाल और खड़िया आदि आदिवासी समुदाय को संगठित करती थी। उनकी लोकप्रियता और जन-बल से ब्रिटिश हुकूमत डरने लगी। रुनिया-झुनिया अंग्रेज, ठेकेदारों और

जमीदारों से छोटा नागपुर को मुक्त कराते हुए शहीद हो गई।कुडुख लोकगीतों में उनके बलिदान और स्मृति का सम्मान करते हुए आज भी पहाड़ों जंगलों में उनकी वीरता के गीत गूंजते हैं।कुडुख लोकगीतों में वह दोनों आज भी जीवित हैं -

'रुनिया झुनिया रे दुयो साहिन,राजी डे जीयन चिच्चर जीवन देश में जितने चिच्चर रुकी टोडंग ता, टिको ठोको, नम्है पुरखर भईया जितना चिच्चर।'३

इस गीत का भाव यह है कि रुनिया झुनिया नामक दोनों बहनों ने राष्ट्र के नाम अपना जीवन न्योछावर किया।

अपने लोगों के राज के लिए जीवन न्योछावर किया।

इसी तरह राजस्थान की भील आदिवासी विरांगाना कालीबाई डूंगरपुर गांव में उनके शिक्षक नानाभाई सगाभाई के सहयोग से आदिवासी बच्चों की शिक्षा के लिए स्कूल खोलते हैं। जिसे अंग्रेजों ने एक नया कानून लाकर पाठशाला बंद करवाया। विरोध करने पर अंग्रेजों ने नानाभाई और सगाभाई को वही गोली मार दी और इस घटना को देखते ही कालीबाई हंसिया लेकर बड़ी संख्या में अंग्रेज सैनिक पर झपट पड़ी इसी बीच अंग्रेज सैनिकों ने कालीबाई पर अंधाधुन फायरिंग की और कालीबाई ने वहीं दम तोड़ दिया है।

आदिवासी क्षेत्रों में राष्ट्र आंदोलन को लेकर तीखे स्वर होने के बावजूद मुख्यधारा के इतिहास में उन्हें समाहित नहीं किया गया। इस क्षेत्र में आदिवासी विद्रोह और आंदोलनों को इतिहास में सम्मानजनक स्थान देने की जरूरत है और इसके लिए जरूरी है कि इतिहास का पुनर्लेखन हो और आज आदिवासी मुद्दों को मुख्यधारा के आंदोलनों में शामिल करने की ज़रूरत है।

संदर्भः

१ रानी गाइदिनल्यू, जगदंबा मल्ल, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, दिल्ली, २०१६

२ भारत की क्रांतिकारी आदिवासी औरतें, वासवी किड़ो, रमणिका फाउंडेशन दिल्ली, २०१४

३ बिरसा मुंडा और उनका आंदोलन, कुमार सुरेश सिंह वाणी प्रकाशन २००८

४ आदिवासी शौर्य एवं विद्रोह, संपादन रमणिका गुप्ता, साहित्य उपक्रम, दिल्ली, २००४

५ उन्नीसवीं सदी में भारत में आदिवासी विद्रोह, डॉ सुरेश मिश्र, स्वराज संस्थान संचालनालय, भोपाल, २००८

डॉ.स्नेहलता नेगी
प्रोफेसर,हिंदी विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय,दिल्ली

प्रवासी हिंदी कविता में भारतीय अस्मिता का चित्रण

प्रो.सुधाकर शेंडगे

प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर
मराठवाड़ा विश्वविद्यालय,
औरंगाबाद (महाराष्ट्र), ४३१००४
मोः. ९४२१३३५५०९
ई-मेलः dr.sudhakarshenles@gmail.com

शोध सार

वैश्वीकरण के प्रभाव से भारत के बाहर अन्य देशों में भी हिंदी एक महत्वपूर्ण भाषा के रूप में सामने आयी है। हिंदी आज अनेक देशों में स्कूलों और विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बन गयी है। जनसंचार के अत्याधुनिक संसाधनों के कारण विश्वभर में हिंदी का प्रचार एवं प्रसार तीव्र गति से हो रहा है। हिंदी के विकास में अनिवासी भारतीयों का योगदान भी अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। विदेशों में रहनेवाले भारतीयों के कारण ही न केवल हिंदी भाषा बल्कि हिंदी साहित्य भी विश्वभर में फैल रहा है। विदेशों में रहनेवाले अनिवासी भारतीयों द्वारा लिखे गये साहित्य को ही 'प्रवासी हिंदी साहित्य' के नाम से जाना जाता है।प्रवासी भारतीय कवि अपने देश और अपनी भाषा से आज भी अक्षुण्ण रूप से जुड़ा हुआ है। ये सारी कविताएँ प्रवासी भारतीयों के दुःख-दर्द के साथ-साथ उनके देशप्रेम को अभिव्यक्त करती है। प्रवासी कवि आज भी अपनी भाषा और अपनी जड़ों से जुड़ा हुआ नजर आता है। ये कविताएँ देश-प्रेम से ओतप्रोत अत्यंत मार्मिक कविताएं हैं। इन कविताओं को पढ़कर कोई भी प्रवासी भारतीय अपने देश, अपनी संस्कृति, अपने वतन संपूर्ण भावभूमि का भ्रमण कर आता है। ये कवि और उनकी कविताएं पूरी गहराई के साथ अपने देश और स्मृतियों से जुड़ी हुई हैं। इसके मूल में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, भारतीय अस्मिता को देखा जा सकता है। प्रवासी कवियों ने जहां एक ओर भारतीय सभ्यता और संस्कृति को उजागर किया है, वहीं दूसरी ओर सात समंदर पार बैठे प्रवासी भारतीय की यातना - पीड़ा को भी वाणी देने का महत्वपूर्ण काम किया है।

बीज शब्दः प्रवासी भारतीय, अस्मिता, सभ्यता, संस्कृति, अनिवासी भारतीय,देश प्रेम

शोध आलेखः 'प्रवासी हिंदी साहित्य' के अंतर्गत लग-भग सभी विधाओं में लिखा जा रहा है परंतु अन्य विधाओं की अपेक्षा कहानी, उपन्यास और कविता में ही

प्रवासी भारतीय का स्वर सर्वाधिक मुखर हुआ है। 'प्रवासी हिंदी साहित्य' शुद्ध रूप से भारतीय साहित्य का ही अभिन्न हिस्सा है। क्योंकि इस साहित्य में भारतीय खुशबू है, भारतीय अस्मिता है। प्रवासी साहित्यकार किसी कारणवश या मजबूरी में भले ही विदेशों में रह रहे हों परंतु उनकी आत्मा आज भी भारत की सोंधी सुगंध सुंघने के लिए लालायित है। तन से भले ही वे वहाँ हो, मन से अभी भी वे पूरी तरह से अपनी मिट्टी और जड़ों से जुड़े हुए है।तिरंगा और राष्ट्रगान भारतीय अस्मिता के प्रतीक हैं। कोई भी भारतीय तिरंगे को देखकर गौरवान्वित हो जाता है। हम कहीं भी जब हमारा राष्ट्रगीत सुनते हैं तो अपने-आप हमारा सीना तन जाता है और हम सावधान हो जाते हैं। विदेशों में रहनेवाले प्रवासी भारतीय में भी यह कसक देखी जा सकती है। कवि तेजेंद्र शर्मा इसी बात को शब्दरूप देते हुए लिखते हैं-'मेरे पासपोर्ट का रंग नीले से लाल हो गया / मेरे व्यक्तित्व का एक हिस्साजैसे कहीं खो गया / मेरी चमड़ी का रंग आज भी वहीं है /मेरे सीने में वही दिल धड़कता है / जन-गण-मन की आवाज /आज भी कर देती है मुझे सावधान।'१ यह सच बात है कि विदेशों में जाने से हमारे पासपोर्ट का रंग तो बदल सकता है,परंतु न चमड़ी का रंग बदलता है न ही दिल की धड़कन का।अपनी मिट्टी का एक अलग ही रंग है क्योंकि हमारे लिए धरती महज एक देश नहीं है बल्कि वह हमारी माँ है। भारतीय आदमी सबकुछ भूल सकता है लेकिन अपनी मां को नहीं। यहीं बातें विदेशों में बसे हुए साहित्यकारों को बांध के रखती है।

विदेशों में जाकर आदमी पैसा तो बहुत कमाता है लेकिन अपने आपको पराया ही समझता है। हमें तो वे शानों-शौकत में नज़र आते हैं परंतु उनका दर्द वे ही जानते हैं। अपनी मिट्टी से बिछुड़कर वे कितना तिल-तिल मरते हैं वे ही जानते हैं। हरविंदर कामना की कविता में प्रवासी भारतीय का यह दर्द देखिए - 'कहते हैं लोग, क्या शान है उनकी/जो रहते हैं कनेडा, अमेरिका में /बस आने-जाने की शान यही बस /कहना कहकर भी कह नहीं पाते 'सच्चाई' /'सच्चाई' कहते-कहते रुक जाते हैं वे लोग / परदेश में रहनेवाले तिल-तिल मरते हैं।'२

इससे स्पष्ट होता है कि एक प्रवासी कवि ही अपने प्रवासी जीवन की अनूठी झलक अपने पाठकों को दे सकता है। क्योंकि जीवन के थपेड़ों के निशान उसके शरीर और मन पर पड़े हैं । इस संबंध में डॉ.मदनलाल मधु लिखते हैं- 'प्रवासी भारतीयों को सभी प्रलोभनों, पर्याप्त सुख सुविधाओं के बावजूद कभी-कभी अपना देश, अपना परिवेश, अपने अतीत की स्मृतियां, भूली बिसरी यादें ऐसे तड़पाने लगती है कि वे मन मसोसकर रह जाते हैं । उनकी इस हुड़क को कुछ कविताओं में अभिव्यक्ति मिली है। दो साल बाद मेरे जीवन के मास्को वास के पचास वर्ष पूरे हो जाएंगे। इन पांच दशकों में कितनी ही बार मन इतना व्याकुल हुआ कि बयान से बाहर। मैंने चाहा कि सब कुछ छोड़-छाड़कर अपने देश भाग जाऊं किंतु जीवन के यथार्थ ने ऐसा करने नहीं दिया ।'३

सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ने देश के बारे में कहा है कि, 'देश कागज़ पर बना नक्शा नहीं होता।' फिर क्या होता है देश! पहाड़, नदी, जंगल, पशु-पंछी, लोग इन सबके साथ बसे हुए गांव इन्हीं सब बातों से बनता है देश। भारत की अपनी एक सभ्यता और संस्कृति है जो हमें सारे संसार में विशेष बनाती है। अन्य देशों की भांति हमारे यहाँ नदी महज नदी नहीं है बल्कि 'गंगामैय्या' है। 'गंगा' को इतना पवित्र माना जाता है कि उसमें लोग अपने सारे पाप धो देते हैं। यहां गंगा की पूजा होती है, आरती होती है। हम तो पानी को जीवन मानकर उसकी पूजा करनेवाले लोग हैं। यह भाव हमें विदेशों में देखने को नहीं मिल सकता। लंदन की नदी में और भारत की नदी में काफी अंतर है। लंदन की नदी टेम्स और भारत की गंगा का तुलनात्मक दृष्टि से चित्रण किया गया है- 'टेम्स दौलत है प्रेम है गंगा/टेम्स ऐश्वर्य है भावना गंगा/ टेम्स जीवन का प्रसाद है / मोक्ष की कामना है गंगा।।'४

कवि तेजेंद्र शर्मा ने भारत की खुशबू को कितनी सुंदरता के साथ हमारे सामने प्रस्तुत किया है। टेम्स लंदन की दौलत हो सकती है लेकिन उसमें गंगा जैसा प्रेम कहाँ से आयेगा। टेम्स वहाँ का ऐश्वर्य भी हो सकता है परंतु गंगा जैसी पवित्र भावना कैसे हो सकती है इसे केवल भारत की सभ्यता और संस्कृति के साथ जोड़कर देखा और महसूस किया जा सकता है। प्रवासी भारतीय कवि विदेशों में बसने के बावजूद अपनी भारतीय पहचान और भारतीय अस्मिता को भूल नहीं पाये है। इसी बात का सुबूत यह कविता है।

आज की तारीख में अनेक कवि प्रवासी हिंदी लेखन में सक्रिय रचनाकार के रूप में अपने आपको स्थापित कर चुके हैं। ये सभी रचनाकार विदेशों में रहने के बावजूद अपने देश की मिट्टी, महान सभ्यता और संस्कृति से जुड़े हुए हैं।

'प्रवासी साहित्यकारों का हिंदुस्तान और हिंदी के प्रति यह प्रेम एक सेतु की तरह कार्य कर रहा है, जो विदेशों में हिंदी को एक स्थिरता प्रदान करता है।'५ इन सभी प्रवासी साहित्यकारों में, कवियों में जहाँ एक ओर प्रवासी जीवन के अनुभव हैं, वहीं दूसरी ओर अपनी अस्मिता को बनाए रखने का द्वंद्व है, वतन से दूर रहने की पीड़ा है और अत्यंत उत्कट देश प्रेम की भावना है। सूरीनाम में रहनेवाली पुष्पिता अवस्थी ने अपनी कविता 'देश की माटी' में इसे अत्यंत सुंदरता के साथ चित्रित किया है-'सूरीनाम देश में, ढो लाई हूँ अपना स्वदेश/अपनी देह में / देश का मातृप्रेम/देह माटी में/ देश की मिट्टी सूरीनाम में/ बसे हुए भारत में/ बसाती हूँ मैं स्मृतियों का भारत / यहाँ के पुरखों की याद में/ आत्मा लगती है अपने पूर्वज।'६

प्रवासी हिंदी कवि आज भले ही किसी कारण से विदेश का हिस्सा बन गये हो परंतु उन्हें निरंतर अपनी धरती की याद आती है। वे हमसे कोसों दूर हैं परंतु अपने देश की छवि को उसके अनुरूप ही देखना चाहते हैं। सिद्धांतहीन राजनीति जब से हावी हुई है तब से देश की विसंगति को लेकर पाश्चात्य देशों में बैठा कवि भी चिंतित दिखाई देता है। जब रावण ही राम का चोला पहनकर आता है तो राम पहचानना भी मुश्किल हो जाता है। कवि के शब्दों में-'पहली दीवाली / मनायी थी जनता ने / रामराज्य की ... / उस प्रजा के लिए / कितनी थी आसान / भलाई और बुराई / की पहचान / अच्छा उन दिनों / होता था / बस अच्छा / और बुरा / पूरी तरह से बुरा / मिलावट / राम और रावण से / होती नहीं थी / उन दिनों / रावण रावण रहता / और राम राम।'७ विदेशों में वह ढूँढता है पर उसे राम कहीं नजर नहीं आते। मूलतः राम विदेशी नहीं भारतीय संस्कृति का अभिन्न हिस्सा है। कवि कहना चाहता है कि दिवाली तो हम यहाँ भी मनाना चाहते हैं परंतु दिवाली मनाने के लिए रावण पर राम की जीत आवश्यक है। क्या बुश और सद्दाम जैसे खूंखार रावणों के बीच रहकर दिवाली संभव है। कवि के ही शब्दों में-'दीवाली मनाने के लिए आवश्यक है। रावण पर जीत राम की। यहाँ हैं बुश / और हैं सद्दाम / दोनों के चेहरे एक / कहाँ हैं राम ।'८

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में देश और विदेश दोनों में स्थिति अत्यंत दयनीय बन गयी है। आदमी एक दूसरे से नफरत करता हुआ नजर आ रहा है। देश में यह नफरत जाति और धर्म के नाम पर फैलायी जाती है तो विदेश में अपने-पराये के बीच यह झगड़ा आम बात बन गया है। कई पाश्चात्य देशों में भारतीय लोगों पर हमले की घटनाएं सामने आ गयी हैं। देश मे भी नफरत इतनी फैलायी जा रही है कि हमारे देश की महान सभ्यता और संस्कृति, हमारी साझा संस्कृति की विरासत खतरे में नजर आ रही है। दुनिया में हिंसा फैलेगी तो लोगों से सुख और चैन छीन लिया जायेगा। लोग घुट-घुट कर मरने लगेंगे। इसी चिंता को जाहीर करते हुए कवि गौतम सचदेव लिखते हैं-'बिना वैर बिन कोप द्वार सब मन के खोलो / नफरत की दुर्गंध हटाओ खुशबू घोलो /हिंसा की ज्वाला से दुनिया रहे न झुलसी / गंगा शीतल बहने दो सरसित हो तुलसी ।'९ नफरत की दुर्गंध हटाओ और भाईचारे की खुशबू घोलो का महान संदेश यह कविता हमें देती है।

धर्म जैसी पवित्र चीज दूसरी नहीं है परंतु धर्मश्रध्दा, आस्था और आचरण का विषय है। धर्म का प्रदर्शन नहीं किया जा सकता। सभी धर्म मनुष्य के लिए बनाये गये हैं। 'मजहब नहीं सीखाता आपस में बैर रखना' यह इक़्बाल ने बहुत पहले लिखा है। परंतु हम देख रहे हैं कि चाहे देश हो या विदेश में कई लोग धर्मांध बनकर दूसरे धर्म को नीचा दिखाने का प्रयास करते हैं, जिससे हमारा सामाजिक सौहार्द बिगड़ता चला जा रहा है। धर्म सत्य के मार्ग पर चलना सीखाता है। धर्म व्यक्ति को कर्तव्य परायण बनाकर मानवीय मूल्योंका संरक्षण करता है। मनुष्य का रास्ता प्रशस्त करता है। प्रवासी कवि प्रो. हरिशंकर 'आदेश' ने अपनी कविता में धर्म की अत्यंत सुंदर और सटीक व्याख्या की है-'धर्म न थाती ग्रंथ की, धर्म नहीं वक्तव्य / सत्य मार्ग है कर्म का धर्म मात्र कर्तव्य / धर्म न भाषण का विषय, धर्म नहीं व्यापार / सदविचार, व्यवहार है धर्म शुद्ध आचार।'१० भारतीय संस्कारों के उपासक कवि 'आदेश' समाज में संस्कार का परिवेश देखना चाहते हैं। उन्हें सामाजिक सौहार्द की तलाश है। अधर्म के

मार्ग पर भटके इंसान को सचेत करना चाहते हैं।

वैश्वीकरण के प्रभाव ने सबसे अधिक आहत किया है भाषा को । आज का युग बाजारवादी और भौतिकवादी युग है। व्यक्ति चाहे भारतीय हो या प्रवासी भारतीय दोनों की भाषा को आहत किया जा रहा है। इस भौतिकवादी वर्तमान युग में व्यक्ति अपनी मातृभाषा तथा संस्कारों से कोसों दूर चला जा रहा है। भाषा केवल थोती भाषा नहीं होती। भाषा ही हमारी संस्कृति की धरोहर होती है,वाहक होती है। हमारी संस्कृति और हमारे संस्कार कोई विदेशी भाषा हमको नहीं सीखा सकती । पाश्चात्य भाषा और संस्कृति के प्रभाव से हमारे समाज के लोग अपने बच्चों के अंदर जलते हुए संस्कारों की चिता देख रहे हैं। जब मनुष्य अपनी मातृभाषा से दूर हो जाता है तो वह केवल अपनी भाषा से ही नहीं अपने संस्कारों एवं संस्कृति से भी दूर होता है। अंग्रेजी या कोई भी विदेशी भाषा हमें व्यवहार ज्ञान दे सकती है परंतु संस्कृति और संस्कार नहीं। प्रवासी भारतीय कवि अपनी भाषा की महत्ता को पूरी तरह से समझ चुका है। भारतीय और प्रवासी दोनों को सचेत करते हुए कवि लिखता है-'जब भाषा को दे दी विदाई / कहाँ से पायें संस्कार / अंग्रेजी भला कैसे ढोएं / भारतीय संस्कृति का भार'११ इस दर्द को हरेक भारतीय को समझने की आवश्यकता है।

प्रवासी भारतीय कवि पाश्चात्य देशों में भले ही रहते हो परंतु वहां का रहन-सहन, सभ्यता और संस्कृति उन्हें रास नहीं आती। अतः पाश्चात्य संस्कृति का उन्होंने खुलकर चित्रण किया है। विदेश में जाकर उन्होंने जो कुछ देखा और अनुभव किया है, उसे यथार्थ रूप में यह कवि प्रस्तुत करता है। विदेशी संस्कृति में ब्रांड संस्कृति से लेकर डेटिंग के बारे में वह खुलकर लिखता है। वहां रिश्तों का कोई महत्व नहीं है। विवाह संस्था पर उनका विश्वास नहीं है। परिणाम स्वरूप वहां विभक्त होने का प्रमाण सबसे अधिक है। वहां इतना मुक्त वातावरण है कि हर कोई स्वैराचार के लिए स्वतंत्र है। कवि के शब्दों में-'कीजिये डेटींग किसी से भी मजे से / हो बेवा-विधवा विधुर अपनी पराई / पादरी मुल्ला न रोक पाते / किसलिए होगी भला फिर जग हसाई/ इश्क में कानून बंधन कुछ न चलते । यौन रिश्तों ने बढ़ा दी आशनाई/जिंदगी सौदा बदन का हो गयी है। बिक रही ईमानदारी बेवफाई / रात को कुछ इत्र की बन शीशियों सी / लडकियां फुटपाथ पर पड़ती दिखाई / चुस्त अधनंगे बदन से वे बुलाएँ।'१२ इस प्रकार हम देखते हैं कि इतने दिनों से विदेश में रहने के बावजूद प्रवासी भारतीय वहां की संस्कृति का हिस्सा नहीं बन पाया है। उसे आज भी अपनी महान परंपरा, सभ्यता और संस्कृति से लगाव है।

उपर्युक्त बातों से यह स्पष्ट हो जाता है कि, प्रवासी हिंदी कवि अपनी कविताओं से दो अलग-अलग चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। एक अपने वतन और वतन से जुड़ी अस्मिता का चित्रण है तो दूसरी ओर अपने देश, उसकी सभ्यता और संस्कृति को भुला न पाने की विवशता दिखाई देती है। कितनी विडंबना की बात है कि जो व्यक्ति अपने देश की स्मृतियों को अपने मन से नहीं मिटा पाता, वही व्यक्ति जब बहुत दिनों के बाद अपने वतन में लौट आता है तो अपने देश में वह 'परदेशी'का अनुभव करता है। 'किसी भी व्यक्ति के लिए अपने देश में ही परदेशी हो जाना दुःखद है। यह स्थिति विदेश जाने और कई वर्षों बाद वापस आने के कारण उत्पन्न होती है।'१३ प्रवासी हिंदी कविता का भाव-सौंदर्य देखने के बाद यह कहा जा सकता है कि भारतीय व्यक्ति कितना भी दूर क्यों न चला जाय लेकिन उसके लिए जड़ से कटना सबसे अधिक कष्टप्रद है। यही कारण है कि विदेशों में रहने के बावजूद ये कवि अपनी कविताओं द्वारा भारतीय अस्मिता को ही अभिव्यक्त करते है। अपने देश प्रेम और हिंदी प्रेम के द्वारा ही उन्होंनेअंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अपनी परख और पहचान बनायी है। आज तो प्रवासी हिंदी साहित्य सर्वमान्य हो गया है। इस संबंध में कुंवर बेचैन लिखते हैं-'विदेश में रहते हुए प्रवासी, भारतीय हिंदी और हिंदी साहित्य के बारे में केवल सोचना ही नहीं वरन् उस धारा में स्वयं को भी शामिल करने का जो कार्य कर रहे हैं, वह कार्य हर प्रकार से स्तुत्य है। सच पूछा जाय तो विदेशों में हिंदी है ही इन भारतीय लेखकों के कारण।विभिन्न नगरों में साहित्य समितियां बनाकर या किसी बड़े हिंदी संस्थान की शाखाओं को अपने-अपने नगरों में स्थापित करके उनके माध्यम से अनेक हिंदी कार्यक्रमों की रूपरेखा रचने के कार्य के साथ-साथ साहित्य-लेखन के माध्यम से भी हिंदी की सेवा करने का महत्वपूर्ण कार्य इन प्रवासी भारतीयों के माध्यम से ही हो रहा है।'१४

निष्कर्षः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि, प्रवासी भारतीय कवि अपने देश और अपनी भाषा से आज भी अक्षुण्ण रूप से जुड़ा हुआ है। ये सारी कविताएँ प्रवासी भारतीयों के दुःख-दर्द के साथ-साथ उनके देशप्रेम को अभिव्यक्त करती है। प्रवासी कवि आज भी अपनी भाषा और अपनी जड़ों से जुड़ा हुआ नजर आता है। ये कविताएँ देश-प्रेम से ओतप्रोत अत्यंत मार्मिक कविताएं हैं। इन कविताओं को पढ़कर कोई भी प्रवासी भारतीय अपने देश, अपनी संस्कृति, अपने वतन संपूर्ण भावभूमि का भ्रमण कर आता है। ये कवि और उनकी कविताएं पूरी गहराई के साथ अपने देश और स्मृतियों से जुड़ी हुई हैं। इसके मूल में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति, भारतीय अस्मिता को देखा जा सकता है। प्रवासी कवियों ने जहां एक ओर भारतीय सभ्यता और संस्कृति को उजागर किया है, वहीं दूसरी ओर सात समंदर पार बैठे प्रवासी भारतीय की यातना - पीड़ा को भी वाणी देने का महत्वपूर्ण काम किया है। इन कविताओं में प्रवासी भारतियों के बचपन की स्मृतियां, विदेशी संस्कृति का हिस्सा न बन पाने का दर्द, विदेश में रहकर भी स्वदेश का अहसास, अपनों के बिना जीवन में आया हुआ सुनापन, अपने देश और सांस्कृतिक धरोहर से टूटने की यातना और अपने ही देश में परदेशी हो जाने की पीड़ा ये सारी बातें विदेश में रहनेवाले प्रवासी भारतीयों की भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रति जुड़ाव को ही रेखांकित करती है। प्रवासी हिंदी कविताओं में हमें भारतीय अस्मिता के दर्शन होते हैं।

संदर्भ संकेत :

१. शर्मा तेजेंद्र, मैं कवि हूं इस देश का, यश प्रकाशन, नई दिल्ली(२०१४) पृ. २८

२. कामना हरविंदर, यादों की सहेली, मेधा बुक्स प्रकाशन, दिल्ली(२००७) पृ. ४७

३.मधु मदनलाल, गीत-अगीत, मेधा बुक्स प्रकाशन, दिल्ली(२००५) पृ.०८

४.शर्मा तेजेंद्र, मैं कवि हूँ इस देश का, यश प्रकाशन, नई दिल्ली(२०१४) पृ.१६

५.गोयनका कमलकिशोर, प्रवासी साहित्य जोहान्सबर्ग से आगे, विदेश मंत्रालय, नई दिल्ली(२०१५) पृ.१२

६. अवस्थी पुष्पिता, अंतर्ध्वनि, मेधा बुक्स प्रकाशन, दिल्ली(२००९) पृ. १०८-१०९

७.तेजेंद्र शर्मा, ये घर तुम्हारा है, मेघा बुक्स प्रकाशन, नई दिल्ली(२००७) पृ. ९८

८ वही, पृ. ९९

९. डॉ. गौतम सचदेव, कांटो ने पहने मोती, अमन प्रकाशन, कानपुर (२०१६)पृ.२७

१०. प्रो. हरिशंकर'आदेश', जीवन सप्तशती, पृ. ७३

११. शर्मा तेजेंद्र, मैं कवि हूं इस देश का, यश प्रकाशन, नई दिल्ली(२०१४) पृ.६०

१२. डॉ. गौतम सचदेव, कांटों ने पहने मोती, अमन प्रकाशन, कानपुर (२०१६) पृ. १०४

१३.आर्य सुषमा / नावरिया अजय, प्रवासी हिंदी कहानी एक अन्तर्यात्रा, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली(२०१३) पृ. १८-१९

१४. तलवाड़ स्वर्ण, कविता तुम कौन हो?, मेधा बुक्स प्रकाशन, दिल्ली(२००७) पृ. ०७

प्रो.सुधाकर शेंडगे,
हिंदी विभाग,
डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर
मराठवाड़ा विश्वविद्यालय,
औरंगाबाद. (महाराष्ट्र) ४३१००४
मो. ९४२१३३५५०९
ई-मेलः dr.sudhakarshenles@gmail.com

विद्या के विविध रूप : आधुनिक परिदृश्य में प्रासंगिकता और संभावनाएँ

डॉ बालकृष्ण राय

सहायक निदेशक (शैक्षिक)
राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, मुख्यालय, नोएडा
उ.प्र,.२०१०३०९

मानव जीवन को सुंदर बनाने के लिए विद्वानों, चिंतकों, मनीषियों आदि ने हमेशा चिंतन-मनन किया। इसके लिए विद्या को सशक्त माध्यम माना गया। व्यापक रूप में जो ज्ञेय है, अर्थात् जो भी जानने योग्य है, वह विद्या है। विद्या की अवधारणा वेदों और शास्त्रों में उल्लिखित है। प्रारंभ में आध्यात्मिक संदर्भ प्रमुख रहा, परंतु कालांतर में इसका सामाजिक तथा व्यक्तिगत संदर्भ महत्वपूर्ण बना। साथ ही विद्या को मुक्ति (अर्थात् बंधनों से मुक्ति) का आधार माना गया इसीलिए 'सा विद्या या विमुक्तये' का सूत्र प्रचलित हुआ । विद्या की समृद्ध परंपरा से आज भी अनेक शिक्षाएं ली जानी चाहिए ताकि समाज में व्याप्त विसंगतियों का समाधान संभव हो सके। समयांतराल में विद्या को शिक्षा की संज्ञा दी गई तथा प्राचीन काल की भारतीय शिक्षा पद्धति में अनेक मूल्यों की स्थापना की गई और वह जन सामान्य के दैनिक-जीवन का अंग बनी। आज के वैश्विक परिप्रेक्ष्य में उनकी प्रासंगिकता और संभावनाओं की समीचीन व्याख्या की जानी चाहिए।

सर्वप्रथम संस्कृत वांङ्मय में विद्या के स्वरूप पर विचार करते हैं।

संस्कृत साहित्य में विद्या का स्वरूप

अर्थात् संस्कृत वांङ्मय ने अपनी विशाल परिधि में मानवीय चिंताधारा के अधिकांश पक्षों को समेट लिया है। मनुष्य की भौतिक स्मृद्धि कैसे हो तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रगति कैसे हो, इसके लिए साधन निर्दिष्ट किए गए हैं-

विद्या नाम नरस्य रुपमधिंक प्रच्छन्निगुप्तम् धनम्
विद्या भोगकरी यशः सुखकरी विद्या गुरूणाम गुरुः।
विद्या बंधुजनों विदेशगमने विद्या परं दैवतं
विद्या राजसु पूज्यते, नहिं धनम, विद्या विहीनः पशुः?

विद्या ही मनुष्य का सबसे सुंदर रूप है, यही सबसे बड़ा गुप्त धन है, विद्यावान को सब प्रकार के भोग सुलभ हो जाते हैं, यश मिलता है तथा सुख प्राप्त होता है। विद्या तो गुरुओं का भी गुरु है। विदेश जाने पर विद्या ही बंधु के समान सहायता करती है । विद्या ही उत्कृष्ट देवता है, राजा भी विद्या की ही पूजा करते हैं, धन की नहीं । जिसने विद्या नहीं पढ़ी, उसे मनुष्य नहीं, पशु समझना चाहिए।

मातेन रक्षति पितेन हिते नियुङ्के
कान्तेष चाभिरमत्य पत्नीत्य खेदम्।
लक्ष्मी तनोति वितनोती च दिक्षु कीर्ति

किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।

'विद्या माता की तरह रक्षा करती है, पिता के समान कल्याण की ओर ले जाती है, पत्नी के समान मन की सारी उलझनों को दूर करके मन को प्रसन्न रखती है, संपत्ति बढ़ाती है तथा चारों ओर यश फैलाती है। इस प्रकार कल्पलता के समान विद्या क्या-क्या नहीं करती ?'

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनात्धर्मः ततः सुखम् ।।

'विद्या से विनय आती है, विनय से पात्रता आती है, पात्रता से धन की प्राप्ति होती है, धन से धर्म और धर्म से सुख की प्राप्ति होती है ।

नास्ति विद्यासमो बंधुर्नास्ति विद्यासमं सुहृत।
नास्ति विद्यासमं वित्तं नास्ति विद्यासमं सुखम्?

विद्या जैसा बंधु नहीं है, विद्या जैसा मित्र नहीं है और विद्या जैसा अन्य कोई धन या सुख नहीं।

ना विद्या समो चक्षु।
विद्या के समान आंख नहीं है।

साथ ही, हिंदी शब्दसागर के अनुसार, 'वह ज्ञान जो शिक्षा आदि के द्वारा उपार्जित या प्राप्त किया जाता है। वह जानकारी जो सीखकर हासिल की जाती है, वह विद्या है।'

इस प्रकार भारतीय मनीषियों ने विद्या को जीवन के लिए आधार माना गया और सारे सुखों का केंद्र बिंदु स्वीकार किया गया है। वेद, उपनिषद् से लेकर सभी श्रेष्ठ ग्रंथों में विद्या की महिमा का ज्ञान किया गया।

विद्या के साथ अविद्या की संकल्पना भी सामने आई। जो जीवन को प्रकाशित करती है, वह विद्या है और दूसरी ओर जो मायाजनित है, अज्ञानी बनाती है, वह अविद्या है ।

विद्या के अन्य भेद किए गए-परा विद्या तथा अपरा विद्या। परा विद्या आध्यात्मिक जगत से जुड़ी हुई है जबकि अपरा विद्या भौतिक जगत से। संसार में हम वस्तुओं, पदार्थों आदि से अनेक तरह के ज्ञान प्राप्त करते हैं, उन्हें विद्या के अंतर्गत रखा गया। यही विद्या हमें मुक्त करती है चिंतन के नए द्वार खोलती है।

सा विद्या या विमुक्तये

अनेक विद्वानों ने विद्या से मुक्ति की कल्पना की है। महात्मा गांधी ने लिखा है - 'यह प्राचीन सूत्र आज भी उतना ही सही है जितना पहले था। विद्या का अर्थ यहां केवल आध्यात्मिक ज्ञान नहीं है, न मुक्ति से यह मतलब है कि मृत्यु के बाद आध्यात्मिक मोक्ष मिल जाए। ज्ञान में वह सारी शिक्षा शामिल है, जो मानव जाति की सेवा के लिए उपयोगी हो। और मुक्ति का अर्थ वर्तमान जीवन में भी सब प्रकार की गुलामी से छुटकारा पाना है। गुलामी दो तरह की होती है- किसी दूसरे का दास होना और अपनी ही कृत्रिम आवश्यकताओं का दास होना। इस आदर्श की प्राप्ति के लिए प्राप्त किया हुआ ज्ञान ही सच्ची शिक्षा है ।'

इसके अलावा आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कविता की परिभाषा देते हुए लिखा है - 'हृदय की मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है, उसे कविता कहते हैं।' आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी साहित्य के इतिहास को मानव की जयगाथा की विकासकथा कहा है और इस जयगाथा का लक्ष्य मनुष्य की मुक्ति है। इसीलिए उन्हें मानवतावादी विचारक कहा गया है। उनके अनुसार मानव मुक्ति का अर्थ है - 'अगला कदम सामूहिक मुक्ति का है, सब प्रकार के शोषण से मुक्ति का है। अगली मानवीय संस्कृति मनुष्य की समता और सामूहिक मुक्ति की भूमिका पर खड़ी होगी। इतिहास के अनुभव इसी की सिद्धि के साधन बनकर कल्याणकर और जीवनप्रद हो सकते हैं'।'

आधुनिक कवि मुक्तिबोध ने 'ब्रह्मराक्षस' कविता में तथा 'ब्रह्मराक्षस का शिष्य' कहानी में अज्ञान से मुक्ति का उल्लेख किया है तथा आत्मा की मुक्ति को भी अनिवार्य माना है।

इस प्रकार मुक्ति के मर्म को उद्घाटित करने के लिए अनेक आयाम दृष्टिगोचर होते हैं। जहां एक ओर गांधीजी ने इसे मानव सेवा से जोड़ा तो दूसरी ओर हिंदी के साहित्यकारों ने हृदय की मुक्ति, समाज की मुक्ति अथवा बंधनों से मुक्ति को श्रेयस्कर माना। मूल विचारणीय विषय यह है कि मुक्ति के जितने भी संदर्भ हैं उन्हें आधुनिक परिदृश्य में व्याख्यायित करने की जरूरत है और आधुनिक शिक्षा प्रणाली को नए मानदंडों के साथ-साथ परंपरागत महत्वपूर्ण पक्षों को समावेशित करने की आवश्यकता है ।

अब एक नज़र शिक्षा की परंपरा पर डालते हैं और उसके बदलते स्ववरूप को देखते हुए विभिन्नो आयामों पर प्रकाश डालते हैं।

प्राचीन काल में शिक्षा का स्वरूप

प्राचीन काल में शिक्षा को स्व उत्थालन की एक प्रक्रिया समझा जाता था जो जन्म से मृत्युं पर्यन्त चलती रहती थी। वास्तव में जिससे मनुष्य विद्या आदि शुभ गुणों की प्राप्ति और अविद्या आदि दोषों को छोड़कर सदा आनंदित हो सके, वह शिक्षा कहलाती है। अर्थात् शिक्षा गुणों को धारण करा दुर्गुणों से बचाती है।

शिक्षा शब्द 'शिक्ष' धातु से बना है जिसका अर्थ है सीखना। भौतिक शिक्षा अनुकरण द्वारा सीखी जाती है जसिका संबंध ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों तथा मनबुद्धि तक सीमित है।

आध्यात्मिकता, चरित्र निर्माण, सर्वांगीण विकास, पूर्णता की अभिव्यिक्ति, संपूर्ण शक्तियों का विकास, नागरिक भावना, कुशलता को प्रोत्साहन, संस्कृति का संरक्षण तथा प्रसारण शिक्षा के निश्चित लक्ष्य तथा उद्देश्य थे। शिक्षा के अंतर्गत व्याकरण, इतिहास, पौराणिक कथाएं, वेद, तर्कशास्त्र, राज्य तंत्र, युद्धकला तथा विज्ञान, ललित कला इत्यादि का गहन अध्ययन शामिल था। साथ ही एक ओर अठारह विद्याओं, जिनमें चार वेद, छओ अंग, मीमांसा, पुराण, गांधर्ववेद आयुर्वेद, ज्योतिष, न्याय, अर्थशास्त्र, और धर्मशास्त्र , का उल्लेख किया गया तो दूसरी ओर चौंसठ कलाओं को शिक्षा का अभिन्न अंग माना गया है।

इस प्रकार उस काल में शिक्षा को आत्मं उन्न यन का आधार तथा जीवन पर्यन्त चलनेवाली निरंतर प्रक्रिया समझा जाता था और विद्याथिर्यों के शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक तथा आध्यारत्मिक क्षमताओं को सुव्यवस्थित तथा क्रमिक विकास का आधार समझा जाता था जिससे वे एक उपयोगी नागरिक के रूप में जीवनयापन कर सकें तथा वर्तमान और भविष्य में उन्नति कर सकें।

आधुनिक काल में भारतीय शिक्षा का स्वरूप

ईस्ट इंडिया कंपनी के शासनकाल में परंपरागत शिक्षा के मूल तत्वों की अवहेलना की गई। इस काल में मैकॉले की शिक्षा व्यवस्था ने बेहद हानि पहुंचाई। उसने सन् १९३५ में संस्मरण पत्र तैयार कर संस्कृत, देशज भाषाओं को नकारा और अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पाश्चात्य विज्ञान का समर्थन किया जिसमें उसकी औपनिवेशिक मानसिकता निहित थी। वह सभी को शिक्षित करने के पक्ष में नहीं था अपितु एक ऐसे वर्ग का निर्माण करना चाहता था जो भले ही भारतीय हो परंतु अपनी रुचियों, विचारधारा, नैतिकता तथा बुद्धि में अंग्रेज़ हों। अर्थात् वह मानसिक गुलामी का पक्षधर था।

बाद में चलकर भी अन्य शासकों के द्वारा आयोग बनाए गए परंतु उनकी दृष्टि अंग्रेजियत पर ही थी। दुर्भाग्य से हम आज भी मैकॉले आदि की शिक्षा पद्धति को छोड़ नहीं पाए हैं। खास बात यह रही कि महात्मा गांधी ने १९३७ में वर्धा कांफ्रेंस में बेसिक एजुकेशन अर्थात बुनियादी शिक्षा का प्रस्ताव रखा। साथ ही, उस समय के समाज सुधारकों, दयानंद सरस्वती, राजा राम मोहन राय आदि ने समाज की कुरीतियों, अंधविश्वासों पर कठोर प्रहार किया और प्रार्थना समाज, आर्य समाज आदि की स्थापना कर समाज को नए ढंग से शिक्षित करने का प्रयास किया।

भारतीय विद्वानों तथा पश्चिमी शिक्षाविदों ने शिक्षा के अर्थ को व्यापकता प्रदान की। कुछ प्रमुख विचार द्रष्टव्य हैं:-

(क) शिक्षा से मेरा तात्पंर्य बालक और मनुष्य् के शरीर, मन तथा आत्मार के सर्वांगीण एवं सर्वोत्कृष्टा विकास से है। (महात्मा गांधी)

(ख) मनुष्य की अन्तर्निहित पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। (स्वामी विवेकानंद)

(ग) शिक्षा व्यक्ति की उन सभी भीतरी शक्तियों का विकास है जिससे वह अपने वातावरण पर नियंत्रण रखकर अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह कर सके (जॉन ड्यूपी)

(घ) शिक्षा व्यमक्ति के समन्वित विकास की प्रकिया है। (जिद्द कृष्ण मूर्ति)

(ङ) शिक्षा का अर्थ अन्ततः शक्तियों का बाह्य जीवन से समन्व्य स्थातपित करना है।(हर्बट स्पेङन्सिर)

(च) शिक्षा मानव की सम्पू र्ण शक्तियों का प्राकृतिक, प्रगतिशील और सामंजस्यरपूर्ण विकास है। (पेस्ताकलॉजी)

प्रासंगिकता तथा संभावनाएं

हमारा देश विश्वन गुरु के रूप में समादृत होता रहा। विद्या अथवा शिक्षा की विशाल परंपरा के विवेचन और विश्लेवषण से यह सिद्ध होता है कि हमारी दुर्लभ धरोहर सुरक्षित रहनी चाहिए। विद्या की संकल्पवना के अंतर्गत सभी ज्ञान विज्ञान को समेटा गया और जिसका व्यातपक लक्ष्यह था मानव जीवन को सर्वश्रेष्ठं बनाना। अतः यदि हम विद्या के अंतर्गत समाविष्ट? सभी महत्वापूर्ण पक्षों की नई व्या?ख्याि प्रस्तुगत कर आज के संदर्भ में उनका अनुपालन करें तो अत्य्न्तव हितकर होगा। कहा जाता है कि रखा हुआ पैर परंपरा है और उठा हुआ पैर आधुनिकता। इसलिए समय के द्वंद्व को नए प्रमाणों पर जांच लें तो विद्या जड़ नहीं, सजीव साबित होगी। इसकी मूल मान्यवताएं नई शिक्षा की आधारशिला बन जाएगी। हम विद्या के व्याबपक सन्दसर्भों को इस प्रकार विश्लेवषित कर सकते हैं-

१. आत्मेसाक्षात्कार

व्यकक्ति का बहुमुखी विकास अनिवार्य है। उपनिषद् में 'आत्मायवारे द्रष्ट व्यो'ः अर्थात् 'शिक्षा आत्म.साक्षात्कुार कराए' ऐसी धारणा स्थांपित की गई। व्यमक्ति का भौतिक, नैतिक, चारित्रिक और आध्यारत्मिक विकास होगा तभी सुदृढ़ समाज बनेगा, सशक्ता भारत बनेगा। भारत के मनीषियों ने आत्माविकास के लिए विभिन्नब शास्त्रों् की रचना की और गुरुकुल परंपरा में शिष्यच को गुरु सभी ज्ञान-विज्ञान में पारंगत करते थे। ज्ञान की व्या पकता बहुत अधिक थी इसीलिए विद्या से जो ज्ञान प्राप्ति होता था वह बंधनों से मुक्त कर देता था। तात्पयर्य है कि शस्त्र और शास्त्रु की शिक्षा शारीरिक, मानसिक तथा आत्मिक विकास के द्वार खोलती थी। चिंतन करना होगा कि क्याप आज की नई शिक्षा प्रणाली इन गुणों को समेटकर चल रही है अथवा नहीं? शायद उत्त र नकारात्म क होगा क्योंणकि आधुनिक शिक्षा संसाधनों के विकास पर ज्यातदा केन्द्रित हो गई है, व्यरक्तित्वो विकास पर नहीं। इसीलिए नई पीढ़ी में विसंगतियां सर्वत्र दिखाई देती हैं। चरित्र के मानदंड बदल गए हैं, पश्चिम की अंधी दौड़ में नई पीढ़ी भाग रही है। अतः हमें रुककर अपनी दिव्यड तथा चिरस्था्यी परंपरा के उज्ज वल पक्षों को परखकर अपनाना चाहिए।

इस मायने में अनेक संभावनाएं हैं। शिक्षा के नए स्वजरूप पर निरंतर मंथन जारी है। न केवल सरकारी योजनाएं बल्कि स्वै च्छिक, सामाजिक व आध्याषत्मिक संस्थााएं पुरजोर तरीके से व्याक्तित्वअ निर्माण पर कार्य कर रही हैं। इस दिशा में हमारे चिरंतन शास्त्रं अवश्यव दिशा निर्देश देंगे, नए मूल्योंम के सृजन में पथप्रदर्शक बनेंगे। जहां तक विद्यालयों और महातविद्यालयों में पाठ्यक्रमों का सवाल है, वहां समसामयिक संदर्भ में मूल्यों का आधान किया जाना चाहिए ताकि विद्यार्थियों में जीवन को संवारने की कला विकसित हो। भारत हमेशा से विश्वज के समक्ष एक आदर्श दृष्टांात रहा है। ज्ञान की अद्भुत परंपरा विद्यमान है। ऐसी स्थिति में हमारे भविष्यि के निर्माताओं को शिक्षा का व्यीपक स्ववरूप पेश करना चाहिए जो भौतिक समृद्धि के साथ चारित्रिक उत्कृाष्टोता का भी ज्ञान दे सके।

२. सामाजिक सरोकार तथा लोकमंगल

किसी भी विद्या या शिक्षा का सामाजिक पक्ष अत्य।न्त महत्त वपूर्ण होता है क्योंकि शिक्षा ही सर्वदा उत्ताम समाज का निर्माण करती है। शास्त्रों में लोकमंगल को श्रेयस्कोर बताया गया इसीलिए काव्यउ की परिभाषा में भी 'शिवेतरक्षतये' को मान्यलता दी गई। इसी प्रकार जब यह लिखा गया कि,

'सर्वे भवन्तुक सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया।

सर्वे भद्राणि पश्य?न्तुभ मा कश्चित् दुःख भागभवेत्।।

तब इसमें सर्वजन हिताय का स्व?र मुखरित हुआ। साथ ही 'वसुधैव कुटुम्बरकम्' की हमारी भावना भी पूरे विश्वज में विख्या?त है। इसे व्युक्तै करते हुए लिखा गया है-

'अयं निजः परोवेति गणना लघु चेतसाम्।

उदार चरितानाम् तु वसुधैव कुटुम्बणकम्।।

महर्षि वेदव्यानस जी ने अठारह पुराणों में दो विशिष्टर बातें कही हैं। पहली-परोपकार करना पुण्यम होता है और दूसरी-पाप का अर्थ होता है दूसरों को दुःख देना।

आधुनिक परिदृश्यी में भी ऐसी भावनाएं जागृत की जानी चाहिए। व्यकक्तिवादिता अथवा एकांतिकता का बढ़ता प्रभाव घातक है। बदलता परिवेश प्रौद्योगिकी आधारित हो गया है और पश्चिमी बयार का असर स्पाष्टद परिलक्षित हो रहा है। व्य्क्ति आत्मगकेन्द्रित होकर व्यपक्तिगत उपलब्धि तक सीमित हो गया है। वह अपने अधिकारों को तो पाने को लालायित है परंतु कर्त्तिव्योंा अथवा उत्तधरदायित्वों से विमुख है। अतः विद्या की जो सर्वमंगल की उदात्तब भावना है उसका प्रस्फुटन आधुनिक समाज में परमावश्यकक है तभी आदर्श समाज का निर्माण होगा। आज अज्ञान, अश्रद्धा और अकर्मण्य?ता से बेहद हानि पहुंची है।

३. जीवनपर्यन्ति शिक्षा

भारत में जीवन पर्यन्तश शिक्षा की एक लम्बी परंपरा रही है। भारतीय समाज, संस्कृरति और शिक्षा में हमेशा यह सन्निहित रही है क्यों कि यहां शिक्षा मात्र आजीविका तक सीमित नहीं रही बल्कि उसे जीवन जीने की कला से जोड़ा गया। विद्या अथवा शिक्षा एक सतत प्रक्रिया मानी गई क्यों कि इसे ही जीवन मुक्ति का साधन माना गया। प्रसिद्ध वैज्ञानिक अलबर्ट आईंस्टीन ने लिखा 'Education is what remains after one has forgotten everything he learnt in school.' अर्थात् जिस ज्ञान को हम जीवन भर उपयोग में लाते हैं, वही असली शिक्षा है। इसी प्रकार एक पश्चिमी विद्वान फ्रेदेरिक राबर्टसन का मत है- 'Instruction ends in the school-room but education ends only with life.

विडंबना यह है कि हमने मात्र स्कूप्ली से लेकर विश्व विद्यालयी शिक्षा को ही सर्वस्वे मान लिया है जबकि जीवन के लिए उपयोगी सभी प्रकार के ज्ञान शिक्षा के अंतर्गत आयेंगे। रोबर्ट मेनार्ड हुत्चिंस ने ठीक ही लिखा है 'The objective of education is to prepare the young to educate themselves throughout.

विद्या तथा शिक्षा को संपूर्ण प्राचीन परंपरा से लेकर बाद के चिंतकों ने भी जीवन से जोड़ा। आज जीवनपर्यंत शिक्षा का दायरा सीमित कर दिया गया है और इसके अंतर्गत प्रौढ़, सतत शिक्षा, वैकल्पिक शिक्षा आदि को ही मात्र शामिल किया जाता है। सच्चांई यह है कि मनुष्यप का पूरा जीवन शिक्षा से सार्थक, सफल, उपयोगी और दिव्य बनता है। इसलिए सभी शैक्षिक संस्थाहनों में इसके लिए एक विस्तृत कार्य योजना बननी चाहिए और इसे हरेक पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाना चाहिए।

४. मानवीय मूल्यों और सांस्कृऔतिक विरासत की रक्षा

संपूर्ण शास्त्री य परंपरा मानवीय मूल्योंस की स्थापिना के प्रति संकल्पित थी। इसका कारण मानव जीवन को उदात्त और श्रेयस्कमर बनाना था। किसी भी कालजयी रचना अथवा उपजीव्य काव्यण को देखें तो सर्वत्र जीवनोपयोगी संदेश दिखाई देंगे। आचार्यों ने जीवनानुभव को सामान्यत जन तक पहुंचाने की चेष्टार की इसीलिए विश्व में हमारी सांस्कृनतिक थाती अप्रतिम रही है। भारतीय संस्कृनति को सुरक्षित रखने के लिए बाद के विद्वानों ने भी अथक प्रयास किए। चाहे भौतिक समृद्धि की बात हो या सामाजिक समरसता की, सभी पक्षों पर मंथन किए गए। इसीलिए आज भी पश्चिमी देश हमारी विरासत की निगूढ़ बारीकियों का विश्लेषण कर रहे हैं और उन्हें कल्याणकारी भी सिद्ध कर रहे हैं।

दुर्भाग्यवश आज चारों ओर भ्रष्टाचार, आतंकवाद, जातिवाद, सांप्रदायिकता, नैतिक पतन, अहिष्णुता, परस्प्र वैमनस्य आदि अनेक कुरीतियों का बोलबाला है। ऐसी विषम स्थिति में सामाजिक कुव्युवस्थाो फैल गई है। अमेरिका जैसे प्रभावशाली देश में विद्यार्थी द्वारा स्कूल में भी अंधाधुंध गोलियां चलाने की अनेक जघन्य घटनाएं प्रकाश में आईं हैं। इसलिए मूल्योंा के माध्यम से ही इन पर काबू पाया जा सकता है। मूल्य वास्तव में ऐसी मान्यताएं हैं जो सर्वमान्यं होती हैं और कल्या णकारी होती है। अतएव सामाजिक बदलाव के लिए विद्या की मूल्याहधारित सनातन परंपरा अवश्य? ही श्रेयकर सिद्ध होगी।

५. बंधनों से मुक्ति

विष्णु पुराण के प्रथम स्कंतध के १९वें अध्याााय के ४१वें श्लोरक में लिखा गया है- 'सच्चा कर्म वह है जिसका बंध निर्माण न हो, सच्चीह विद्या वही जिससे मुक्ति मिले। इससे परे जो कर्म हो वह आयास कहलाता है और इससे परे जो विद्या है वह तो बस कारीगरी की बात है।'

मुक्ति का क्षेत्र व्यापक है, जैसे - मानसिक गुलामी से मुक्ति, सामाजिक बंधनों से मुक्ति, जाति, धर्म, संप्रदाय आदि की चारदीवारी से मुक्ति इत्या दि। इसीलिए अंग्रेजी विद्वान लॉटार्ड ने मानवता की मुक्ति की ओर संकेत किया। यह एक स्वाकभाविक मानसिक प्रवृत्ति है कि वह स्ववतंत्र रहना चाहता है, स्व च्छमन्दत रूप से अपना विकास चाहता है परंतु स्थितियां आज ऐसी नहीं हैं। अनेक जकड़नों में उलझा व्यहक्ति अपने अस्तित्वा के संकट से गुजर रहा है। यहां शिक्षा का सुंदर रूप ही एकमात्र मार्गदर्शक बन सकता है और प्रेम, भाईचारा, सौहार्द, अहिंसा, शांति, सद्व्यरवहार आदि गुणों को प्राप्त किया जा सकता है तथ भारत के जीवन्तक पक्ष को प्रकाशित किया जा सकता है। वास्तगव में, भारतीय शास्त्रीीय परंपरा मनुष्यै को श्रेष्ठा प्राणी स्वीयकार कर उसे जीवन में मुक्तै रहकर आनंदित होकर जीने की कामना करती है। आज भी मानव जीवन में मुक्ति के बहुआयामी रूप को अपनाकर बेहतर बनाया जा सकता है। सभी खुशहाल रहें और सभी विकास करें, यही मुख्य लक्ष्य है।

६. विज्ञान और अध्यायत्मप का समन्वबय

यह सत्य है कि आज विज्ञान के चमत्कामर चारों ओर दिखाई दे रहे हैं। विज्ञान ने जीवन को सरल व सुगम और सुविधाओं से युक्त कर दिया है। यह मानवीय श्रेष्ठह प्रज्ञा की साकार प्रस्तुति है और इसका रचनात्मधक प्रस्फुटन जरूरी है। वस्तुतः विज्ञान और अध्यात्म की दो धाराएं हैं जिनका समन्वमय ही सच्चेक अर्थों में विकास कहा जा सकता है और इसी को वैज्ञानिक अध्यात्मवाद कहा जाता है। यह चिंतन का विषय है कि आज भी अध्यात्म की शिक्षा से समाज कितना संस्कायरित और व्यहवस्थित हो सकता है। आज की शिक्षा मूलतः धनोपार्जन तक सीमित होती जा रही है। ऐसे में मन की शक्ति की पहचान, योग, ध्याआन आदि से आत्म्विकास, आत्म तत्वस के प्रति जिज्ञासा, मनुष्यता के उदात्त रूपों का ज्ञान इत्यातदि की शिक्षा दी जाए तो क्या समाज की विकृतियों को कम नहीं किया जा सकता? आध्यातत्मिक उन्ति अवश्या ही श्रेष्ठ गुणों का सर्जन करेगी और जीने की कला सिखाएगी।

७. विद्या अथवा शिक्षा के व्याापक स्वीरूप की प्रतिष्ठा्

पहले हमने देखा कि विद्वानों ने शिक्षा के विविध आयामों को रेखांकित किया और स्पाष्ट हुआ कि मनुष्य के भौतिक, मानसिक, सामाजिक व आत्मिक विकास का सशक्तु साधन शिक्षा है जिसे परंपरा से विद्या के रूप में देखा गया। मुक्तक ज्ञानकोश विकिपीडिया के अनुसार, 'विद्या है वो जानकारी और गुण, जो हम दिखाने, सुनाने या पढ़ाने के माध्यिम से प्राप्ते करते हैं। हमारे जीवन की शुरुआत में सब जीना सीखते हैं। व्ययवहार में सकारात्म क तथा विकासोन्मु ख परिवर्तन को शिक्षा माना जाता है।' इसी प्रकार एक सुप्रसिद्ध पश्चिमी चिंतक लियो बुस्गातलिया ने लिखा - 'परविर्तन ही सच्चीआ विद्या का अंतिम परिणाम है।' अर्थात् मनुष्यल के जीवन में, सामाजिक संरचना में, देश की चतुर्दिक प्रगति में या विश्वर कल्याणि में जो भी परिर्वतन आवश्य क हैं, वे शिक्षा के माध्य म से ही संभव हैं। अतः इसे एक सशक्तव साधन के रूप में अपनाकर क्रांतिकारी परिवर्तन किए जा सकते हैं। कहा जाता है कि आज की शिक्षा एकांगी, अर्थप्रधान और सामाजिक उत्तररदायित्वों से विमुख कर रही है। इसलिए इसमें आमूलचूल परिवर्तन व सुधार कर समस्त मानवता को सार्थक व उपयोगी शिक्षा दी जाए जिससे व्यैक्तिगत उन्नचति भी हो, कर्त्य कर्म का बोध भी हो और मानवोचित गुणों का आधान भी हो।

८. आधुनिक चुनौतियों का समाधान

इतिहास की शिक्षा भविष्यस के लिए पथप्रदर्शक बने, इसके प्रयास होने चाहिए। आज अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी, आतंकवाद, सांप्रदायिकता आदि अनेक चुनौतियां मुंह बाए खड़ी हैं। ऐसे में क्याग शिक्षा का दायित्वे नहीं बढ़ जाता। इन मुद्दों पर सार्थक तर्क-वितर्क हो तभी नई दिशा निर्धारित होगी। नई दिशा की ओर चलने के लिए भारतीय मनीषा ने जितने रास्तेर दिखाए हैं उनका अनुसरण करते हुए वर्तमान परिप्रेक्ष्यष में नई मान्य ताएं स्थानपित की

जानी चाहिए। हमारा देश आज भी ज्ञान-विज्ञान के विभिन्नर क्षेत्रों में अपनी छाप छोड़ रहा है। व्याकवहारिक जगत से लेकर अन्तीरिक्ष जगत के सभी उपादानों पर इसकी पैनी नजर है। इसी प्रकार मानवीय गुणों के विकास को साथ लेकर चलने से जीवन यात्रा सुखद व सार्थक बन जाएगी।

उपसंहार

समग्र रूप से देखें तो धरती पर मनुष्ता की स्थोपना तथा सामाजिक पुनर्निर्माण के लिए अपनी अद्भुत परंपरा के लाभकारी बिंदुओं को आत्म सात करना होगा। साथ ही, आधुनिक शिक्षा व्येवस्थाए को अर्थप्रधान से ऊपर उठाकर सर्वांगीण विकास के व्याापक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुधत करना होगा। विद्या जैसे विषय की प्रासंगिकता इस अर्थ में है कि परंपरा से प्राप्ते अनंत ज्ञान धारा को हम विस्मृ त कर रहे हैं और उनमें स्थामपित मूल्यों् व आदर्शों को दरकिनार कर रहे हैं। सच्चाोई यह है कि भारतीय विद्या की चिंतन धारा मनुष्य् के जीवन को सुंदर बनाने पर आधारित थी लेकिन तेजी से बदलते परिवेश में सूचना और प्रौद्यागिकी ने अपना प्रभाव अवश्यल जमाया। परंतु जीवन का कोई न कोई कोना पीछे छूट गया जो व्यौक्ति का निर्माण करता है, स्व्स्थस समाज की रचना करता है और विश्वई मंगल की सृष्टि करता है। अतः आज की शिक्षा को नव्यव रूप देते हुए उसे शरीर, मन तथा आत्माग के सर्वांगीण तथा सर्वोत्कृ ष्ट विकास तक ले जाना होगा। फलस्व रूप धर्म, जाति, लिंग, संप्रदाय, भाषा, इत्यादि के भेद से ऊपर उठकर लोकमंगल की भावना से मुक्त्ि, का प्रयास संभव होगा। इससे व्यसक्ति में अनेक उदात्तत मूल्यों , जैसे-प्रेम, शांति, सौहार्द, सुख, सहिष्णुसता, आदि का विकास होगा तथा हिंसा, आतंकवाद, पक्षपात, जैसी बुराइयों से मुक्ति मिलेगी और एक आदर्श समाज का निर्माण होगा।

संदर्भ -

१. The post modern condition: A Report on knowledge by Jean – François Leotard

२. आधुनिक शिक्षा पद्धति - डॉ ब्रह्म देव, गुरुकुल कांगड़ी विश्वइविद्यालय, हरिद्वार

३. प्रारंभिक शिक्षा में डिप्लोमा पाठ्यक्रम - एनआईओएस, नोएडा का पाठ्यक्रम

४. मुक्तं ज्ञानकोश विकिपीडिया

५. हिंदी शब्दशसागर, भाग - ९, नागरी प्रचारिणी सभा, काशी

६. गजानन माघव मुक्तिबोध कविता कोश

७. विचार और वितर्क - आचार्य हजारी प्रसाद द्विदी पृ. ११६

८. विष्णुऔ पुराण, प्रथम स्कंध

९. शिक्षा –विकिपीडिया

10. Website Education - ncert.nic.in

11. Website – sasanskrit.org/ Sanskrit.subhashit . education. Html

12. Website - www.education-quotes.in.hindi

13. Website - www.bharatdarshan.co

डॉ बालकृष्ण राय

सहायक निदेशक (शैक्षिक)

राष्ट्रीय मुक्त विद्यालयी शिक्षा संस्थान, मुख्यालय, नोएडा

उ.प्र.-२०१०३०९

सामाजिक विसंगतियों से विचलित परिवेशगत यथार्थ की सहज अभिव्यक्ति

नई दिल्ली दो सौ बत्तीस किलोमीटर

डॉ.ममता पंत

असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय अल्मोड़ा
एस.एस.जे.परिसर, अल्मोड़ा
ईमेलः mamtapanth.panth@gmail.com
मोबाइलः ९८९७५९३२५३

चौराहा और पुस्तकालय कविता से हिंदी जगत में अपनी विशिष्ट पहचान बनाने वाले कवि खेमकरण 'सोमन'का पहला कविता संग्रह नई दिल्ली २३२ किलोमीटर है जो समय साक्ष्य देहरादून से प्रकाशित है। आलोच्य काव्य संग्रह में चौरासी कविताएं हैं जो आस्था-अनास्था, आक्रोश, विश्वास-अविश्वास, आशा-निराशा एवं मोहभंग से उपजे अपने परिवेश के प्रति प्रतिबद्ध जीवन यथार्थ की सहज अभिव्यक्तियां हैं। कृतज्ञता, मजदूरों की विवशताएं, वृद्धावस्था की विसंगतियां, समाज, चुनाव, राजनीति, परिवार, जीवन-मूल्य, जीवन-संघर्ष, बाजारवाद, बेरोजगारी, लाचारी, भूख, विकास,विनाश, किसानों का दर्द, नारी जीवन की व्यथाएं इत्यादि संग्रह की कविताओं के मुख्य विषय हैं।

संग्रह की पहली कविता 'कृतज्ञता की तख्ती लेकर' शीर्षक में कवि ने आज के छल-प्रपंच से भरे माहौल में भी कृतज्ञता शब्द के प्रति जो विश्वास दिखाया है वह कवि के सकारात्मक दृष्टिकोण का परिचायक है-

'नदी बही जा रही है कृतज्ञता से न छल है मन में- न कपट, न चमचागिरी

उसका सरल सुंदर रूप देखकर, सैकड़ो जीव-जंतु भी हैं कृतज्ञ उसके प्रति' (पृ.११)

मजदूर निहार रहे थे कविता हाशिए पर खड़े मजदूरों की व्यथा-कथा का वृतांत है। काम को जाते वक्त मृत्यु का पूर्वाभास होने पर मजदूर किस प्रकार से अपने घर परिवार को निहारते हैं; उसका बहुत ही मार्मिक चित्रण इस कविता में किया गया है-

'उस दिन मजदूर निहार रहे थे अपनी पत्नियों को पत्नियां समझ नहीं पाईं आज इनको ये क्या हुआ उस दिन औद्योगिक इलाके में आठ मंजिला जर्जर इमारत गिरी उस दिन गिर गए सैकड़ों मजदूर भी लाश बनकर' (पृ.१३-१४)

'गन्ने आज खोई बन चुके हैं' कविता में कवि मजदूरों की तुलना कोल्हू में डाले जाने वाले गन्ने से करता है और पूंजीपतियों की मानसिकता की ओर भी संकेत करता हुआ कहता है कि, जिस प्रकार कोल्हू में गन्ने की अंतिम बूंद निचोड़ ली जाती है उसी प्रकार मजदूरों के शरीर से भी खून की अंतिम बूंद निकल जाने तक उनका शोषण किया जाता है-

'इतना हो जाने के बाद भी गन्ने डाल दिए जाते हैं फिर से कोल्हू में

गन्ने अब खोई बन चुके हैं

टूट-टूट कर गिरने-बिखरने लगते हैं छोटे बड़े टुकड़ों में खोई भी डाल दी जाती है अंत में भट्टी में मजदूर भी गन्ने ही होते हैं' (पृ.६८)

'दोनों ही आदमी थे' कविता में कवि ने बड़ी ही सजगता से शोषक और शोषित वर्ग का एक यथार्थ चित्र सम्मुख रख दिया है। यह कविता अपने कलेवर में छोटी होने के बावजूद भी बहुत बड़ी बात कहती है -

'एक खाता था
सोच-सोच के
दूसरा खाता था
नोच-नोच के।'(पृ.९७)

वर्तमान समय मशीनी युग है ; इस युग में मानव एक यंत्र की भांति ही अपना जीवन-यापन कर रहा है । इस मशीनी युग में भावनाएं, संवेदनाएं खत्मप्राय सी हो चुकी हैं। 'पिताजी बहुत हंसते रहते हैं', 'रहने दो उनको भी इसी तरह', 'इतना भी क्या'कविताओं में कवि ने वृद्धाश्रम को भेजे जाने वाले माता-पिता के दुखों की ओर संकेत करते हुए उनके बच्चों के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है । कवि के अनुसार जिस समय माता-पिता को अपने बच्चों एवं परिवार की सबसे अधिक आवश्यकता होती है तब उन्हें बोझ समझकर घर-परिवार से दूर वृद्धाश्रम भेज दिया जाता है! उन बच्चों के प्रति प्रति घृणा व्यक्त करते हुए कवि चतिया शब्द का प्रयोग भी करता है। यहां पर इस शब्द का प्रयोग थोड़ा सोचने को विवश तो करता है लेकिन यह कवि का आक्रोश मात्र ही है-

'उधर वृद्धाश्रम में पिताजी
बहुत हंसते रहते हैं
मिलते हैं हम सब जब
जब भी
लाखों कमाने वाले
पढ़े-लिखे चूतिया बेटे
कभी समझ न सके कि-
हंसने का मतलब हमेशा
हंसना नहीं होता।'(पृ.१५)

कवि के अनुसार ऐसी पढ़ाई किस काम की जो अपने माता-पिता का सम्मान और ख्याल रखना ही न सिखा पाए। वे माता-पिता जिन्होंने अपने बच्चे की पढ़ाई के लिए खेत बेच दिए और मां ने अपने आभूषणों तक का मोह न रखा-

'इतना भी क्या पढ़ना कि
जिस पिता ने बेच दिए खेत
पढ़ाई के लिए मां ने
मोह भी न रखा अपने आभूषणों का उन्हें को भेज दिया अंत में
दूर कहीं वृद्धाश्रम !' (पृ.१२१)

'रहने दो उनको भी इसी तरह' कविता शुरुआती पंक्तियों में निरर्थक सी लगती है लेकिन अंतिम पंक्तियों में कवि कुछ इस तरह से आग्रह करता सा दिखाई देता है कि जिस तरह घर में कूड़ेदान, झाड़ू ,पुराने कैलेंडर, फोटो, कुंडी, कील, लोहा, सिलबट्टा, बोतलें, यानी जरूरी एवं बेकार चीजें रखी रहती हैं उसी तरह अपने माता-पिता को भी रहने दें घर पर, वृद्धाश्रम ना भेजें। इन पंक्तियों में कवि की मानवीय संवेदनाएं व्यंजना के साथ व्यक्त हुई हैं-

'हर समय जरूरत नहीं होती
फिर भी रखते हैं लोग अपने घरों में गंगाजल
रखते हैं चिट्ठियां
रखते हैं कुर्सियां रखते हैं पैसे
रखते हैं लोग बहुत सारा सामान
जैसे - नए-पुराने कपड़े और किताबें
रहने दो उनको भी इसी तरह
इस घर में
उनको मत भेजो वृद्धाश्रम।' (पृ. २५-२६)

'लौट पड़ते हैं बीमार बच्चे', एवं 'बात अटक गई थी' कविताएं वर्तमान समय में लुप्त हो रहे सामाजिक मूल्यों एवं संवेदनहीनता का जीता-जागता उदाहरण हैं। कवि स्वास्थ्य संबंधी व्यवस्थाओं की पोल खोलते हुए, डॉक्टरों की फीस पर करारा व्यंग करते हुए कहता है-

'डॉक्टरों की फीस सुनकर
ठहर जाते हैं माता-पिता आज भी
वे तोलते हैं
डॉक्टरों की फीस का वजन
अपने बीमार बच्चों और उनकी बीमारी का वजन
तो पाते हैं- डॉक्टरों की फीस का वजन ही है
बहुत ज्यादा
गरीब माता-पिता लौट पड़ते हैं

लौट पड़ते हैं बीमार बच्चे भी
इस दुनिया से -
इस दुनिया में कभी न आने के लिए।'(पृ.२२)

आर्थिक विपन्नता गरीबों के लिए एक अभिशाप सी है। बीमार होने पर इलाज न कर पाना और असमय ही मौत को गले लगाना गरीबों की एक बड़ी ही त्रासद नियति है , जिसे आवाज देते हुए कवि कहता है-

'जिंदगी
मौत की समर भूमि में
मौत न ले जाती उसे परास्तकर-घसीट कर
परंतु बात अटक गई थी
डॉक्टर की फीस पर।' (पृ. १०१)

हमारे समाज में डॉक्टर को भगवान का दर्जा दिया जाता है जो अपने कर्म में व्यावसायिक बन चुके हैं; उसका जीता-जागता उदाहरण हैं उपरोक्त पंक्तियां जिसमें कवि ने बेबाकी से चिकित्सा संबंधी व्यवस्थाओं को उजागर किया है।आज जिस युग में हम जी रहे हैं उस युग में मानव जीवन की कोई कीमत नहीं है। अंततः कविता में कवि कहता है-

'कीमतें की जा सकती थीं कम
या
कम की जा सकती थीं
लोगों की जानें
अंततः
लोगों की जानें ही कम हुईं !' (पृ.११५)

कवि की सरलता तो देखिए इस माहौल में भी वह विश्वास को जीवित रखने की बात कहते हुए इंसानी वजूद को जिंदा रखने की बात कहता है -

'बहुत सरल नहीं है
तोड़ दूं आपके विश्वास को
और तोड़-ताड़कर कर दूं खंड-खंड

वही वजूद देना
पहले वाला -
बहुत सरल नहीं है।' (पृ.१६)

'नई दिल्ली दो सौ बत्तीस किलोमीटर'कविता में कवि माइलस्टोन के बहाने पढ़े-लिखे व्यक्तियों पर तंज कसते हुए कहता है-

'पांव को मिट्टी में धंसाए इन पत्थरों ने
कभी किया नहीं अपने आंकड़ों से हेर-फेर
कभी डोला नहीं इनका ईमान पढ़े- लिखे आदमी की तरह!'

या कनाडा आदि देशों में बस चुके बेटों की तरह'(पृ.१८) इसी कविता के अंत में कवि अपनी मिट्टी न छोड़ने की बात करते हुए कहता है -

'पत्थर जानते हैं -
जिस दिन वे
निकाल लेंगे मिट्टी से अपने पांव
वे गिर जाएंगे हमेशा के लिए!'(पृ.१९)

'थल-मुवानी जिला-पिथौरागढ़ का पानी' शीर्षक कविता में कवि अपने कार्य स्थलों से संबंधित लोक की विशेषता को उजागर करते हुए अपने व्यक्तिगत जीवन को साकार करने की बात करता है । उन स्थानों के बारे में कवि का कहना है कि -

'मैंने चुराई उठाई-संजोई हैं उन्हीं से-
जीवन-जीने की कलाएं विधाएं और इच्छाएं
कि जहां भी रहो पानी बनकर सरल- तरल रहो,
ताकि घुल-मिल सको वहां के पानी में बेहिसाब
ताकि लग सके पानी को पानी का रंग-ढंग ' (पृ. २१)

'दरांती' कविता विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से स्त्री चेतना को धार देती सशक्त अभिव्यक्ति है। दरांती के माध्यम से कवि ने सामाजिक भेड़ियों, जानवरों की नारी के ऊपर पढ़ने वाली कुदृष्टि की ओर संकेत करते हुए दरांती को उनकी आत्मरक्षा का हथियार बताया है -

'और दरांती काट देती है
गिद्ध
चील
भेड़ियों
कौओं,
नर-पिशाचों को भी
आए थे जो खेत-खलिहानों में,
जंगलों में
मां, बहू-बहनों को अकेली देख- जानकर।' (पृ.

२४)

'शब्दकोश'कविता में कवि ने धरती पर रहने वाले जीव-जंतुओं के मध्य प्रेम-भावना एवं सद्भाव को व्यक्त करते हुए विकृत पुरुष मनोवृत्ति पर कुठाराघात भी किया है-

'स्वीकार करोगी तुम जरूर
ऐसा सोचते हुए विनम्रता से नाग ने देखा नागिन को
नागिन ने भी महसूस किया -
वे बन सकते हैं सुख-दुख के साथी
फिर लिपटे रहे न जाने कितने घंटों तक
उस दिन उन दोनों ने जीभर प्यार किया

इतना सब कुछ हो रहा था
पर नहीं था किसी के दिल-दिमाग में
या
किसी के भी शब्दकोश में -
'बलात्कार' शब्द।' (पृ.१०८-१०९)

'खतरनाक नहीं है यह', 'खून से अब नमक निकल रहा है', 'आदमी जब अर्थ खोने लगे'शीर्षक कविताओं में कवि की विचारशीलता के दर्शन होते हैं । कवि के अनुसार मनुष्य का विचारों से खाली होना खतरनाक है-

'खतरनाक यह है कि कोई विचारों से खाली है।' (पृ.३१) सुप्रसिद्ध कथाकार पंकज मित्र के अनुसार :'खतरनाक नहीं है यह'कविता पाश की मशहूर कविता सबसे खतरनाक है सपनों का मर जाना की याद तो दिलाती है पर कवि विचारों से खाली हो जाना अधिक खतरनाक समझता है।'१' आदमी जब अर्थ होने लगे' शीर्षक कविता में कवि गुलामी की स्थिति को अभिव्यक्त करते हुए कहता है-

'आदमी जब गुलाम होने लगे
तो समझिए
शब्द ने अपना अर्थ खो दिया है
फिर कुछ भी देखिए
आईने में कुछ भी स्पष्ट नहीं दिखता
इन सबके अतिरिक्त।' (पृ.११०) इन पंक्तियों में कवि की चिंतनशीलता की प्रगाढ़ता के दर्शन होते हैं। अपने व्यापक अनुभव के अनुरूप जीवन संघर्षों को अभिव्यक्ति देते हुए कवि 'नया वर्ष' कविता में लिखता है -

'जब भी नया
वर्ष लिखना
पहला शब्द
संघर्ष लिखना ।'(पृ. ३२)

'कुछ लोग इंतजार करते हैं', 'बुरे सपने', और 'जमीनें देख रही थीं' कविताओं में कवि ने आर्थिक विपन्नता, बाजार के परिदृश एवं उपभोक्तावादी एवं बाजारवादी संस्कृति को उद्घाटित किया है। बाजार के परिदृश्य को स्थापित करते हुए कवि हाशिए पर खड़े लोगों की असहायता की ओर इशारा करते हुए कहता है-

'केले का भाव गिर जाता है-
किसी बेरोजगार आदमी की तरह

फिर पन्द्रह रुपए दर्जन के हिसाब से
काले पड़ चुके केले ले जाते हैं अपने- अपने घर
अपने बच्चों के लिए
कुछ लोग इंतजार करते हैं -
केले काले पड़ जाएं।' (पृ.३३) बहुराष्ट्रीय कंपनियों के जाल में फंस रही किसानों की जमीनों की ओर संकेत करते हुए कवि कहता है-

'राष्ट्रीय-बहुराष्ट्रीय कम्पनियां देख रही थीं/ किसानों की जमीनों की ओर' (पृ.७३) 'बुरे सपने' शीर्षक कविता में कवि बाजारवादी संस्कृति का यथार्थ उद्घाटित करते हुए बताता है कि उपभोक्तावाद और बाजार की संस्कृति किस तरह डरा-धमकाकर आम आदमी को घर छोड़ने पर विवश कर रही है -

'फिर हमने अपना गांव छोड़ दिया
कम पैसों में अपनी जमीनें छोड़ दीं ताकि
बन सके वहां शॉपिंग कॉम्प्लेक्स ,
कोई अतिसुंदर आवासीय कॉलोनी
कोई फैक्ट्री
या स्थापित हो सके
मल्टीनेशनल कंपनियों के वेंडर
बुरे सपने अब भी आते हैं दिन में भी
दस-बारह की संख्या में
फिर छीन ले जाते हैं किसी की जमीन
किसी के प्राण।' (पृ. ३६)

'तब से उदास है राम की मां' शीर्षक कविता फिल्म नगरी मुंबई की चकाचौंध और उसकी हकीकत बयां करती है। यह एक अकेले राम और उसकी मां की कहानी नहीं अनगिनत रामों और उनकी बांट जोहती उन मांओं की कहानी है जिनके बेटे फिल्म नगरी की चकाचौंध में कहीं खो से गए हैं-

'बहुत दूर
किसी गांव में राम की मां बांट रही थी जलेबी
कि बेटा बनने गया है हीरो
लौटेगा जल्द ही किसी हीरोइन को लेकर
दिन बीत गए,
महीने बीत गए
सालों बीत गए,
दशकों बीत गए
न राम की कोई फिल्म आई
ना कोई चिट्ठी
न कोई शुध-बुध
न ही कभी वह आया किसी हीरोइन के साथ
तब से उदास है राम की मां' (पृ.३७) कवि ने इस कविता के माध्यम से जहां गांव छोड़कर जा रहे बेटों और उनकी मां का दर्द उजागर किया है वहीं अपनी लोक की खत्म होती संस्कृति; जैसे रामलीला के प्रति भी चिंता व्यक्त की है, जिसका कारण कवि हीरो बनने गए लोगों को मानते हुए उन पर तंज कसते हुए कहता है-

'इस तरह
गांव ने खो दिए हैं न जाने कितने
राम, रावण, हनुमान, दशरथ, बाली, सुग्रीव, आदि
जो रामलीला खेलने के बाद
खेलने चले गए थे अपनी जिंदगी से महानगर
मुंबई कहते हैं
गांव में रामलीला नहीं होती है अब !'(पृ. ३७-३८) 'सब पूछ रहे हैं किधर दौड़ें' कविता में कवि जहां ग्रामीण परिवेश में रह रहे पहाड़ियों की सहजता एवं सरलता की ओर संकेत करते हुए कहता है -

'पीछे रह गए लोग ऐसे पहाड़ी हैं
पहाड़ को लूटना,
बर्बाद करना जो नहा×××
ये तो जानते हैं मदद करना
अजनबियों को आदर-सम्मान देना
भूखों को जीभर के खाना खिलाना
बहुत दूर से आकर
धारे से पानी भरना।' (पृ. ३९) वहीं 'कभी सुध नहीं ली उन्होंने' कविता में गांव छोड़कर शहर जा रहे लोगों की संवेदनहीनता को उजागर करते हुए उनकी अपने गांव एवं परिवार के प्रति उपजी ओछी मानसिकता का यथार्थ अंकन किया है-

'कभी सुध नहीं ली उन्होंने किसी चिट्ठी की
जिस मिट्टी में पैदा हुए उस मिट्टी की
कभी सुध नहीं ली उन्होंने शहर में बस जाने के बाद
गांव की-गांव वालों की
दुख में घिरे अपने माता पिता बहन भाई की
साफ-साफ कह दिया था -
नहीं रखना है रिश्ता तुम गंवारों से
जिस दिन छोटी बहन की सगाई थी' (पृ. ५०)

'इतना इतना इतना', 'नदी चुप रही वर्षों तक'और 'नदियां भी याद रखती हैं'कविताओं में कवि ने प्राकृतिक आपदाओं एवं उनकी विभीषिकाओं की ओर संकेत किया है-

'दिया बादलों ने भी फिर इतना कि-
बहे जा रहे घर, मकान, आंगन
खेत-खलिहान, पेड़-पौधे, घोंसले
कि जगह-जगह पानी
कि जगह-जगह लाशें।' (पृ.४२) इन सबका कारण कवि मानव की अतिमहत्वाकांक्षा को ही मानता है, उसके अनुसार -

'छीन ली लोगों ने
नदी से नदी की जमीनें
नदी चुप रही वर्षों तक
उफनती हुई नदी ने भी एक दिन
छीन ली-
लोगों से अपनी सारी जमीनें।'(पृ.७०) आज मानव अपनी लालसाओं के तले प्रकृति पर ताबड़तोड़ प्रहार कर रहा है। जिसका खामियाजा उसे कहीं न कहीं तो भुगतना ही पड़ता है क्योंकि-

'नदियां भी
याद रखती हैं
समय और संघर्ष की कथाएं।' (पृ. ११६)

'कब नहीं रोया है पहाड़'कविता में कवि पहाड़ी जीवन और वहां के वासियों की कठिनाइयों और दर्द को बयां करते हुए भ्रष्टाचार और आपदा को भी अवसर बनाकर भुनाने वालों पर कुठाराघात करते हुए कहता है -

'कब नहीं मिला है एक हजार करोड़ रुपए

फिर कब नहीं हुआ पहाड़ की खुशहाली के लिए हवन और गबन कब नहीं रोया है पहाड़
कब नहीं पहाड़ के रोने पर
कर्ता-धर्ताओं को मिला है अवसर
ब्रेक-फास्ट लंच और डिनर का' (पृ. १०४- १०५)

'बस यही हैसियत है'आज के युग की प्रासंगिक कविता है, जिसमें आम आदमी के संघर्ष और व्यवस्थाओं को देखते हुए कवि वर्तमान समय, धर्म, राजनीति, रोजगार, अवसरवादिता, तानाशाही का यथार्थ अंकन करता है और देश को बर्बाद करने के पीछे राजनेताओं के हाथ होने की ओर भी संकेत करता है-

'एक देश को बर्बाद करने और
आबाद करने का अधिकार भी उसी के पास सुरक्षित है
मामला पूरी तरह केवल उसकी खुशी का है
रोजगार की जगह अवसरवाद का जन्मदाता है
वह धर्म उसकी जेब में है और कराहती राजनीति भी
इस तरह देश चलाता है वह
कोई उसके सामने बोलता नहीं है
और कभी कोई मुद्दे की बात बोलता है तो
वह कर देता है उसका खून
किसी को देशद्रोह-राजद्रोह में फंसा देना
उसके लिए दो मिनट का मामूली काम है' (पृ. ४३-४४)

'उनकी अपनी भाषा थी' कविता में कवि ने अस्तित्ववादी विचारधारा का अंकन किया है। 'अंत की घोषणा' को यदि इस संग्रह की प्रतिनिधि कविता कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि इसमें वर्तमान समय के तथाकथित नेताओं उनकी राजनीति, संवेदनहीनता, नेतृत्व और उनके कारण सब कुछ खत्म होने की घोषणा करते हुए कवि उन पर प्रश्न उठाता नज़र आता है -

'गरीब आदमी की लाश पर कौन चलता है
अरबों-खरबों रुपए की घोषणा करना इतना आसान क्यों है
कहां जाता है इतना पैसा ?
दंगा करवाना दुनिया का मुश्किल काम क्यों नहीं है
जलते हुए घर के बगल में तुम नींद कैसे ले लेते हो' (पृ. ४७) देश का नेतृत्व कर रहे नेताओं पर आक्रोशित होते हुए कवि कहता है-

'लगे हाथ अब तुम अपनी संपत्ति
प्राप्त सुख सुविधाओं के अंत की
अपने अंत की घोषणा भी कर डालो
यही बड़ा अवसर है !
लेकिन मैं जानता हूं बस यही काम तुमसे नहीं होगा
क्योंकि सवाल नेतृत्व का है
और तुम्हारी समझ में देश की जनता चूतिया है
उसका काम है भेड़ की तरह चलना
और तुम्हें हर घड़ी जितवाना न कि नेतृत्व करना' (पृ. ४८) चर्चित कवयित्री किरण अग्रवाल के अनुसार : 'यहां देश की जनता चूतिया है यह कवि प्रत्यक्ष रूप से नहीं कहता। यहां बीच में तुम है और तुम की समझ या तुम का विचार जो कवि के भीतर रोष पैदा कर रहा है। शब्द प्रयोग के इस अंतर को समझना होगा जहां तक यह सवाल है कि कविता के भीतर ऐसे शब्दों का प्रयोग होना चाहिए या नहीं तो यह ज़िरह का विषय है।'२ कवि के अनुसार देश की बर्बादी के पीछे भी इन नेताओं की संवेदनहीनता ही है जो हमारे देश को दिन-प्रतिदिन बर्बादी की कगार पर ला रहे हैं। उनके असल चरित्र को उजागर करते हुए कवि कहता है -

'नदी किनारे मृत बच्चे की लाश पर
तुम्हारा करूण रुदन कोई समझे या नहीं
मैं इस नाटक को जरूर समझता हूं
और नदी भी
तुम्हारा हाथ जोड़ने का स्टाइल पसंद होता

यदि देश की बर्बादी के लक्षण उसमें छुपे न होते
और हर चीज तुम्हारी नजरों में
बिकाऊ ना होती' (पृ. ४९)

'तब लानत है मुझ पर 'शीर्षक कविता में कवि जहां एक ओर अतिथि देवो भवः को प्रतिपादित करता है वहीं समाज में हो रही हत्याएं और सिर्फ अपने तक सीमित रहने वाले लोगों पर और व्यवस्था पर दुखी होते हुए लानत भी भेजता है। कवि की संवेदना इन पंक्तियों के माध्यम से उजागर हुई है-

'जब-जब कोई पुकार रहा हो बार-बार मुझे
और छोड़ दूं उस घायल व्यक्ति को
वहीं सड़कों पर ही छटपटाते
कि जाना है जल्दी नदिया के पार मुझे
तब लानत है मुझ पर
जब न चल रही कलम को स्याही न दूं
बीच सड़क पर हत्या हुई
सबने देखा और मैंने भी-
और फिर भी-
गवाही न दूं
तब लानत है मुझ पर।'(पृ. ५४)

'चुप रहूंगा आज से मैं भी'कविता में कवि मौन का महत्व प्रतिपादित करते हुए एक गति से काम करने वाले व परोपकारी व्यक्तियों का चरित्रांकन करते हुए कहता है-

'ये चुप लोग
पेड़ बनकर देते रहते हैं फल-छाया लकड़ी
नदी बनकर पहुंचाते रहते हैं हर जगह पानी
सूरज बनकर बिखेरते रहते हैं रोशनी और रंग
चांद तारे बनकर बांटते रहते हैं शीतलता

कुछ लोग चुप रहते हैं
बोलते नहीं हैं महसूसते हैं ज्यादा
चुप रहूंगा आज से मैं भी !'(पृ. ४६) वहीं 'चुप रहकर जीना भी बहुत बड़ी त्रासदी'कविता में मौन की त्रासदी को अभिव्यक्त करते हुए कहता है-

'लो यह साधारण बदबू भी
सह गए मेरे देश के लोग !
समाज में उठ चुकी सैकड़ों बदबू से कैसे निपटेंगे ये भले मानस !
मात्र चुप रहकर जीना भी बहुत बड़ी त्रासदी है
किसी देश-समाज के लिए
ड्राइवर ने बस के पीछे लिखवाया -
देश के लोगों पहला काम तुम अब-
अपनी जुबान उगाने का करो!' (पृ. ९५)

'काश! एक जगह भी', 'मछलियां देखती हैं सपने', 'जब लड़कियां जन्मेंगी', 'स्त्रियों ने कथाएं कहीं', 'अंततः उससे भी कहीं अधिक' कविताओं में कवि ने स्त्री जीवन की व्यवस्था व्यथा कथा को अभिव्यक्ति दी है। स्त्री के प्रति संकुचित दृष्टि और उसकी रक्षा की चिंता करते हुए कवि कहता है -

'इधर
जितनी जगह से गुजरी लड़की
उतनी जगह ही देखी गई -
अवसर और शिकार के रूप में
काश!
एक जगह भी
उपज पाता विश्वास उसका
तो
न बढ़ पाता अंधेरा भय का
न बुझ पाती कहीं रोशनी।' (पृ.५५) कवि लड़कियों की तुलना मछलियों से करता हुआ कहता है कि किस तरह समय रूपी मछुआरा उसे अपनी जाल में फांसने को हरदम तत्पर रहता है और वह जाल में फंसकर घुट-घुट कर दम तोड़ देती है -

'मछलियां देखती हैं सपने
और उनके पीछे दौड़ने लगती हैं

लेकिन समय का मछुआरा रहता है
तैयार हरदम
फिर फंसकर जाल में
मछलियां तोड़ देती हैं दम
दम तोड़ देते हैं उनके सपने भी
घुट-घुटकर।' (पृ.६९) 'जब लड़कियां जन्मेंगी' कविता में कवि भ्रूण हत्या की ओर इशारा करते हुए चिंता व्यक्त करता है-

'तो लड़कियों का हंसना-भौंहें कसना खेलना-कूदना उछलना-निकलना

और भी बातें यकीनन ढेरों

होंगी तभी न

जब लड़कियां जन्मेंगी!' (पृ. ८१) कवि स्त्री की तुलना धरती से करता है और उसकी वेदना को अभिव्यक्ति देते हुए कहता है -

'धैर्य है धरती में बहुत

अंततः उससे भी कहीं अधिक

संभाले छुपाए रखती हैं

औरतें अपनी वेदना!' (पृ.१२६) कवि ने एक ओर जहां स्त्री जीवन की विवशताओं उनकी व्यथाओं-वेदनाओं को उजागर किया है वहीं 'बिन लड़कियों का घर है', 'है उनमें भी पृथ्वी', 'बधाई खूब-खूब', 'लग रहा है तुम्हें कैसा' कविताओं में लड़कियों की उन्नति पर बधाई देते हुए उनकी उड़ान को अभिव्यक्ति भी दी है। कवि घर-परिवार में लड़कियों के महत्व को जानता है। वह कहता है -

'कभी ध्यान देना

बिन लड़कियों का घर भी

होता है खंडहर ही।' (पृ.६६) लड़कियों की उन्नति पर हर्ष जताते हुए उन्हें बधाई देता है-

'हवाओं से संवाद करती लड़कियां

परचम लहराने के लिए

लंबे-लंबे डग भरती लड़कियां

लड़कियां बेखौफ बहुत-बहुत खुश -खुश

ओ कुछ माताओं-पिताओं

बधाई खूब-खूब ! (पृ.७८) 'लग रहा है तुम्हें कैसा' कविता में कवि बेटियों और उनकी उड़ानों की तुलना चिड़ियों से करता हुआ एक संदेश देता हुआ नजर आता है कि बेटियों और चिड़ियों को पिंजरे में बंद न कर, उन्हें खुला आसमान दें-

'बेटी मुरझाई हुई थी

पिता जी दौड़ पड़े

खोल दिया तुरंत पिंजरा

फिर

इधर चिड़िया उड़ी आसमान में

और उधर बेटी।'(पृ.११४) स्त्री में जो साहस होता है वह अतुलनीय होता है ; उसकी तुलना अगर की जाय तो सिर्फ धरती से ही की जा सकती है क्योंकि- 'है उनमें भी पृथ्वी और पृथ्वी की तरह जीवन उगाने का साहस' (पृ.७५)

'अमीर घरों का प्रसाद', 'गरीब घरों का प्रसाद', 'कल सुबह ही पता चलेगा उन्हें', 'जब बड़ा बनूंगा' कविताओं में कवि अमीर एवं गरीब वर्ग की तुलना करते हुए अमीरों की गरीबों के प्रति संवेदनहीनता को उजागर किया है-

'ले जाते हैं ये भी प्रसाद

अमीर घरों के लिए

मिलते हैं जवाब

ऐसी चीजें नहीं खाते हैं हम। (पृ.६०) अमीरों द्वारा गरीबों की भावनाओं की अवमानना की ओर संकेत करते हुए कवि कहता है -

'राह में देख -

कूड़े के ढेर में देखकर कुछ

हो गया है कुछ-कुछ परेशान वह

शायद पहचान गया है

कूड़े के ढेर में फेंका गया प्रसाद अपना।' (पृ.६२) 'जब बड़ा बनूंगा' कविता में कवि शोषक एवं शोषित के बीच की खाई को उजागर करते हुए, पूंजीपतियों द्वारा किए जाने वाले शोषण का एक वृत्त सा खींचता नजर आता है-

'लार टपकाते हुए खा लिया

बड़ी मछली ने छोटी मछली को

बड़े आदमी ने छोटे आदमी को

बड़ी हैसियत ने छोटी हैसियत को

और बड़े पेड़ों ने भी अंततः

छोटे पेड़ों को (पृ.११७) 'उसके सीने में आग थी' कविता में कवि जरूरत पड़ने पर क्रांति की अलख जगाने की बात भी करता है और 'क्यों कहा होगा ऐसा' कविता में मुआवजे से संबंधित फाइलों की पोल खोलता नजर आता है। 'नहीं सुनाई पड़ते शब्द अब' कविता में कवि परिवार के सदस्यों की संवेदनहीनता का यथार्थ चित्र खींचता है तो 'मैं बता नहीं पाया उन्हें' कविता में विकास की भेंट चढ़े गांव का दर्द-

'बांध को देखकर सब खुश थे

बहुत खुश थे खींच रहे थे फोटो
कह रहे थे- वाह, क्या सीन है
मैं बता नहीं पाया
बहुत कुछ बताने के बावजूद भी
कि कभी यहां घर थे
खेत थे खलिहान थे
पेड़-पौधे थे जिंदगी बहती थी
कभी यहां दूर-दूर तक इंसान थे' (पृ.६७) 'दूसरे पोस्टर पर लिखा हुआ था' कविता समसामयिक ज्वलंत संदर्भों की अभिव्यक्ति है। अपने चारों ओर के परिवेश को देखकर, कवि के अंदर एक गुस्सा और छटपटाहट सी है। उसकी चिंता है कि-

'गिद्ध चील भेड़ियों बेईमानों के कब्जे में संसद है !' (पृ.७६) 'दुआ सलाम नमस्कार' कविता को कवि ने सामाजिक, नैतिक एवं प्राकृतिक मूल्यों के साथ जोड़ते हुए उन मूल्यों के प्रतिपादन की बात की है जो आज खत्मप्राय से हो गए हैं। 'बस थोड़ी सी जमीन'कविता में कवि शिक्षा नीति एवं भारी बस्ते के बोझ तले दबती नई पौध की विवशता को उजागर करते हुए उसकी चाहत को आवाज देता है-

'अ से अनार
आ से आम, इ से इमली, ई से ईख
ए बी सी डी और बस्ता भारी, न करे घर तक पीछा
कॉपी में, दीवारों पर कहीं भी चित्र बनाएं, अपनी इच्छा
कोयल बिल्ली चिड़ियों की आवाज निकालना
कॉमिक्स पढ़ना, मनपसंद की अपनी दुनिया भी गढ़ना
उग रही नई पौध बस यही चाहती है' (पृ.८४-८५) 'वे अर्थ बन गए' कविता में कवि कुछ प्राकृतिक उपादानों के सहारे महापुरुषों के महान चरित्रों की ओर संकेत करता है। 'कैसी सोच थी मेरी' कविता को इस संग्रह की प्रतिनिधि कविता कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी, इसमें हाशिए पर पड़े लोग हैं जैसे आदिवासी, दलित, स्त्री, अमीरी, गरीबी, जाति- पात इत्यादि सभी जरूरी बातों को उकेरते हुए सभ्य कहे जाने वाले तथाकथित समाज के असल चरित्र को उजागर करता है -

'कभी सम्मान न दिया आदिवासियों को
यह कहते हुए कि काले तुम
जंगली तुम, असभ्य तुम

कभी सम्मान न दिया दलित-पिछड़ों को
यह कहते हुए कि इनकी परछाइयां पड़ गईं तो
हो जाएंगे हम अपवित्र, अमानुष !
जबकि खेत-खलिहान उन्हीं से रहे आबाद
और जीवंत
कभी सम्मान न दिया स्त्रियों को
यह कहते हुए कि इनके मुंह में होते हैं-
हम पुरुषों की अपेक्षा कम दांत
और दिमाग भी' (पृ.८९)

कवि श्रमजीवियों को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखता है। 'जैसे एक पेड़ रचता है अपनी दुनिया'कविता में श्रम के महत्व का प्रतिपादन करते हुए कहता है-

'रचना चाहता हूं
जैसे एक पेड़ रचता है अपनी दुनिया
चीटियां रचती हैं श्रम
चिड़िया रचती है अपना घोंसला
जैसे निराश व्यक्ति रचता है अपना हौसला
रचना चाहता हूं इसी तरह सबके लिए स्वतंत्रता
समानता बंधुत्व' (पृ.९३) 'धूल, बारिश और कादो' कविता में अकर्मण्य लोगों की ओर संकेत करते हुए कहता है कि समाज में कुछ लोग ऐसे भी हैं जो अपनी अकर्मण्यता का ठीकरा अन्य लोगों पर फोड़ते हैं :-

'कादो में चलना उसे बिल्कुल भी अच्छा न लगा
उसने सामाजिक व्यवस्था और ईश्वर को
कोसना शुरू कर दिया अब
इस तरह
तमाम अवसर खोते हुए
इस भ्रम में रहा वह कि
धूल, बारिश और कादो उसे रोके हुए हैं !' (पृ.९६)

'जिनकी कोई आवाज नहीं', 'अंतिम समय तक बचाकर रखता हूं', 'नदियों में पानी कल भी होगा', 'बचाकर रखना कुछ उम्मीदें' कविताओं में कवि उम्मीद को बचाए रखने की बात करता है। कवि का कहना है कि कम लोग ही होते हैं जिनसे जीवन में हम कुछ सीख पाते हैं जो घर

और समाज के स्तंभ होते हैं -

'मैं इन्हीं जुझारू लोगों सा
अंतिम समय तक बचाकर रखता हूं उम्मीद
तभी बचा रहता हूं मैं
तभी बचे रहते हैं मेरे सपने
तभी बची रहती मेरे अंदर की चिंगारियां
तभी एक चूल्हा जलता है
फिर देखते ही देखते गांव के सारे चूल्हे जलने लगते हैं' (पृ.९१) इसी उम्मीद के सहारे कवि को पूर्णतया विश्वास है कि-

'जल जंगल जमीन जीवन बचे रहेंगे और पेड़ों में फल-फूल भी

लड़कियां अपने गीतों में
दर्ज कर रही होंगी अपने समय का संघर्ष
मुझे विश्वास है।' (पृ.९९-१००) 'मौत'कविता में कवि अंधेरी शक्तियों के खिलाफ उठने की कोशिश करने को कहता है, क्योंकि इस संक्रमण काल में देश और न्याय की बात करने वाले व्यक्ति को मार ही दिया जाता है; लेकिन मृत्यु शाश्वत सत्य है अतः उन अंधेरी शक्तियों से डरने के बजाय हमें उसके खिलाफ आवाज उठानी चाहिए। कवि को लगता भी है कि-

'वह उठ खड़ा हुआ है -
अंधेरी शक्तियों के खिलाफ
उठ खड़ा हुआ है -
देश के लिए
न्याय के लिए
इस बुरे वक्त में -
वह !' (पृ.१०२) क्योंकि हर कोई अपनी हैसियत और बल के आधार पर कुछ न कुछ खोज रहा है लेकिन-

'नेता-मंत्री खोज रहे हैं दंगे जाति-धर्म,
तमाशा और युद्ध।' (पृ.१२८) हमारे चारों ओर फैले हुए निराशा के बादलों का छंटना बहुत जरूरी है। इसीलिए कवि इस संक्रमण काल में भी विश्वास और उम्मीद को बचाए रखने की बात करता है-

'मेरे दोस्त !
विश्वास, उम्मीद और बात खोने से
खो देता है आदमी भी
खुद को।' (पृ.१२७) इस उम्मीद को बचाने हेतु कवि पुस्तकों के महत्व का प्रतिपादन करता हुआ कहता है कि-

'चौराहे पर खड़ा आदमी
बरसों से,
खड़ा ही है चौराहे पर
टस से मस भी नहीं हुआ !
जबकि
पुस्तकालय में खड़ा आदमी
खड़े-खड़े ही पहुंच गया
देश-दुनिया के कोने-कोने में
जैसे हवा-सूरज, धूप-पानी
और बादल' (पृ.१२९) 'चौराहा और पुस्तकालय' कविता इस संग्रह की सबसे महत्वपूर्ण कविता है। पुस्तकों का हमारे जीवन में बहुत अधिक महत्व है जो हमें निराशा के गर्त से निकालकर एक नई जीवन दृष्टि देते हुए उजाले का मार्ग प्रशस्त करते हैं। अतः कवि संदेश देना चाहता है कि देश में चारों ओर जो आगजनी, दंगे-फसाद, भ्रष्टाचार और भी अन्य विसंगतियां अपनी चादर दिन-प्रतिदिन फैलाती जा रही हैं और हमारे देश को किसी न किसी तरह नुकसान पहुंचा रही हैं ; उसके लिए पुस्तकालयों को जगह-जगह पर खुलना जरूरी है ताकि हमारा आगामी भविष्य, हमारी युवा पीढ़ी स्वंय को संकीर्ण मानसिकता से उबारकर अपने जीवन पथ को प्रशस्त कर सके।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि खेमकरण 'सोमन' परिवेश के प्रति प्रतिबद्धता लिए अपने जीवन यथार्थ की सहज अभिव्यक्ति करते हैं। उनका मन सामाजिक विसंगतियों से विचलित तो है लेकिन वे उनसे जूझते हुए उजाले की रोशनी खोजना चाहते हैं। कवि-अनुवादक, प्रांजल धर के शब्दों में : 'खेमकरण सोमन की कविताएं आत्मविस्थापित समाज और संबंध सूत्रों को तृप्त करने की कवि की पुरजोर कोशिश को रूपायित करती हैं... छीजते चले जा रहे जनसरोकार, हाशिए पर चले जाने को अभिशप्त बेहद महत्वपूर्ण सर्जनात्मक तत्व और किनारे का भूगोल कवि की अंतः प्रेरणाएं हैं... वर्तमान समय की विडंबना यही है कि लोगों को विकल्पों में स्वतंत्रता प्राप्त है, विकल्पों से नहीं। यह विडंबना सोमन की काव्य-दृष्टि का सार और तत्व है। बिखरती चीजों को सिरजने-सहेजने

का जतन करने वाले खेमकरण 'सोमन'की कविताएं यथार्थ की विरूपताओं और विसंगतियों का मार्मिक चित्रण करती हैं।'३ खेमकरण का यह पहला कविता संग्रह है जिसमें कई जगह पर व्याकरणिक अशुद्धियां भी हैं, कहीं शब्दों का दोहराव है और अधिकांश कविताएं अनायास विस्तार लिए हुए हैं, जिसकी आवश्यकता नहीं थी। कविताओं की प्रतिपाद्यता एवं रसास्वादन के अनुरूप उन्हें उपखंडों के अंदर रखा जाता तो उचित था... उम्मीद है कि आगामी संग्रहों में वे इन बातों का ध्यान रखते हुए अपनी लेखनी को और भी सशक्त करेंगे। मुझे उनमें असीम संभावनाएं दिखती हैं , वे जहां सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगतियों को उजागर करते हैं वहीं उम्मीद और विश्वास को जिंदा रखने की बात भी करते हैं जो उनकी सबसे बड़ी विशेषता है। उनकी कविताओं की एक विशेषता यह भी है कि उनकी अधिकांश कविताएं अंतिम पंक्तियों में ही खुलकर बड़ी तत्परता एवं सजकता से महत्वपूर्ण बात कह जाती हैं।

संदर्भ -

१. खेमकरण 'सोमन', नई दिल्ली दो सौ बत्तीस किलोमीटर; समय साक्ष्य देहरादून, संस्करण प्रथम, २०२३, आवरण पृष्ठ से उद्धृत

२. पाखी; अंक, मई-जून २०२३, पृ.८५

३. खेमकरण 'सोमन', नई दिल्ली दो सौ बत्तीस किलोमीटर; समय साक्ष्य देहरादून, संस्करण प्रथम, २०२३, आवरण पृष्ठ से उद्धृत

पुस्तक - नई दिल्ली दो सौ बत्तीस किलोमीटर
लेखक - खेमकरण 'सोमन'
प्रकाशन - समय साक्ष्य देहरादून
संस्करण - प्रथम, २०२२
मूल्य - रु.१६५/-
पृष्ठ - १२९

डॉ. ममता पंत
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग,
सोबन सिंह जीना विश्वविद्यालय अल्मोड़ा
एस.एस.जे.परिसर, अल्मोड़ा
ईमेलः mamtapanth.panth@gmail.com
मोः ९८९७५९३२५३

मोहन राकेश की प्रतिनिधि कहानियों में संवेदना के विविध स्वर

डॉ.गरिमा तिवारी

सहायक आचार्य
हिंदी विभाग
महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय
मोतिहारी, बिहार
ई-मेल : garimabhu6@gmail.com

मोहन राकेश अप्रतिम प्रतिभा संपन्न एक कुशल साहित्यकार हैं । नाट्य-लेखन के क्षेत्र में अपनी प्रतिभा की श्रेष्ठता सिद्ध करने के बाद, कहानी के क्षेत्र में भी उन्होंने अपनी सर्जनात्मकता के उत्स से, साहित्य प्रेमियों को खासा प्रभावित किया है । राकेश जी नयी कहानी आन्दोलन से जुड़े रहें । आपने मध्यवर्ग को अपनी कहानियों का विषय बनाया । मध्यवर्गीय जीवन के विविध पक्षों की यथार्थपरक, कलात्मक अभिव्यक्ति आपने अपनी कहानियों में की । आपकी कहानियाँ कथ्य की दृष्टि से अत्यंत साधारण हैं, किन्तु प्रभावात्मकता की दृष्टि से अत्यंत व्यापक । सामान्य सी लगने वाली घटना को आपने अत्यंत अर्थवत्ता प्रदान की है । आधुनिक चेतना संपन्न, एक कुशल कहानीकार होने के नाते आपने जीवनगत विविध परिस्थितियों में आधुनिकता के लक्षणों को पहचाना है, उससे उत्पन्न समस्याओं का चित्रण किया है और आधुनिक मनुष्य को अपनी संवेदना प्रदान की है । सीधी सरल सपाट भाषा में राकेश जी ने आधुनिक युवा पीढ़ी के संघर्ष को भी वाणी दी है । आपने व्यक्ति-विशेष नहीं अपितु पूरे समाज को अपनी कहानियों का विषय बनाया है । इसलिए मोहन राकेश समष्टि बोध के कहानीकार माने जाते हैं । अपनी नवीन विचार पद्धति के अनुरूप भाषा, मुहावरे एवं शिल्प संकेतों का प्रयोग करने के कारण मोहन राकेश नई कहानी आंदोलन के सबसे महत्वपूर्ण कहानीकार हैं । राकेश जी ने कुल ६६ कहानियाँ लिखीं, जिनमें से कुछ प्रतिनिधि कहानियों की हम संवेदनात्मक पड़ताल करेंगे ।

मोहन राकेश की प्रतिनिधि कहानियों का संग्रह राजकमल प्रकाशन द्वारा प्रकाशित है, जिनमें उनकी कुल आठ कहानियाँ मिस पाल, आर्द्रा, मलबे का मालिक, उसकी रोटी, पाँचवें माले का फ्लैट, एक और जिंदगी, जानवर और जानवर तथा वारिस संकलित हैं । इस संग्रह की सभी कहानियों में विषयगत एवं शिल्पगत पर्याप्त विभिन्नता है ।

इस संग्रह की पहली कहानी 'मिस पाल' है, जो महानगरीय परिवेश से क्षुब्ध और अपने जीवन के व्यर्थता बोध से खिन्न, अकेलेपन का संत्रास भोगती एक महिला मिस पाल की कहानी है । शारीरिक दृष्टि से कुरूप मिस पाल को न अपने माँ-बाप से स्नेह मिलता है, न दफ्तर में सहकर्मियों से सहयोग । उससे सहानुभूति रखने वाला एकमात्र उसका सहकर्मी रणजीत और उसकी बुआ का परिवार है । दफ्तरी परिवेश से खिन्न आकर वह रणजीत से कहती है- 'ये लोग इतने ओछे और बेईमान हैं, इतनी छोटी और कमीनी बातें करते हैं कि मेरा इनके बीच काम

करते हर वक्त दम घुटता रहता है। न जाने क्यों ये लोग इतनी छोटी-छोटी बातों पर एक दूसरे से लड़ते हैं और अपने छोटे-छोटे स्वार्थों के लिए एक दूसरे को कुचलने की कोशिश करते रहते हैं।'१ 'वह ऐसी जगह रहना चाहती है, जहाँ यहाँ की सी गंदगी न हो और लोग इस तरह की छोटी हरकतें न करते हो। ठीक से जीने के लिए इंसान को कम-से-कम इतना तो महसूस होना चाहिए कि उसके आसपास का वातावरण उजला और साफ है, और वह एक मेंढक की तरह गँदले पानी में नहीं जी रहा।'२ लेकिन मिस पाल की ऐसी जगह की परिकल्पना गलत साबित होती है। वह दिल्ली से नौकरी छोड़कर एक छोटे से पहाड़ी शहर रायसन चली जाती है लेकिन उसकी जिंदगी वहाँ और वीरान हो जाती है। वहाँ भी उसे ओछे लोगों की ओछी मानसिकता का सामना करना पड़ता है, जिससे वह अन्दर से टूट जाती है। इस प्रकार मिस पाल एक आधुनिक नारी की कहानी है, जो अकेली है, अपने जीवन की व्यर्थता बोध से व्यथित है, और अन्दर से टूटी हुई है।

'आर्द्रा' जो इस कहानी संग्रह की दूसरी कहानी है, उसमें आधुनिकता के परिणाम स्वरुप टूटते-बिखरते भाई-भाई के संबंधों के मकड़जाल में फँस कर छटपटाती एक माँ की वेदना का चित्रण है। लाली और बिन्नी दो भाई हैं, जिनके आपसी संबंध टूट कर बिखर गए हैं। बचन का बड़ा बेटा लाली पेशे से वकील है, शादीशुदा है, संपन्न है, रहने को बड़ा घर है, नौकर-चाकर हैं, खुशहाल दाम्पत्य जीवन है। वहीं छोटा बेटा बिन्नी, असफल है, अपनी माँ के साथ छोटे से घर में, जैसे-तैसे जीवन बसर कर रहा है। लेकिन माँ की ममता सफलता-असफलता नहीं देखती। उसका स्नेह तो दोनों बच्चों में बराबर बंटा है। लाली के घर में सुविधा है, सम्पन्नता है, लेकिन वहाँ संवादहीनता है, जो उसे उसके ही बेटे के घर में मेहमान होने का आभास देती है। लेकिन बिन्नी की अभावग्रस्तता उसके मन में छटपटाहट पैदा करती है। संबंधों के टूटते का दंश झेलती, एक माँ की मनःस्थिति का चित्रण इस कहानी में राकेश जी ने बखूबी किया है।

मोहन राकेश की बहुचर्चित कहानी 'मलबे का मालिक' है, जो विभाजन की त्रासदी और साम्प्रदायिकता की समस्या को केंद्र में रखकर लिखी गई है। इस कहानी में, आग में झुलसते सामाजिक सम्बन्ध और तार-तार होती मनुष्यता का मार्मिक चित्रण है। विभाजन सिर्फ भौगौलिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रहा, बल्कि उसने लोगों के मन का भी विभाजन कर दिया। मनुष्य-मनुष्य के बीच जाति, धर्म, लिंग के आधार पर विभेद की ऐसी गहरी खाई बनाई, जो आज तक नहीं भर पाई। विभाजन के पश्चात फैले धार्मिक उन्माद, और नफरत की आग में अब्दुल गनी जैसे लोगों का सिर्फ घर ही नहीं जला, बल्कि उसका पूरा परिवार ही विभाजन की बलि चढ़ गया। अत्यंत बेरहमी से, अमानवीय तरीके से, उसके पूरे परिवार को मौत के घाट उतार दिया गया। साम्प्रदायिकता की समस्या के 'साथ ही व्यापक अर्थों में 'मलवे का मालिक' नामक यह कहानी उस वैयक्तिक और सामाजिक त्रासदी को अपना विषय बनाती है, जो समाज के होने के भरोसे के टूटने से जन्म लेती है। समाज लोगों की कोई ऐसी भीड़ नहीं, बल्कि वह तो संबंधों का ऐसा संजाल होता है जो आपसी भरोसे पर टिका करता है। इसी भरोसे से बँधकर आस-पास रहने वाले लोग एक सांझे पड़ोस का निर्माण करते हैं। मलबे का मालिक कहानी इसी सामाजिक भरोसे के बिखर जाने को उद्घाटित करती है।'३ अब्दुल गनी नामक मुसलमान विभाजन के सात साल बाद, पर्यटकों के एक समूह के साथ हॉकी का मैच देखने के बहाने, जब लाहौर से अमृतसर आता है तो उसे वह जगह काफी बदली-बदली नजर आती है। चारो तरफ तबाही का मंजर नजर आता है। बाँसाँ बाजार में पहुँचने पर उसे जब अपने घर की जगह घर का मलबा मिलता है, तो उसके दुःख की सीमा नहीं रहती। वह कहता है-'यह मलबा ? यह बाकी रह गया है, यह ?'४ अब्दुल गनी अपने बेटे चिराग, बहू जुबैदा और उनकी दोनों बच्चियों किश्वर और सुल्ताना की मौत को तो पहले ही स्वीकार चुका होता है, लेकिन अपने नए घर का मलबे में तब्दील होना स्वीकार नहीं कर पाता। उसे अपने आस-पड़ोस के लोगों और रक्खे पहलवान पर बहुत भरोसा था कि उनके होते हुए उसके परिवार को कुछ नहीं होगा। लेकिन वह इस सच्चाई से अनजान था कि उसके बेटे को मौत के घाट उतारने वाला, उसकी बहु तथा दोनों पोतियों के साथ कुकर्म करने वाला रक्खे पहलवान ही था। वह उसी से कहता है -'देख रक्खे पहलवान, क्या से क्या हो गया है। भरा-पूरा घर छोड़कर गया था और आज यहाँ यह मिट्टी देखने आया हूँ।'५ सबकुछ खो देने

के बाद भी गनी का, रक्खे पर यह विश्वास, मनुष्यता के बचे रहने का प्रमाण है । लेकनि उसे इस बात का जरा भी एहसास नहीं कि वह जिसको अपने परिवार का रक्षक समझ रहा है, वही उनका भक्षक है । सामाजिक भरोसे के इस टूटन को मार्मिक प्रसंगों के जरिए उद्घाटित करने में राकेश जी सफल रहे हैं ।

इस संग्रह की अगली कहानी 'उसकी रोटी' है, जो संबंधों में व्याप्त व्यर्थता बोध और औपचारिकता की कहानी है । यह कहानी प्रेमचंद की पति-परमेश्वर जैसी कहानियों की परंपरा की कड़ी जान पड़ती है । यह कहानी बस ड्राइवर सुच्चासिंह और उसकी पत्नी बालो की है, जो सामाजिक स्तर पर एक दूसरे से बंधे हैं । बालो रोज अपने पति सुच्चासिंह को रास्ते में रोटी देने जाती है, लेकिन उसे रोटी देने की प्रतीक्षा में खड़ी उसकी पत्नी टूट गई है । सुच्चासिंह गुस्सैल स्वभाव का व्यक्ति है, रोटी पहुँचाने में देर होने पर बालो को अपने पति के गुस्से का सामना करना पड़ता है । पति को खुश रखने के लिए वह अनेक कष्ट सहती है लेकिन उसे पाकर धन्य भी है । वह अपने पुराने रागात्मक क्षणों को याद कर जीवित है । अपना सुख-दुःख अपने पति से साँझा करती कहीं भी नजर नहीं आती, वह अपने पति के गुस्सैल स्वभाव से इतनी आक्रांत है कि एक अराजक तत्व जंगी द्वारा अपनी बहन को छेड़ने की बात भी नहीं बता पाती । बालो का चित्रण राकेश जी ने परम्परागत भारतीय, पतिव्रता नारी के रूप में किया है, जिसके लिए उसका पति ही सब-कुछ है, क्योंकि उसके बिना वह समाज में अपना अस्तित्व नहीं देखती, उसमें अकेले अपने दम पर जीवन-यापन करने की क्षमता नहीं है । पति के प्रति उसके मन में त्याग है, समर्पण है, लेकिन खुल कर अपनी बात कहने का साहस नहीं । इस कहानी के कथ्य में न कोई नवीनता है, न ही स्त्री-विषयक प्रगतिशील दृष्टि ।

'पाँचवें माले का फ्लैट' कहानी महानगरीय जीवन जीने वाले एक मध्यवर्गीय युवक अविनाश की कहानी है, जो एक बिखरी हुई अभावग्रस्त जिंदगी जी रहा है । अविनाश की अभावग्रस्तता ने उसे समाज से काट कर एकाकी बना दिया है । उसमें उस अभावग्रस्त जीवन से निकलने की छटपटाहट भी है और परिवेश से कट जाने का दुःख भी । यह अलगावबोध की कहानी है, और अपनी यथार्थता में आधुनिक दृष्टि लिए हुए है । अविनाश, काफी सालों से महानगर मुंबई के एक तंग फ्लैट में पाँचवी मंजिल पर रहता है । उसकी पुरानी दोस्त प्रमिला और सरला उसके पाँचवें माले के फ्लैट का मजाक बनाती हैं । वह अपने पुराने दोस्तों के बीच भी अपने आप को अजनबी पाता है । आर्थिक अभाव अविनाश के अलगावबोध को और गहरा कर देता है और उसे अपने जीवन की व्यर्थता बोध का एहसास होने लगता है ।

अजनबीपन और एकाकीपन आधुनिकता का एक महत्वपूर्ण लक्षण है । मोहन राकेश की 'एक और जिंदगी' कहानी अपनी अर्थवत्ता में आधुनिकता के इन्हीं लक्षणों को समेटे हुए है । कहानी पति-पत्नी के टूटते-बिखरते संबंधों के परिणाम स्वरुप उत्पन्न एकाकीपन और अजनबीपन की है । आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर प्रकाश और बीना जब अपने दांपत्य जीवन की शुरुआत करते हैं तो शुरुआती दौर में ही आपसी संतुलन स्थापित करने में नाकाम रहते हैं । उन्हें एक संतान की प्राप्ति तो होती है, लेकिन बहुत जल्द ही उनका संबंध-विच्छेद हो जाता है । जीवन के खालीपन को भरने के लिए प्रकाश निर्मला से दूसरी शादी करता है । 'उसे लगता है कि वह किसी ऐसी ही लड़की के साथ जीवन बिता सकता है जो हर लिहाज से बीना के उलट हो । बीना में बहुत अहंकार था, वह उसके बराबर पढ़ी-लिखी थी, उससे ज्यादा कमाती थी । वह एक ऐसी लड़की चाहता था जो हर लिहाज से उस पर निर्भर करे और जिसकी कमजोरियाँ एक पुरुष के आश्रय की अपेक्षा रखती हों ।'६ लेकिन निर्मला मानसिक रूप से अस्वस्थ थी और उससे शादी के बाद प्रकाश का जीवन और अंधकारमय हो जाता है । डूबते हुए प्रकाश को अपने बेटे के स्नेह का सहारा मिलता है लेकिन वह भी कुछ दिनों के लिए । निर्मला और अपने बेटे से दूर हो प्रकाश स्वयं को शराब और जुए के नशे में डूबा लेता है । एक के बाद एक गलत निर्णय प्रकाश के जीवन को और अंधकारमय बना देते हैं । यह कहानी एकाकीपन और अजनबी का दंश झेलते प्रकाश और बीना के जीवन का यथार्थ चित्रण करने में सफल रहती है ।

मोहन राकेश की कहानी 'जानवर और जानवर' धर्म के काले पक्ष का उद्घाटन करती है । फादर फिशर वैसे तो धर्म का ठेकेदार है, लेकिन उसका आचरण और

चरित्र दोनों धर्म के प्रतिकूल है । वह वासना में डूबा हुआ है और अत्यंत हिंसक प्रवृत्ति का है । अनीता और कलावती जैसी मजबूर स्त्रियों को वह अपनी हवस का शिकार बनाता है । जिनसे उसका स्वार्थ नहीं सधता, उन्हें निकाल देता है । उसके काले चरित्र का उद्घाटन करता हुआ जॉन कहता है - 'सवेरे परमात्मा से संसार भर का चरित्र सुधारने के लिए प्रार्थना करेगा और रात को हरामजादा.... ।'७ फादर फिशर मनुष्यों में तो विभेद मानता ही है, लेकिन उसके लिए दो अलग-अलग परिवेश में पले-बढ़े जानवरों में भी अंतर है । वह जॉन के देसी नस्ल के कुत्ते बेबी को अपनी बिलायती कुतिया के साथ देख गोली मार देता है । राकेश जी ने व्यंग्य के माध्यम से कहानी को गति दी है । 'जानवर' शब्द का प्रतीकात्मक चित्रण किया गया है । गिरजाघर की घंटियाँ बेमानी प्रतीत होती हैं और मिशन की खोखली, नकली, सतही जिंदगी का चित्रण करती है । यही इस कहानी की आधुनिकता है ।

'वारिस' कहानी इस संग्रह की अंतिम कहानी है । यह कहानी आर्थिक अभाव झेलते, एक स्वाभिमानी मास्टर साहब की कहानी है जो ट्यूशन करके अपना पेट पालते हैं और अत्यंत कर्तव्यनिष्ठा से अपना काम करते हैं । मास्टर साहब के आने का समय तो निश्चित होता है, लेकिन जाने का नहीं । वे ट्यूशन समाप्त होने की आशंका से व्यथित होते हैं, और पहाड़ों पर जाकर अपना जीवन समाप्त करने की बात सोचते हैं । विदा होते वक्त बच्चों को अपना आशीर्वाद देते हैं, और अपनी एकमात्र विरासत भूरी फाउन्टेन पेन भी । कहानी अर्थाभाव झेलते, अकेलेपन से जूझते मास्टर साहब की व्यथा-कथा है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मोहन राकेश ने अपनी लगभग सभी कहानियों में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनीतिक संदर्भ में आधुनिकता का विवेचन एवं विश्लेषण प्रस्तुत किया है। सामाजिक संदर्भ में उन्होंने जहाँ महानगरीय परिवेश की त्रासदी, व्यर्थता बोध, सम्बन्धहीनता, अजनबीपन, अलगाव-बोध, आत्मनिर्वासन एवं उदासीन नारी का चित्रण किया है, तो आर्थिक क्षेत्र में आर्थिक अभाव का दंश, घुटन, एवं छटपटाहट के बीच आधुनिकता को परखा है । राजनीतिक क्षेत्र में व्याप्त अराजकता, नौकरशाही, अमानवीयता में आधुनिकता देखी है । मोहन गुप्त ने कहानीकार मोहन राकेश के विषय में उचित ही कहा है -'राकेश मूलतः मध्यवर्ग के चितेरे हैं, और इस वर्ग के इतने विविध चरित्रों की सृष्टि उन्होंने की है कि देखकर आश्चर्यचकित रह जाना पड़ता है । 'आर्द्रा' की माँ, मिस पाल, 'एक और जिंदगी' के तलाकशुदा पति-पत्नी, 'जानवर और जानवर' का पादरी, 'पाँचवें माले का फ्लैट' के अविनाश और प्रमिला-हर पात्र की अपनी एक अलग दुनिया है, और उनके चित्रण में रचनाकार की आत्मीयता ने एक ऐसी बात पैदा कर दी है, जिसे 'अनुभव की निजता' कहकर ही परिभाषित किया जा सकता है ।'८

सन्दर्भ-सूची

१.प्रतिनिधि कहानियाँ : मोहन राकेश, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., १-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पन्द्रहवाँ संस्करण : २०१६, पृष्ठ संख्याः ११

२.वही, पृष्ठ संख्याः १४

३.https://hindisarang.com/malbe-ka-malik-kahani-ki-samiksha-aur-saransh/

४.प्रतिनिधि कहानियाँ : मोहन राकेश, राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., १-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली, पन्द्रहवाँ संस्करण : २०१६, पृष्ठ संख्याः ५४

५.वही, पृष्ठ संख्याः ५८

६.वही, पृष्ठ संख्याः ९४

७.वही, पृष्ठ संख्याः ११९

८.वही, पृष्ठ संख्याः १

सहायक आचार्य
हिंदी विभाग
महात्मा गाँधी केन्द्रीय विश्वविद्यालय
मोतिहारी, बिहार
ई-मेल : garimabhu6@gmail.com

भोजपुरी माटी के कवि चन्द्रदेव यादव

डा.शिव कुमार यादव

असिस्टेंट प्रोफ़ेसर,
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज- २११००२
मो.९४५४६५३४९०

चन्द्रदेव यादव भोजपुरी और हिन्दी भाषा के बेहद महत्वपूर्ण कवि हैं। उनके कुल चार कविता संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। दो कविता संग्रह भोजपुरी भाषा में 'देस राग' तथा 'माटी क बरतन' शीर्षक से प्रकाशित हुए हैं और दो कविता संग्रह हिंदी भाषा में 'गाँवनामा' तथा 'पिता का शोकगीत' शीर्षक से प्रकाशित हैं। अभी हाल ही में प्रकाशित भोजपुरी कविता संग्रह 'माटी क बरतन' को पढ़ने के बाद पता चलता है कि उनकी रुचि भोजपुरी संस्कृति को भोजपुरी भाषा में अभिव्यक्त करने में अधिक है। उनकी कविताओं से गांव और साधारण मनुष्य की गंध बराबर आती रहती है। मिट्टी की चिंता इनकी कविताओं का केंद्रीय बिंदु है। इसमें कोई संदेह नहीं की भूमंडलीकरण और बाजारवाद की उपभोक्तावादी संस्कृति ने न केवल हमें अपनी मिट्टी, मानवता और संस्कृति से दूर कर दिया है बल्कि नैतिक मूल्यों को क्षत-विक्षत कर धूल- धूसरित भी कर दिया है। मनुष्य धीरे-धीरे मशीन में तब्दील होता चला जा रहा है, इसलिए उसे पंचतत्त्वों के विनाश की कोई चिन्ता नहीं है। शायद यही कारण है कि 'माटी क बर्तन' शीर्षक कविता में कवि कहता है–'माटी से शुरू कइ के आपन जतरा/ कहां से कहां आ गइल ह आदमी,/ माटी के करीब रहे वाला आदमी/ धीरे-धीरे होत जात ह माटी से दूर/ बिकास के हर पड़ाव में/ छूटत गइल ह अनमोल/ पता नहीं माटी से दूर/ होके मगरूर/ कब ले रह पाई आदमी!' गौरतलब है कि यह कविता बदलती हुई भारतीय सभ्यता और संस्कृति का काव्यात्मक रचाव है, जिसमें न केवल हम अपने अतीत को देख सकते हैं बल्कि भविष्य के खतरों को भी पहचान सकते हैं।

चन्द्रदेव यादव जमीन से जुड़े हुए कवि हैं। उनकी कविताओं से ग्रामीण प्राथमिक स्कूलों की हकीकत का अंदाजा लगाया जा सकता है, जहां स्कूलों की विसंगतियों एवं खामियों को मिड डे मील एवं यूनिफॉर्म से ढंग दिया जाता है। यहां न तो संपूर्ण शैक्षिक उपकरण होते हैं न ही सुचारु इंफ्रास्ट्रक्चर। न तो पूरे अध्यापक होते हैं, न ही पूरे कर्मचारी। सुविधाओं के अभाव में ग्रामीण बच्चे एवं ग्रामीण प्राथमिक स्कूल दोनों त्रस्त हैं। कभी-कभी तो मिड डे मील में जहरीला भोजन भी परोस दिया जाता है। ऐसी

बर्बर और कई पीढ़ियों को बर्बाद कर देने वाली व्यवस्था पर व्यंग्य करते हुए कवि 'सूअर क लेंड़' शीर्षक कविता में कहता है–'येह पढ़ाई से अच्छा ह/ अनपढ़े रहिहैं हमहन के लइका,/ अइसन पढ़ाई त सूअर क लेंड़ ह/ न ऊ लीपे के काम आई न पाथे के!'। आखिर क्यों उत्तर प्रदेश और बिहार की शिक्षा व्यवस्था में सुधार नहीं हो पा रहा है। यहां शिक्षा व्यवस्था और उसकी गुणवत्ता को सुधारने की बजाय खिचड़ी खिलाने पर जोर क्यों दिया जाता है? यह प्रश्न विचारणीय है जिसे बताने की आवश्यकता नहीं है।

चन्द्रदेव यादव भोजपुरी के बेहद जागरूक कवि हैं। उन्हें पूंजीवाद की गहरी पहचान है। वे पूंजीवाद के छल-छद्म को बखूबी पहचानते हैं। वे सत्ता के चरित्र को भी समझते हैं। इसलिए उनकी कविताएं विकास के नाम पर होने वाले विनाश का गहरा प्रतिकार करती हैं। यह कौन नहीं जानता है कि विकास के नाम पर हम सब प्राकृतिक संसाधनों को खोते चले जा रहे हैं। इसके कारण यह धरती प्रदूषण से भरती चली जा रही है। कुछ भी शुद्ध नहीं बचा है–चाहे वह जल हो, वायु हो, पृथ्वी हो, आकाश हो या मानवीय मूल्य–सब कुछ प्रदूषित हो चुके हैं। शायद इसीलिए कवि 'मौत क जलसा' शीर्षक कविता में कहता है–'सभ्यता के बिकास क कीमत/ चुकावे के पड़ी/ धरती के/ आवऽ कुछ अइसन करीं/ कि बचल रहे फूल, फर आ हरियरी/ लइकन क किलकारी/ नदी क धार अ मानुष क प्यार।' कहना न होगा कि चन्द्रदेव यादव प्रकृति के साथ-साथ मनुष्य के प्रेम को भी बचाने वाले कवि हैं।

आज टीवी पत्रकारिता न केवल ध्वस्त हो चुकी है, बल्कि वह शोषण का माध्यम भी बन चुकी है। एक समय था जब मीडिया को लोकतंत्र का चौथा स्तंभ कहा जाता था, लेकिन २१वीं सदी के तीसरे दशक में मीडिया इतना अधिक प्रदूषित हो चुका है कि वह सत्ता की सड़न को ही विकास बनाकर प्रचारित करने में संलग्न है। यह सत्ता की बदबू को खुशबू में परिवर्तित करके प्रस्तुत कर रही है। वह लोग जागरण की जगह लोक मैनेजमेंट का एक बहुत बड़ा साधन बन चुकी है। वह जनता को जागरूक करने की बजाय उसे कंफ्यूज कर दे रही है। टीवी पत्रकारिता के इस मिजाज को देखते हुए 'टीवी' शीर्षक कविता में चन्द्रदेव यादव लिखते हैं–'कबों रहल होई टीवी 'बुद्धू बक्सा',/ मगर अब ऊ बुद्धू ना/ एक धूर्त महागुरु ह/ ई सचेत लोगन क बदल दिहलै/ मन-मिजाज,/ ई बात अब घुरहू-कतवरुओ के समझ में आवत ह/ अब अपने अपने में सिमटल दुनिया/ बिस्वग्राम ह/ अपने समाज अ संस्कृति बदे/ टीवी पर 'हे राम' ह।' मीडिया को एक धूर्त महागुरु के रूप में चित्रित करना उसके वास्तविक स्वरूप की पहचान कराना है। जिस प्रकार एक धूर्त गुरु कई पीढ़ियों को बर्बाद कर देता है उसी तरह से प्रदूषित मीडिया आने वाली कई पीढियों को बर्बाद कर देगी।

इनकी कविताओं में कवि के निजी और सामाजिक भाव घुल-मिल गए हैं । इनका अपना दुख औरों के दुख से एकात्म हो जाता है। वह एकालाप नहीं, बल्कि अपने समय से संवाद करता है। उनकी कविताओं में राजनीति की गहरी धमक सुनाई पड़ती है जो आम आदमी की जिंदगी से होकर गुजरती हुई प्रतीत होती है। इनकी कविता गुरु गंभीर शब्दों, बिम्बों और प्रत्ययों की जगह साधारण शब्दों, बिम्बों और प्रत्ययों की झड़ी लगाने वाली कविता है। ये साधारण लोगों के लाचार आँसुओं को दर्ज करने वाले कवि हैं। इनकी कविताएँ मानवीय रागात्मकता से भरी हुई हैं। संग्रह की पहली ही कविता 'तरक्की' की कुछ पंक्तियां देखिए–'तरक्की माने कटहर!/ आधी आबादी/ अपनी अस्मिता खातिर लड़त ह/ सौ करोड़ लोगन क दुःख बढ़त ह/ काहे से कि/ रुपया क माई पहाड़ चढ़त ह।' कवि ने आधी आबादी के दुःख-दर्द को जितनी सहजता के साथ इस कविता में अभिव्यक्त किया गया है वह अद्वितीय है।

चन्द्रदेव यादव एक राजनीतिक कवि हैं। उन्हें राजनीति की गहरी समझ है। वे राजनीतिक तरक्की की गणित को भली-भांति समझते हैं। वे राजनीतिक मुहावरों को कविता में तब्दील कर देने में माहिर हैं। ये वही मुहावरे हैं जिन्हें मीडिया हर रोज जनता के सामने परोसता रहता है। संग्रह की पहली कविता 'तरक्की' की कुछ पंक्तियां देखिए–'देस तरक्की करत ह,/ मतलब रामराज आवे वाला ह। मतलब.... फिर न कतों रोग होई, न सोक होई/ हर जगह पिज्जा-बर्गर/ पेप्सी-कोक होई!/ पूत क पाँव पालने में देखात ह–/ सुखई का थरिया सूनी ह/ अ परधान क कमाई दिन-रात बढ़त दूनी ह!/ मिड डे मील से ओनके घरे/ बोलेरो आ गइल/ नरेगा आ आँगनबाड़ी से/ सिंहासन पर सोना मढ़ा गइल।/ माना न माना, रामराज क लाली/ दलाली में ह/ बैपार में ह, भ्रष्टाचार में ह!/ सिधवा के सब

गदहपचीसी पढ़ावत ह,/ चैन से जीये वालन के केहू/ हाड़ फेंक के लड़ावत ह।' गौरतलब है कि ये पंक्तियां २१वीं सदी के तीसरे दशक की भारतीय राजनीति का मोनोग्राफ हैं। इसमें न केवल हम अपने गांवों की वास्तविक स्थिति को समझ सकते हैं, बल्कि सरकारी योजनाओं के बीच फल-फूल रहे भ्रष्टाचारियों को भी समझ सकते हैं। कविता में 'सुखई क थरिया सूनी ह' कहने का आशय यह है कि हमारे भारतीय समाज में न जाने कितने दलित, किसान, मजदूर, स्त्री और आदिवासियों के यहां विकास की कोई किरण पहुंच नहीं पा रही है। क्योंकि सारा का सारा धन सत्ता के दलाल ऊपर-ऊपर ही चट कर जा रहे हैं, जिससे समाज के बहुसंख्यक वर्ग की थाली में कुछ नहीं पहुँच पा रहा है। इस कविता को पढ़ते हुए नागार्जुन की प्रसिद्ध कविता 'रामराज' की कुछ पंक्तियाँ सहज ही याद आने लगती हैं कि– 'रामराज में अबकी रावण नंगा होकर नाचा है/ सूरत शकल वही है भैय्या /बदला केवल ढाँचा है/ नेताओं की नीयत बदली फिर तो अपने ही हाथों/ धरती माता के गालों पर कस कर पड़ा तमाचा है।'

'जोग-भोग', 'पंचाइत' और 'सुक्खू' इस संग्रह की तीन लंबी कविताएं हैं जो अलग से व्याख्या की मांग करती हैं। 'जोग-भोग' शीर्षक कविता स्त्री के नए तेवर को रेखांकित करती है तो 'पंचाइत' शीर्षक कविता गांव की पंचायत की वास्तविकताओं को उद्घाटित करती है। यह कविता गवईं जोड़- तोड़ और उसके मिजाज को बहुत प्रामाणिकता के साथ प्रस्तुत करती है। 'सुक्खू' शीर्षक कविता पीढ़ी दर पीढ़ी होने वाले शोषण का प्रतिकार करती है। इसमें कवि ने सुराज की नई अवधारणा को प्रस्तुत किया है। इस कविता के माध्यम से यह समझा जा सकता है कि बगैर क्रांति के शोषण से मुक्ति मिलना मुश्किल है। संवाद शैली में लिखी गई ये कविताएँ गाँव के बदलते हर समीकरण को अभिव्यक्त करने में सक्षम हैं।

कुल मिलाकर यह संग्रह भोजपुरी कविता को समृद्ध करने वाला संग्रह है। इसमें कवि ने बदलती हुई भारतीय संस्कृति का चित्रण जितनी बेबाकी से किया है, वह बेहद महत्वपूर्ण है। इसकी भाषा गाजीपुर में बोली जाने वाली भोजपुरी भाषा के ज्यादा निकट है। कविताओं के बीच में मुहावरों का प्रयोग कविता की भाषा को और अधिक समृद्ध बना देता है। बदलती हुई सभ्यता और संस्कृति को समझना हो तो इस संग्रह को अवश्य पढ़ना चाहिए।

समीक्षित पुस्तक : माटी क बरतन
कवि : चन्द्रदेव यादव
प्रकाशक : हंस प्रकाशन, दिल्ली
मूल्य : २९५ रुपये

डॉ. शिवकुमार यादव
असिस्टेंट प्रोफ़ेसर
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज- २११००२
मो. ९४५४६५३४९०

कुँवर नारायण के काव्य में मानवाधिकार

किरन राजभर

शोधार्थी ,हिंदी विभाग,
शोध निर्देशक - डा.सूर्यनारायण सिंह
इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयाग

मानवाधिकार की संकल्पना कोई नयी बात नहीं है बल्कि हमारे साहित्य और चिंतन में सदियों से चलती आ रही, हमारे निरन्तर सभ्य होने की एक पहचान भी है। 'मानवाधिकार' शब्द द्वितीय विश्व युद्ध की देन के साथ पूरे वैश्विक स्तर पर अपनाया गया किन्तु हमारे यहाँ वैदिक काल से ही साहित्य और दर्शन के माध्यम से शील, आदर्श या मानवीय मूल्यों के रूप में निरन्तर प्रदान किया जाता रहा है। हमारे वेद, पुराण, उपनिषद आदि के द्वारा हमारी पूरी की पूरी संस्कृति ही मनुष्य के अधिकारों की रक्षा करती हुई विकसित हुई है। हांलाकि बाद में ये भी तमाम संकीर्णताओं का शिकार होती गई परन्तु प्रारम्भ में इसी दृष्टि से विकसित हुई थी। इस प्रकार मानवाधिकार और साहित्य का सदियों से घनिष्टतम् सम्बन्ध रहा है। साहित्य ही एक ऐसा उपकरण है जो हर एक नियम या कानून के असफल हो जाने के बाद भी मनुष्य में मनुष्यता की संभावना को बनाए रखने का प्रयास करता है। इस प्रकार साहित्य के द्वारा न सिर्फ मानवाधिकार की रक्षा होती है बल्कि व्यक्ति के कर्तव्यों को इंगित करते हुए निरन्तर दिशा निर्देश देने का महत्वपूर्ण कार्य साहित्य करता है। इस प्रकार मानवाधिकार और कर्तव्य एक दूसरे के पूरक हैं। अपने-अपने कर्तव्यों के पूर्ण निर्वहन से मानवाधिकार की प्राप्ति स्वतः ही हो सकती है। मानवाधिकार वे नैतिक सिद्धान्त है जो मानव व्यवहार से संबन्धित कुछ निश्चित मानक स्थापित करता है। जिसमें समाज के हर एक व्यक्ति का कुछ मूलभूत प्राकृतिक अधिकार प्राप्त होते है जो व्यक्ति को सहज, सुखी एवं स्वतंत्र जीवन के लिए आवश्यक होते हैं। इस प्रकार इसमें समूचा जीवन और समाज की व्यवस्था आ जाती है और साहित्य इसी जीवन और समाज को परिष्कृत व दिशा निदेर्शित करता रहता है।

साहित्य अपने वेबाकी के लिए सदा से ही प्रसिद्ध रहा है । 'संतन को कहाँ सिकरी' से लेकर 'अभिव्यक्ति के सारे खत्तरे उठाने और गढ़ तोड़ने' तक अपनी साहस के लिए जाना जाता है । इन सब के बीच में तमाम विवादों और बहसों के बावजूद बड़े ही सहज, संयमित और बेबाकी के साथ कुँवर नारायण की प्रबंध काव्य एवं काव्य संग्रह अपने विशिष्ट एवं प्रौढ़तम भाषा शैली में अपने समय से संवाद करते हुए, व्यक्ति के अधिकारों की मांग एवं रक्षा करते हैं। 'आत्मजयी प्रबंध काव्य में नचिकेता के माध्यम से एक तरफ उसके पौराणिक संदर्भ में तो दूसरी तरफ अपने समकालीन तमाम आलोचनात्मक टिप्पणीयों के बीच में वे कहते है-

असहमति को अवसर दो सहिष्णुता को आचराण
कि बुद्धि सिर ऊचाँ रख सके.....
उसे हताश मत करो काइयाँ तर्कों से हरा - हराकर
अविनय को स्थापित मत करो
उपेक्षा से खिन्न न हो जाये कहीं
मनुष्य की साहसिकता
अमूल्य थाती है यह सबकी
इसे स्वर्ग के लालच में छिन लेने का
किसी को अधिकार नहीं....१

कुँवर नारायण के काव्य की सबसे बड़ी विशेषता

है कि कथ्य भले ही पौराणिक किन्तु उसमें आधुनिक भाव बोध की क्षमता अद्भूत होती है। जो कुँवर नारायण के समकालीन परिस्थितियों से संवाद तो करती ही है आज भी उतनी ही सार्थक एवं प्रासंगिक ठहरती है, मनुष्य के व्यवहार और समाज में मानवाधिकार के लिए।

कुँवर नारायण अपने समय में एक अलग दृष्टि से साहित्य सृजन के लिए जाने जाते है । नई कविता के दौर में बहसों और विवादों के बीच में अत्यन्त ही शान्त एवं सौम्यपूर्ण ढंग से साहित्य के मूल दायित्वों का निर्वहन वे अपने महत्वपूर्ण व कालजयी काव्य कृतियों जिसमें चक्रव्यूह (१९५६), आत्मजयी (१९६५), अपने सामने (१९७९), कोई दूसरा नहीं (१९९३), वाजश्रवा के बहाने (२००८) इसके साथ ही इन दिनों, तीसरा सप्तक (सहयोगी कवि), परिवेश हम तुम आदि के द्वारा पूर्ण करते हैं। इन काव्य कृतियों में अधिकांश का आधार पौराणिक एवं एतिहासिक है। जिसमें कवि अपने गहन अध्ययन और सूक्ष्म काव्य दृष्टि के द्वारा उनके मूल मानवीय संवेदनाओं, मूल समस्याओं की जड़ को पकड़ते हुए आधुनिक युग में मनुष्य की जटिल मनः स्थितियों के रूप में उसके विभिन्न शाखाओं को बेहतर अभिव्यक्ति देने में पूर्ण सफल रहें हैं। कुँवर नारायण अपने सम्पूर्ण काव्य में मानवीय संवेदना और उसके अधिकार की सूक्ष्य एवं व्यापक स्तर पर विश्लेषण करते हैं और मानवीय मूल्यों को पुनर्स्थापित करने का प्रयास करते हैं ।

इस प्रकार हम देखते हैं व्यक्ति को जो अधिकार दिए गए है (संविधान के द्वारा) उसके मूल में भी इन्ही मानवीय मूल्यों को महत्व दिया गया है जिसमें समानता, स्वतंत्रता, प्रतिष्ठा का अधिकार को नागरिक, राजनीतिक और आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक श्रेणियों में बांटा गया है। कुँवर नारायण की काव्य कृतियाँ इन सभी आधारों पर व्यक्ति के अधिकारों की अत्यन्त ही मार्मिक ढंग से साहित्यिक रूप में मांग करती हैं उनका मानना था कि 'साहित्य का जनवाद राजनीति के जनवाद से बहुत पूराना है' मुक्तिबोध ने कुँवर नारायण को जनतांत्रिक कवि कहा था। मंगलेश डबराल अपने लेख में कहते है ' दरअसल घोषित प्रगतिशील और मार्क्सवादी न होते हुए भी कुँवर नारायण की चेतना प्रगतिशील विवेक अन्तर्निहित है। इसलिए कह सकते है कि केन्द्रिय मार्क्सवादी चिंतन में भी आध्यात्मिक शब्द बहिष्कृत नहीं है। उनके सही संदर्भ वे मानवीय मूल्य हैं जिनके पूरे विश्वास की कल्पना समाजवादी व्यवस्था में की गई है।'२

आधुनिक भावबोध से युक्त सर्वकालिक प्रबंध काव्य आत्मजयी में नचिकेता का अपने पिता वाजश्रवा के हिंसात्मक, धार्मिक कर्मकाण्डों के प्रति विद्रोह करता है। इसके संदर्भ में कवि भूमिका में लिखते है 'नचिकेता और वाजश्रवा की असहमति न केवल नयी और पुरानी पीढ़ियों का संघर्ष है बल्कि उन वस्तुपरक वैदिक तथा आत्मपरक उपनिषद कालीन दृष्टिकोणों का भी प्रतीक है जिनका एक रूप हम अपने आज के जीवन में भी पाते है। एक ओर हमारी भयावह भौतिक उन्नति तो दूसरी ओर आत्मिक स्तर पर घोर असंयम जो इस भौतिक प्रगति को अपने लिए अभिशाप बना ले रहा है'

नहीं चाहिए तुम्हारा यह आश्वासन,
जो केवल हिंसा से अपने को सिद्ध कर सकता है
नहीं चाहिए व विश्वास जिसकी चरम परिणति हत्या हो
मै अपनी अनास्था में अधिक सहिष्णु हूँ
अपनी नास्तिकता में अधिक धार्मिक
अपने अकेलेपन में अधिक मुक्त
अपनी उदासी में अधिक उदार३

हिंसा की चिंता और उस पर संवेदना संपन्न चिंतन कुँवर जी का केन्द्रीय नैतिक, राजनीतिक सरोकार है। नैतिकता विहीन राजनीति हर वक्त को ऐसे मुश्किल वक्त में बदल देती है जो आदमी और जानवर में फर्क मिटा देते है। ऐसी अनेक कविताओं में व्यक्ति की ये चुप्पीभरी चीखें मानों मनुष्य होने की अपने अधिकारों की मांग करती हैं-

बुरा वक्त हो तो आदमी, आदमी नहीं रह पाता....
शायद उसी मुश्किल वक्त में
जब मैं एक डरे हुए जानवर की तरह
उसे अकेला छोड़कर बच निकला था खतरे से सुरक्षा की ओर
वह एक फंसे हुए जानवर की तरह
खुंखार हो गया था।४

अंहिसा दृष्टि उनकी समूची काव्य वस्तु में व्याप्त है लेकिन सर्वाधिक सघन, मार्मिक और विडम्बनापूर्ण अभिव्यक्ति उनकी चर्चित कविता 'एक अजीब सी मुश्किल' में हुई है।

अंग्रेजों से नफरत करना चाहता
जिन्होंने दो सदी हमपर राज किया
तो सेक्सपीयर आड़े आ जाते है
मुसलमानों से नफरत करने चलता
तो सामने गालिब आकर खड़े हो जाता.....५

इस कविता के बारे में पुरूषोत्तम दास अग्रवाल लिखते है 'कविता में दो सदी राज किया वाक्य साम्राज्यवादी व्यवस्था और सर्जनात्मक प्रतिभा के बीच फर्क कुँवर नारायण की चेतना में है... याद दिला देती हैं भारतीय स्वाधीनता संग्राम की मूलभूत प्रतिज्ञा, विरोध विदेशी राज से है विदेशी मनुष्य मात्र से नहीं... साथ ही इस कविता के अन्त में अपने व्यक्तिगत प्रथम प्रेमिका के धोखे को जो मुहावरे के खून के घुट को भी प्यार के घूट में बदल डालती है।'६

ऐसे कई स्मृति बिम्बों से कुँवर नारायण उस घृणा, साम्प्रदायिक का और क्रूरता के विरूद्ध एक विनम्र लेकिन सशक्त विमर्श बनाते है जो उनके समकालीन समाज में कई स्तर पर उनके चारों तरफ व्याप्त है ।

मिथकों, प्रतीकों और इतिहास को अपने काव्य कृतियों में आधार बनाते हुए कुँवर नारायण अत्यन्त ही सजगता एवं आधुनिक भाव बोध के साथ सार्थक एवं अत्यन्त ही प्रासंगिक पहलुओं पर, मानवीय संवेदनाओं और ऐतिहासिक नायकों के साथ हुए अन्यायों को अपने समकालीन सरोकारों का चित्रण करते हैं । एक चर्चित कविता 'दिल्ली की तरफ' इस संदर्भ में आदिरूप मानी जा सकती है जिसमें दिल्ली जाने वाले घुड़सवारों के बीच बंधे हुए दो हाथ घिसटते हुए जाते हैं और यह पता नहीं चलता है कि वह कौन था क्योंकि पीछे बंधे हुए हाथ ही दिल्ली पहुँचते है ।

इब्नबतूता, उस टीले तक, नीरों का संगीत प्रेम, शाहनामा, तुगलक इसी तरह की रचनाएं इनकी इतिहास दृष्टि के उदाहरण हैं जो शासक के सामने शासित की कहानी को दर्ज करती हैं। इतिहास और मिथकीय आवरण से निकालते हुए प्रसिद्ध काव्य चक्रव्यूह और आत्मजयी वर्तमान संदर्भ के यर्थाथ को जांचते हुए संघर्षों के बीच अपने अधिकारों की मांग करते हैं।

मैं नवागत वह अजित अभिमन्यु हूँ..
अपरिचित जिन्दगी के व्यूह में फेंका हुआ उन्माद,
मैं बलिदान इस संघर्ष में
कटु व्यंग हूँ उस तर्क पर
जो जिन्दगी के नाम पर हारा गया
आहूत हर युद्धाग्नि में
वह जीव हूँ निष्पाप
जिसकों पूजकर मारा गया
वह दर्द जिसको बेगुनाहों ने सहा
युग-युग से चला आता महाभारत७

१९७९ में प्रकाशित संग्रह 'अपने सामने' में कवि कुँवर जी अपने वैयक्तिक उत्कंठता से बाहर निकलते हुए आपातकाल के बाद व्याप्त दमनकारी तंत्र और लोकतांत्रिक संस्थाओं के मनमाने ढंग पर लिखते हैं-

वही शायद फिर आ गया है लौटकर मेरे दरवाजे पर मुझे पुकार -पुकार कर जगाता हुआ
गुलामों और सुल्तानों का जमाना ८

इसी प्रकार की उनकी अन्य महत्वपूर्ण कविताएं 'लाफता का हुलिया, इंतजाम, बर्बरों का आगमन आदि उल्लेखनीय है ।

'कोई दूसरा नहीं' काव्य संग्रह में अन्तर्राष्ट्रीय बाजार ने अपनी उपभोक्ता वस्तुओं के साम्राज्य और मुक्त व्यापार के साथ प्रवेश किया इसके आस-पास ही भारत में साम्प्रदायिक ताकते राजनीतिक सत्ता के द्वारा अयोध्या में बाबरी मस्जिद के विध्वंस पर मानवाधिकार को पूरी तरह रौंदने पर कवि विक्षुप्त होकर कह उठता है-

हे राम, अयोध्या इस समय तुम्हारी अयोध्या नहीं है
योद्धाओं की लंका है
मानस तुम्हारा चरित्र नहीं
चुनाव का डंका है९

इसी प्रकार लूट-पाट हिंसा अत्याचार और भ्रष्ट व खोखली सामाजिक कुचक्रों के यथार्थ को उजागर करते हुए निरन्तर ह्रास हो रहे मानवीय मूल्यों व अधिकारों पर चिंता व्यक्त करते हुए कवि कहते हैं-

कैसा अजीब वक्त है
कि कोई भी निहत्था आगे नहीं बढ़ता
कोई बयान कोई सबूत देते डरता है कि कौन फसाये अपनी गर्दन
अपने हाथ भर हाथ के लिए....
सब परेशान है कि भयानक से भयानक

घटनाएं हो जाती है और पता तक नहीं चलता कि उसके पीछे

किसका या किस-किस का हाथ है१०

साहस और जद्दोजहद से भरे भ्रष्टाचारों से जूझते हुए अपने अधिकारों के हक की लड़ाई का एक मार्मिक चित्रण 'सम्मेदीन की लड़ाई कविता में कवि करते है-

खबर है
कि भ्रष्टाचार के विरुद्ध
बिल्कूल अकेला लड़ रहा है एक युद्ध
कुशहा गाँव का एक खब्ती सम्मेदीन....
बचाये रखना उस उजाले को
जिसे अपने बाद जिंदा छोड़ जोने के लिए
जान पर खेल कर
आज एक लड़ाई लड़ रहा है ११

जल, जंगल, जमीन से बेदखल होते हुए आदिवासियों के अधिकारों की मांग को भी कुँवर नारायण नहीं भूलते है और अपनी कविता 'जंगली गुलाब' में लिखते है-

मुझे अपनी तरह खिलने और मुरझाने दो
मुझे मेरे जंगल और विराने दो
नहीं चाहिए मुझे किसी की दया
मुझे कांट-छांट कर
सभ्य मत बनाओ१२

इन विडम्बनाओं और विद्रुपताओं के बीच निरन्तर मनुष्य के अधिकारों के हनन के बावजूद कुँवर नारायण की कविताओं की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे अन्त तक अनेक संभावनाओं और उम्मीदों की ओर संकेत करती हैं-

कविता वक्तव्य नहीं गवाह है
कभी हमारे सामने
कभी हमारे पहले
कभी हमारे बाद
कोई चाहे भी तो रोक नहीं सकता
भाषा में उसका बयान
जिसका पूरा मतलब है सच्चाई
जिसकी पूरी कोशिश है बेहतर इंसान१३

इस प्रकार कुँवर जी की हर एक कविता मानवाधिकार की रक्षा करते हुए एक स्वस्थ एवं सुखी समाज की कल्पना करती है। कुँवर जी मानवाधिकार की रक्षा पूरे विश्व के मनुष्यों को लेकर करते है उनके यहाँ मानवाधिकार अपने समाज या राष्ट्र के सीमित दायरे तक ही नहीं रहता है बल्कि सेक्सपीयर, गालिब, सरहपा, खुसरो पूरे विश्व के धरातल पर फैला हुआ है और निरन्तर मानवीय मूल्यों की पूनर्स्थापना करने का प्रयास करता है ।

संदर्भ सूची-

१. कुँवर नारायण-(१९६५), 'आत्मजयी', भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्लीः २५

२. मंगलेश डबराल-(२०१८), पूर्णतर मनुष्यता के कवि, ओम निश्चल (सं) 'अन्वय', राजकमल प्रकाशन, दिल्लीः १६५

३. कुँवर नारायण-(१९६५), 'आत्मजयी', २४

४. पुरुषोत्तम अग्रवाल (सं), (२०१६), प्रतिनिधि कविताएँ, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्लीः ९४

५. कुँवर नारायण-२०१४ (२००२), 'इन दिनों', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्लीः ९

६. पुरूषोत्तम अग्रवाल-(२०१८), जीवन से बड़ा एक सपना, ओम निश्चल (सं) 'अन्वय', राजकमल प्रकाशन, दिल्लीः १७४

७. कुँवर नारायण-(१९५६), 'चक्रव्यूह', राधाकृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्लीः ३

८. कुँवर नारायण-(१९७९), 'अपने सामने', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्लीः १५

९. कुँवर नारायण-२०२१ (२०१७), 'कोई दूसरा नहीं', राजकमल प्रकाशन, नई दिल्लीः ७०

१०. वही, २३

११. वही, १८

१२. पुरुषोत्तम अग्रवाल (सं), (२०१६); ६०

१३. वही, १४५

शोध निर्देशक - प्रो. सूर्यनारायण सिंह
शोधार्थी - किरन राजभर,हिंदी विभाग,इलाहाबाद विश्वविद्यालय

'अमृतलाल नागर के उपन्यास 'एकदा नैमिषारण्ये' में भारतीय संस्कृति'

रत्नेश पाण्डेय

शोध-छात्र
म०नं० ३२८ (एस्पिरेन्ट इंस्टीट्यूट)
तमसा मार्ग, अकबरपुर,
अम्बेडकर नगर २२४१२२
(उ०प्र०)
मो०-९४१५३६३७०६

अमृतलाल नागर कृत 'एकदा नैमिषारण्ये' उपन्यास भारत के अतीत का सांस्कृतिक परिच्छेद है। इस कृति में नागर जी ने वर्तमान हिन्दू-संस्कृति की जड़ो को खोजा हैय और यह बतलाया है कि नैमिष आन्दोलन ही वर्तमान हिन्दू-संस्कृति का जनक है।१'एकदा नैमिषारण्ये' नागर जी का ऐतिहासिक-सांस्कृतिक उपन्यास है। पौराणिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर आधारित नागर जी का यह उपन्यास विपुल ज्ञान-भण्डार का संग्रह है। यह उपन्यास पौराणिक सन्दर्भों से युक्त ऐतिहासिक घटनाक्रम में राजनीतिक और सामाजिक पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है। लेखक की व्यापक एकदेशीयता ने एक विशेष भूखण्ड को समक्ष रखकर भी सम्पूर्ण भारतीय संस्कृति को ही दृष्टिगत बनाया हैय और उसे आधुनिक मानवता-बोध की संवेदनशील दृष्टि दी है।२

पौराणिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर रचित नागर जी के दो उपन्यास हैं- 'एकदा नैमिषारण्ये' और 'मानस का हंस'। इनका वातावरण हमारी आँखों के सम्मुख पौराणिक और मध्यकालीन भारत को साकार करता है। नागर जी छोटे-छोटे व्यंजक ब्यौरों के लिए तो प्रसिद्ध ही हैं- 'मानस का हंस' में अयोध्या, काशी, चित्रकूट का सामाजिक एवं धार्मिक वातावरण अत्यन्त सजीव एवं युगानुकूल तो है ही, वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वह सटीक एवं खरा उतरता है। मुगलकालीन राजनीतिक पृष्ठभूमि पर उपन्यास का वाह्य परिवेश युद्ध की हलचल एवं आतंक एक साथ अंकित है।३

'एकदा नैमिषारण्ये' में अयोध्या, मथुरा, नैमिषारण्य, प्रयाग, कौशाम्बी, पद्मावती आदि पवित्र धर्म नगरियों की रमणीयता, वैभव सम्पन्नता के प्रतीक महल, मन्दिर, भवन, झोपड़े अरण्य, वाटिकाएँ, नदी - तट प्राकृतिक वैभव, राजपथ, गलियाँ पगडंडियाँ, हरे-भरे खते, युद्ध के मैदान, नौका विहार, रथें, अश्वों, गजों की भागदौड़, यज्ञकुण्ड का धुँवा, पर्व, नृत्य, युद्ध, अग्नि से जलते हुए वनवृक्ष, नदी-घाट का दृश्य' आदि सब कुछ तत्कालीन राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक परिवेश और देशकाल के अनुरूप है।४

नैमिष आन्दोलन एक ऐसे प्रयास की कड़ी है,

जिनके अन्तर्गत सामाजिक भाव-क्रान्ति लाने के लिए जनमन के भेदभाव को मिटाकर एक विराट समष्टि चेतना को जगाना आवश्यक है। यह उपन्यास (एकदा नैमिषारण्ये) सम्पूर्ण आर्यावर्त के इतिहास में 'मानववाद' की प्रतिष्ठा करता है- 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना इस समग्र ऐतिहासिक चेतना का मूल स्वर है। यह मूल स्वर ही प्राचीनता को नवीनता का संदेश देता है।५

नागर जी ने 'एकदा नैमिषारण्ये' उपन्यास में सामाजिक रहन-सहन, वेश-भूषा, भाषा-दृष्टि एवं भिन्न-भिन्न देशों की परम्पराओं का भी उल्लेख किया है। यह नागर जी का सांस्कृतिक संचेतना से भरा उपन्यास है, जिसमें उन्होंने अपनी उर्वर कल्पना का प्रचुर प्रयोग किया है। उपन्यास की प्रेरणा और प्रतिपाद्य की महत्ता उसके सांस्कृतिक और राष्ट्रीय उद्देश्य में निहित है।

अब हम यहाँ से 'एकदा नैमिषारण्ये' उपन्यास के सांस्कृतिक स्थलों का अन्वेषण, जांच व अनुसंधान करेंगे-

''यह पुरूरवा और उर्वशी के काल से होता चला आया है। कोई आज की रीति तो है नहीं। '' ...... काण्व नारद ऐसी ही कामवृन्दाओं के सनातन धार्मिक मकड़ जाल में फँसे थे। अपने रास्ते से चले जा रहे थे। सहसा नारी कण्ठ के सामूहिक संगीत की भीनी पर तेज भनक नारद के कानों में पड़ी। संगीत प्रेमी नारद का मन लहरा उठा, खिंचे चले गये।६ ''वासुदेव की जन्मभूमि का दर्शन करते हुए वे रेणुका क्षेत्र में अपने मित्र भार्गव व्यास से मिलने जा रहे थे।....... किन्तु फँस गये इस मकड़-जाल में। चोली-घंघ्रिया पहनते हुए मन में उमड़ते, उफनते लाज, क्रोध, ग्लानि विवशता के भावों और विचारों के महाबवण्डर में भी हँसोड़ नारद को अपनी इस स्थिति पर सहसा जोर की हँसी आ गई।७

''एक रसीली वृन्दा ने उनके सजे मुखमण्डल को, बड़ी भूखी-प्यासी आँखों से देखते हुए सहसा उनके दोनों गालों की चुटकी से पकड़कर 'नारदी' को समझाया, धमकाया.............. ''पुजारिन को हर प्रकार से सुख पहुँचाना। हमारी सेवा करना। जब-तक लकड़ी बीनने के बहाने हमारे साथ वन-विहार भी करना होगा। यह मत भूलो कि यह काम-वन है।८

नारद...............पुजारिन को रिझाने के लिए कुटिया से बाहर निकलते समय उन्होंने फूलों से भरी चंगेर हाथों में उठा ली और गाते हुए चले। वृन्दाएँ आनन्द और अचरज से उभचुभ होकर उन्हें देखने लगीं। तुलसी मण्डप के पास कुछ वृन्दाएँ पुजारिन का श्रृंगार कर रही थीं। पुजारिन की ओर उन्मुख बाते और बीच-बीच में नृत्य लीला करते रसीले चितवनों से ताक-ताक कर जिस-जिस को फूलों से मारते हुए नारद ने वातावरण को अपनी कलारस मोहिनी से बाँध लिया।''९

''नारद ने जब यह रीति सुनी तो बोले ''अरी मैया, ये कैसो धरम है, तिहारे लोगन को, नारी को नारी सों विवाह? ये कैसी अनिरीति करो हो तुम लोग।'' ''अनरीति कैसी, हमारी पुरखिनों की रीति है। चलो-चलो, जल्दी करो, अबेरिया है रही हैगी।''१०

नागर जी कृत 'एकदा नैमिषारण्ये' उपन्यास के सांस्कृतिक स्थलों के अनुसंधान क्रम में- नारद पुजारिन से कथन है-

''पुजारिन सखी, वर्षन से तुम विधवा हैं- विधवा तौ तुम्हारी वृन्दावन की रीति के अनुसार या सबरी हैं, पै इन्हैं तौ गुप्त रूप तैं पूर्ण सुहाग सुख सदा मिल्यौ ही करत है................ सत्य कहूँ के नायँ? मैं तो कौं सुहाग दऊँगो, सुहाग दऊँगा.......।'११

''नारद के मन एक हल्का सा सांस्कृरिक झटका तो खायाय पर अपने को सँभालकर उन्होंने कहाः ''प्रेम में सब कुछ शुद्ध हो जाता है, भाई।''१२

नारद वचनः- ''कली अपने नियत समय पर ही खिलती है, और एक बार वह फिर बन्द नहीं हो सकती। वह या तो मुर्झाकर अपना स्वाभाविक अन्त पायेगी या फिर संस्कार रूपी गन्धी के उपचार से सुगन्ध रूप में उसकी आत्मा सदा महका करेगी।१३

नारद जी, यहाँ भारतीय संस्कृति के प्राणभूत अध्यात्म व दर्शन का आश्रयण करते हुए कह रहे हैं-

''नारद सोचने लगे कि यह संसार मिथ्या है, दुःखमय और कुरूप है। ईश्वरभूत जीव और जीवभूत ईश्वर की इच्छा यहाँ परस्पर द्वन्द्व करती है।............... इस

द्वन्द्वमय जीवन-ताप से मुक्त होने के लिए केवल दो ही उपाय हैं- या तो एक रस, एक रूप नारायण के चरणों में लिप्त हो जायेय और यदि यह सम्भव न हो तो माया के नृत्य-मण्डप के समान इस संसार में जैसा वह नाच नचाये, वैसा ही नाचता रहे। संसार के सुख-दुःख दोनों ही माया हैं, मिथ्या हैं, सुन्दर-असुन्दर दोनों ही रूपों में कुरूप हैं। इनका त्याग ही मनुष्य के लिए अपने जीव की द्वन्द्व मुक्ति का अन्यतम साधन हैं।१४

'एकदा नैमिषारण्ये' उपन्यास के प्रकृत स्थलों के प्रकृत स्थल में भी उपन्यासकार ने भगवान् और नारद के बीच चल रही वार्ता के प्रसंग में धर्म और अध्यात्म का आश्रयण किया है, यद्यथा-

''भगवान् बोले, हे नारद, मेरी माया मेरी भक्ति से भी बड़ी है। इसे न भूलो। तप, बन्दना, उपासना से जब मेरी माया को भी सिद्ध कर लोग, जब मैं सदा तुम्हारे साथ रहा करूँगा। नारद बोले, भगवान् मैं नहीं मानता कि आपकी माया आपके सच्चे भक्तों का कुछ बिगाड़ सकती हैय और यदि आपके मन में ऐसा सन्देह है, तो दिखलाइए अपनी माया की शक्ति।''१५

''तो हुआ यह कि भगवान् ने नारद जी की अटल भक्ति के प्रति बड़ा आदर प्रकट किया और कहाकि हे नारद! पृथ्वी पर जन्म लेने से मुझे भी अपनी माया के वशीभूत होना पड़ता है। बस इसी से समझ लो कि मेरी माया बड़ी शक्तिशाली है............ नारद बोले कि जैसी नारायण की इच्छा। मैं तो अपका पदरज-अनुगामी हूँ।१६

''आर्या भार्गवी की आवाज सुनकर नारद तुरन्त रसोई-मण्डप से बाहर आ गये और कथा-मण्डप के आगे तुलसी चैरे के पास माता भार्गवी को देखकर भक्ति और उल्लासपूर्वक उनके चरणों में साष्टांग प्रमाण किया। आर्या का वात्सल्यभाव उमड़ पड़ा। झुककर नारद को उठाया और अपनी बाँहों में कसकर देर तक उन्हें बाँधे रहीं। उनकी आँखे भर आई।........ नारद जी का मुखमण्डल अपने दोनों हाथों से बाँध लिया और जी भर कर देखने के बाद उनके कपोलों पर चुम्बन अंकित कर उनका मस्तक सूँघा........।''१७

धर्म-अध्यात्मानुप्राणित सांस्कृतिक स्थलों के अन्य भव्य निदर्शन भी अवलोकनीय हैं- तद्यथा-''वह एकजिह्व, अनन्तबाहु होकर सब लोकों में व्याप्त है। सर्वत्र उसी की माया है। मैं उससे बचकर तो निकल आयाय पर अब अपनी महामाया स्वरूपिणी माँ के श्रीचरणों के मोहपाश से स्वयं को कैसे छुड़ाऊँ, यह नहीं समझ पा रहा हूँ।''१८

''श्रद्धालु वहीं से इन्हें दूध, मदिरा चढ़ाते थे। कुण्ड के बीचों-बीच पत्थर की चार तोरणों, तीन डण्डों वाली चहरदीवारी के भीतर सोने की विशाल जलाधारी में स्फटिफ का ऊँचा शिवलिंग स्थापित था। कुण्ड भर में भक्तों द्वारा चढ़ाये गये अक्षत, मछलियाँ, फूल और चन्दन की फैली हुई थी।''१९

''मन और कायारूपी अश्वों की वल्गा जिस संस्कृति-सारथी के हाथों में है, वह इन दोनों से अधिक शक्ति सम्पन्न है।'' .... मैंने शक्ति का त्याग किया है। मैं शिवभक्त हूँ।'' तापस ने बड़े दम्भ से कहा। .... सोमाहुति ने तापस को एक बार ध्यान से देखा उसका दम्भ भरा खोखला गाम्भीर्य देखकर हँसी आई बोले ''पर भाई शिव हों या स्वयं वासुदेव नारायण शक्ति बिना सभी फीके हैं।२०

ध्यये है कि श्री अमृतलाल नागर जी विरचित उनके समस्त उपन्यासों में, यूँ तो कमोवेश सांस्कृतिक झाँकियाँ अनायास, स्वतः प्रतिविम्बित हो उठी हैंय पर उनके उपन्यास 'एकदा नैमिषारण्यें' का समग्र कलेवर ही भारतीय संस्कृति से सहज भावेन अनुप्रामिण है, जिनके निदर्शन, विहित उपन्यास में, पदे-पदे अवलोकनीय हैं तद्यथा-

''चैथे पहर स्नान ध्यान व्यायामादि नित्यकर्मों से निवृत्त होकर सोमाहुति बैठे थे .... ''महात्मन्, शेषतीर्थ के बड़े महन्त मेरे पिता श्री वसुनाग आपके दर्शनार्थ पधारे हैं। क्या उन्हें सेवा में उपस्थित होने की आज्ञा हैं?'' मैं स्वयं उनके स्वागतार्थ चलता हूँ।'' कहकर सोमतीर्थ नीचे आये.............।२१

पुनश्च-

वसुनाग ने सोमाहुति से कहा- ''मैं इस शेषतीर्थ का महन्त हूँ। ब्राह्मण के चरण छूकर अपने को पवित्र कर लेता।'' ''अहो तप, में आप किस ब्राह्मण से कम हैं? ऋषि परम्परा के जनों से मैंने सुन रखा है कि नागों के दर्शन

देवों को भी दुर्लभ हैं। इस दृष्टि से (मैं) बड़भागी हूँ। मैं तपोनिधि, वेदपुराण सम्पन्न व्यास सोमवर्ण का पुत्र भार्गव सोमाहुति...............।''२२

''योगिराज, गुरूपरम्परा में मेरे पूर्वज व्यासदेव महाभारत संहिता में कह गये हैं कि जो धर्ममार्ग दूसरे धर्ममार्गों का बाधक है, वह कुमार्ग है......।'' 'यह कुमार्ग है? और जब दम्भी, नीच बौद्ध महास्थविरों के कुत्सित संकेतों पर शकों, कुषाणों के द्वारा तुम देववादियों के तथाकथित सुमार्ग जूतों तले रौंदे जा रहे थे, तब शकारि विक्रामादित्य को प्रकट करने वाला मार्ग कौन सा था?२३

''स्वयंभुव मनु के प्रपौत्र, बह्मण वर्ण-संस्थापक परमयोगेश्वर, परम प्रतापी चक्रवर्ती सम्राट भरत की, ... जिन्होंने इसे भारतवर्ष नमा दिया। जिन्होंने दूसरे भी और आगे अपने देव पुरखों की भूमि तक को पुनः अनुशासित किया।''२४

''योगेश्वर शंकर की भक्ति के साथ-साथ श्रीराम की भक्ति भी-''

''ऋषिवर, आपको किसने बहका दिया कि राम और शिव एक दूसरे के आराध्य नहीं। महात्मा चाणक्य को श्री रामचन्द्र के प्रति श्रद्धा ही इसलिए हुई कि अनेक श्रेष्ठगुणों से विभूषित होने के साथ ही साथ देवाधिदेव परम योगेश्वर शिवजी के अनन्य भक्त भी थे।''२५

धर्म, अध्यात्म,-अनुप्राणित अग्रिम सांस्कृतिक स्थल ईदृक् मनोहारी है-

''सूतनन्दन, उग्रश्रवा की मीठी वाणी से सन्तुष्ट होकर नारद बोले-''हे सौति महात्मा लोमहर्षण के सुयोग्य वंशधर होने के नाते आप वन्दनीय हैं.......... हे सततनय, हमारे प्रातः स्मरणीय पवित्र एवं पूज्यदेव ऋषिपितरों की आर्य भूमि अपने उत्तरी सीमान्त में हिम और पर्वतों से घिरे हुए पृथ्वी के ध्रुव बिन्दु पर स्थित है, उसे सुमेरू कहते हैं........।'' हे महाभाग, हमारे पूर्वज हजारों वर्ष पहले उसी दुर्गभ देवभूमि से वेद की ऋचाएँ गाते हुए उतरे थे। हे सौति! सुमेरू पर्वत श्रृंखला से घिरी हुई उस पावन देवभूमि के दर्शन पाना, यद्यपि अब अत्यन्त कठिन हैय किन्तु उग्रतपा सिद्ध पुरूष अब भी यदा-कदा वहाँ जाते हैं, ऐसा.............. मैंने सुना था।''२६

नारद बोले- ''अनेक जातियों के सांस्कृतिक समन्वय से विराट् चेतना का उदय होता है। हे सौति! महर्षि भृंगु के द्वारा पहली बार अग्नि में .... ''हे सौति, देव और असुर का भेद जातीय दृष्टि से करें। सुर, असुर, शक, आर्य वस्तुतः एक ही पुरखों की सन्ताने हैं। रहा उनका धर्म-सो वह भी अब अपने प्राचीन संस्कार खोता चला जा रहा है।''२७

''मेरे मन में यह आस्था उदय हुई कि हर रूप में पूजित देवशक्ति एक ही है।............... मनुष्य के द्वारा पूजित किसी के भी देवता को तिरस्कृत करना अथवा छोटा बतलाना स्वयं अपने ही देवता का अपमान है।२८

''भारत! धर्मरक्षक, गो-ब्राह्मण प्रतिपालक महाराजाधिराज चन्द्रगुप्त की इस शोभा यात्रा में सहसा विघ्न होकर तुम्हारा खड़ा होना ठीक नहीं है वत्स! आओ मेरी लढिया़ पर बैठ जाओ।''

'आंहाहा हा, मेरे परमपूज्यपाद, श्री गुरूदेवजी महाराज भी विराजमान है।''३०

'एकदा नैमिषारण्ये', उपन्यास की अग्रिम सांस्कृतिक स्थलीय झाँकियाँ इस प्रकार अवलोकनीय हैं-

''युमना तट पर अष्टमी के चाँद सी बसी हुई मथुरा नगरी। सीमा में प्रवेश करते ही नारद ने एक घर से आती हुई किसी नन्हें मुनने की 'कुआँ-कुआँ सुनी। वे भाव विभोर हो गये। उनके हृदय की धड़कनों में वासुदेव का हिंडोला आ गया। यों तो ब्रजभूमि में हर जगह नारद को, वह किशोर देवता प्रतिपल झलक-झांई सा मिला था............।''३१

''महात्मा भार्गव अयोध्या, काशी, प्रयाग कोशाम्बी में जहाँ कहीं हों उन्हें यह सूचित किया जाय कि महात्मा नारद जी ने उन्हें तुरन्त मथुरा पहुँने का द्रुतगामी सन्देश भिजवाया है। मथुरा पहुँचकर महास्थान मन्दिर के महन्त जी तुरन्त सम्पर्क स्थापित करें।३२

''कुषाणों ने देवों की पूजा का प्रचलन आतंकपूर्वक समाप्त करवा दिया था।................. पूजो तो हड्डियाँ पूजो, हड्डियों के ऊपर बड़े-बड़े स्तूप क्या दुर्दशा है, यज्ञ करने की आज्ञा नहीं, वैदिक भागकर जंगलों मे छिप गये हैं...........।''३३

"ठीक है, सन्नागारिक आर्यत्व तक किसी व्यक्ति का उठना सचमुच बड़ी बात है। आर्य श्रेष्ठ हैं, और श्रेष्ठता, व्यक्ति में गुणों की होती है। आप इन स्वाभिमानी, तपोनिष्ठ सज्ज्न की मानरक्षा यदि करेंगे तो अपने आर्यत्व का परिचय देंगे।.................... आइए ब्रह्मन, ब्राह्मण का क्रोध तेज में नहीं, शान्ति में दमकता है। अपने इस क्रोध को ब्राह्मण चाणक्य की तरह पचाकर काल परिवर्तन की युक्तियों और प्रयत्नों में ध्यान दौड़ाइए।"३४

उक्त वार्ता नारद पर हँसकर उनकी अवमानना करता है, फिर क्रुद्ध हुए ब्राह्मण को नारद जी ने सविनय समझाया है।

'.............. अरे क्या ध्यान दौड़ाएँ महाराज! ब्राह्मणों की मट्टी पलीद है। दाने-दाने को तरसते हैं बेचारे। बौद्धों और क्षपणकों की पूँछ है, इस मथुरा में और जो ब्राह्मण सम्पन्न हैं वे भी यज्ञ-यागादि का त्यागकर इन्द्र से सम्बनिधत कतिपत वेद-मन्त्रों का पाठ बौद्ध क्षपणक-कर्मकाण्ड पद्धतियों के साथ जोड़कर भूत-प्रेत, यक्ष आदि से पीडित़ जनों को इन्द्र के नाम से ठगते हैं।"३५

"हाट-हवेलियों की बाहरी दीवारों पर रंगीन चित्र और मूर्तियाँ स्थापित करने का चाव मथुरा वालों को अत्याधिक है। यक्ष यक्षिणियाँ अप्सरायें- जिधर दृष्टि घुमाओं उधर ही कला का सौन्दर्य देख लो। कहीं मद से मतवाली नग्न नवयौवनाओं को दासियाँ संभालकर उठाती हुई दर्शायी गई हैं, कहीं कोई अल्हड़ नहाती हुई चीती गई है .... नगर बंधुओं की अल्हड़ बछेडिय़ाँ गेंद उछालने के मिस अपने मनोरम काया कन्दुकों की उछालों से .... श्रेष्ठिन-पुत्रों, विलासी नागरिकों तथा कच्चे लंगोट के भिक्षु और जैन-वैष्णव साधुओं के हृदयों से भगवत भक्ति को भगाकर मानों कामिनी, कंचनभक्ति का पाठ पढ़ा रही थीं।"३५

"आर्या सौम्य अपने सुनाम के विपरीत आचरण करके आप ही अपने तमोगुण का परिचय दे रहे हैं, और ब्राह्मण तथा ज्येष्ठ होने के नाते मैं यह कहने का अधिकार भी रखता हूँ कि आप लोगों की मूर्खतापूर्ण धर्मान्धता ही शिव साम्राज्य की परम शत्रु है।"३७

"यज्ञकर्ता तान्त्रिक और जादू-टोने वाले कर्मकाण्ड विश्वास करते हैं।........... किन्तु केवल उसी से उसे आध्यात्मिक मनः शान्ति नहीं मिलती। अतः मेरा मत है कि ज्ञान-भक्ति और कर्म का उचित समन्वय ही लोक के लिए कल्याणकारी हो सकता है। .... ज्ञानमार्ग पर चल कर ही मुक्ति पाई जा सकती है, और यही हुआ भी था। औद्दालक आरूणि ने यज्ञों के विरूद्ध एक प्रचण्ड वैचारिक आन्दोलन का सूत्रपात किया था.....।"३८

श्री अमृतलाल नागर कृत 'एकदा नैमिषारण्ये' उपन्यास के धर्म, अध्यात्म व सामाजिक रीतिरिवजों से अनुप्राणित भारतीय संस्कृति के अन्य निदर्शन आगे के उदृत स्थलों में भी अवलोकनीय हैं, तद्यथा-

"वैदिक धर्म में देवता दाता है, और मनुष्य भिखारीय जबकि निग्गंय नातपुत्त मनुष्य को ही अनन्त श्री विभूषित मानते हैं। श्रमण, श्रम के द्वारा ही कैवल्य को प्राप्त कर लेता है, उसे आप, वासुदेव परब्रह्त की कृपा से प्राप्त करने की कल्पना करते हैं।" प्रातः स्मरणीय भगवान् आदि व्यास ने भी मनुष्य को ही श्रेष्ठतम बतलाया है।"३९

इस प्रकार मैंने अमृतलाल नागर के उपन्यास- 'एकदा नैमिषारण्ये' में 'भारतीय संस्कृति' के तथ्यों का, यथामति, अनुशीलन-परिशीलन व अनुसन्धान कियाय यूँ तो अनुसन्धान के विस्तार व प्रौढि ़की सीमा नहीं है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूचीः-

१. डॉ० हरिमोहन बुधौलिया, 'अमृत लाल नागर एवं अमृत एवं विष,' अनंग प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण २००२ पृ०सं० १८

२. डॉ० सरोज सिंह, 'अमृत लाल नागर की कथादृष्टि के समाज शास्त्रीय आयाम,' राका प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण २००७, पृ०सं० ५९

३. आनन्द प्रकाश त्रिपाठी, 'अमृत लाल नागर के उपन्यास' प्रकाशक-आनन्द प्रकाश फैजाबाद, प्रथम संस्करण १९८१ पृ०सं० २६०.

४. वही,'अमृत लाल नागर के उपन्यास,' पृ०सं० २६०-६१

५. वही, पृ०सं० ६१.

६. अमृत लाल नागर, 'एकदा नैमिषारण्ये,' लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज, संस्करण २०१८ पृ०सं० १-२.

७. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० २

८. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० २

९. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० ३

१०. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० ३

११. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० ४

१२. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० ७

१३. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० ९

१४. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० १०

१५. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० २०

१६. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० २०

१७. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० २१

१८. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० २३

१९. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० २६

२०. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० २९

२१. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० ३३

२२. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० ३३

२३. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० ४२

२४. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० ४३

२५. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० ४३

२६. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० ६०

२७. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० ६१

२८. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० ८७

२९. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० ९५

३०. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० ९७

३१. अमृत लाल नागर, 'एकदा नैमिषारण्ये,' लोकभारती प्रकाशन, संस्करण २०१८ पृ० १०३

३२. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० १०३

३३. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० १०४

३४. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० १०४-१०५

३५. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० १०५

३६. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० १०६

३७. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० १२९

३८. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० १६४

३९. वही, 'एकदा नैमिषारण्ये,' पृ०सं० १७२

रत्नेश पाण्डेय

(शोध-छात्र)

म०नं० ३२८ (एस्पिरेन्ट इंस्टीट्यूट)

तमसा मार्ग, अकबरपुर,

अम्बेडकर नगर २२४१२२

(उ०प्र०)

मो०-९४१५३६३७०६

लोककंठ में राम

डॉ.नीलम मिश्रा

हिंदी विभाग।
लालबाबा कॉलेज, बेलूर हावड़ा
पश्चिम बंगाल

राम नाम के बारे में गोस्वामी जी कहते हैं 'राम को नाम जु आपनो सु घरु है' यानि 'राम' यह नाम ही संपूर्ण जीवन को अपने भीतर समाहित करने की क्षमता रखता है। राम एक भरोसा का नाम है, संशय के घिराव से मुक्ति का नाम है। संशय विहग उड़ावनिहारी है। यही कारण है कि भावाभिव्यक्ति की क्षमता रखने वाले साधारण एवं असाधारण, शिक्षित एवं अशिक्षित परिष्कृत एवं असंस्कृत तथा शिष्ट एवं अशिष्ट दोनों ही श्रेणियों के लोग शाश्वत रूप से राम को रचने में लगे हुए हैं साथ ही जीवन को राममय बनाने की कामना लिए हुए रामनाम का आश्रय पकड़े हुए जीवन को सही दिशा एवं दशा देने के सफल प्रयास में तत्पर भी। सच पूछिए तो राम लोक के मन में रमते है लोक का मन राम में रमता है। लोक चेतना में निरंतर रमते रहने की प्रक्रिया का नाम राम है लोक के कड़वे, तीखे एवं मीठे सभी भावों में राम की व्याप्ति है। गोस्वामी तुलसीदास जी जब कहते हैं ' नानापुराण निगमागमसम्मतंयद् रामयणेनिगदितं क्वचिदन्यतोपि तब समझना गलत न होगा कि इस क्वचिदन्यतोपि का अर्थ लोक कंठ ही है। यदि शिष्ट साहित्य में मिलने वाला यह भारत वर्ष का रामकथा साहित्य दक्षिण पूर्व एशिया तक प्रचारित है तो उतना ही व्यापक प्रसार लोककंठ से निःसृत रामकथा का भी है। साहित्येतर विधाओं में यथा संगीत, नाट्यमंचन, नृत्य शिल्प और चित्रकलाओं आदि में अभिव्यक्ति पाने वाली रामकथा लोकसंगीत लोकनृत्य लोकनाट्य तथा लोक शिल्प एवं चित्रकलाओं में भी उतनी ही गर्मजोशी के साथ अनेकानेक रूपों में रुपान्तरण होती रही है। एक ओर यदि साहित्य, शास्त्र एवं पुराणों के ज्ञाता रामकथा कहते सुनाते हैं तो वही लोककथावाचकों की भूमिका भी कमतर नहीं रही है। यदि रामायण का अनुवाद सैकड़ों भाषाओं में हुआ है तो बोलियाँ भी पीछे नहीं रहीं हैं। यदि रामायण समस्त राम कथाओं का उपजीव्य है काव्यबीजं सनातनं' है तो लोककथा के रूप में व्याप्त यह रामकथा जो जो इन ग्रन्थों से पूर्व की लक्षित की गई है बहुत संभव है कि इनकी बीजग्रन्थ रही हो।

जैसा कि हम जानते हैं कि लोकसाहित्य की रामकथा का सर्वाधिक प्रसार विस्तार गीत विधा में है साथ ही यह भी कि चाहे लोकसाहित्य हो अथवा शिष्ट साहित्य रामकथा का गान ही ज्यादा हुआ है वाल्मीकि ने भी राम की जो पूरी गाथा लिखी वह काव्यमय ही है। स्पष्ट है कि गीत जो हृदय की अनुभूति को सहज और सच्ची अभिव्यक्ति देते हैं में ही निबद्ध होकर यह कथा और भी सरस, मनोरम और मर्मस्पर्शी बन पडी है। और बात जब लोक के अपने गीतों की हो तब यह कथा लोक की निजी अनुभूतियों से जुडने लगती है। यहाँ पर लोकमन

से जुडकर राम उसके हृदय को भरते दिखाई देते हैं।यह राम का भाव ही है कि लोक जन्म से लेकर जीवन पर्यन्त स्वयं को, स्वयं की परिस्थितियों, विभिन्न जीवन दशाओं की राम के जीवन से साम्यता स्थापित करने लगता है। प्रत्येक रिश्ते में वह राम को देखने जोड़ने लगता है। पति भी राम है, पुत्र भी राम है, भाई भी राम है, पिता भी राम है और कभी कभी वह स्वयं को भी राम महसूसने लगता है। राम को याद कर लेने से ही एक विशालता का भाव लोकमानस को भरने लगता है और यह भाव ही है जो व्यक्ति को कभी खाली नहीं होने देता क्योंकि-

'को भरिहैं हरि के रितये।
रितवै पुनि को हरि जो भरिहैं '।

यही नहीं 'सियाराममय सब जग जानी' का अगर सच्चा व्यावहारिक रूप देखना हो तो लोकजीवन में बड़ी सुगमता से देखा जा सकता है संघर्ष करते हुए धर्म पथ पर अग्रसर हर व्यक्ति स्वयं में राम की झलक देखता है, लोकजीवन के घेराव हैं राम। ऐसे राम- भाव से भरे हुए हृदय वाला लोक जब राम की कथा अपने गीतों में ढालता है, यह कथा और भी जीवन्त हो उठती है। राम को लोक अपने मन की आखों से देखता है तभी तो राम कभी साधारण व्यक्ति दृष्टिगत होने लगते हैं, कठिन परिस्थितियों में जीवन के कष्टों को झेलते हुए जहाँ विल्कुल अपने से लगने लगते हैं, वही जनक की सभा में सहज ही धनुष भंग करते, वन में राक्षसों दुष्टों का संहार करते, ऊंच नीच सबके साथ सम व्यवहार करते सबको यथोचित सम्मान प्रदान करते राम अति विशिष्ट एवं प्रभावशाली प्रतीत होने लगते हैं। जब कोई लोकगायक बिरहा गाता है–

'राम लछिमन बनवाँ के चलले
सीता चलेगी संगतोर
राम लछिमनवा के लगती पियसवा
सीता देली अमित घोर'

तब जेठ बैसाख के महीने में जंगल में भटकते, प्यास से ब्याकुल दो भाई आँखों में तैरने लगते हैं वहीं दूसरी ओर उनकी प्यास बुझाने में तत्पर सीता दूर से घडा भरकर लाती नितांत साधारण गृहिणी सी प्रतीत होती है। राम के दुख से दुखी उनके सुख से सुखी लोकमन सदैव स्वयं को राम -भाव से सींचता रहता है।

लोकनाट्य आदि में भी लोक कलाकार जब रामकथा का मंचन करता है उसमें प्रसंगवश आने वाले गीत भले ही राम के जीवन प्रसंगों से जुड़े होते हैं तथापि गीत के बोल लोक मन की अपनी सहज अभिव्यक्ति होने के नाते भावुकता और कल्पना के सहज सम्मिश्रण के नाते राम के ही न रहकर जनसामान्य की कथा महसूस कराने लगते हैं यह राम के लोक संपृक्त हो जाने का ही अद्भुत प्रमाण है।।

रामकथा से संबद्ध ऐसे लोकगीत भी मिलते हैं जो आकार में पर्याप्त बडे और कथानक आधृत होतेहैं लोकसाहित्य में ऐसे गीतों को कथा गीत कहा जाता है ऐसे प्रसंगों में रामजन्म विवाह, वनगमन, सीता निर्वासन, सीता की अग्नि परीक्षा, सीता वनवास, सीता का धरती में प्रवेश आदि सम्मिलित हैं जिन्हें लोक अपनी भावनाओं और कल्पनाओं से जोडकर प्रकारांतर से कहें तो अपने जीवन चरित से जोडते हुए गाता है। यहाँ तक कि संदेह होने लगता है कि लोक राम की चरित गाथा गा रहा है अथवा स्वयं की। अवसर विशेष पर गाए जाने वाले इन गीतो को अगर ध्यान से देखें तो ऐसा लगता है मानो पात्रों के नाम भर रामकथा से संबंधित है बाकी जीवन की घटनाएं, जीवन की स्थितियां तो लोक की अपनी है, कहना गलत न होगा कि लोक को राम इतने अपने लगते हैं कि वह स्वयं को राम से जोड़ते, उनकी जीवन स्थितियों से स्वयं को भी बांधते चलना चाहता है। रामकथा के सभी पात्रों के जीवन को लोक ने पूरी तरह अपने जीवन- धरातल पर लाकर उसे अपने अनुकूल बनाकर ही उकेरा है । तभी तो राजा होने के बावजूद दशरथ को निःसंतान होने का ताना दासी से सुनवाया है, सीता को असहाय साधारण नारी के रूप में ही लोक ही सोच सकता है जो अपनी प्रसव की असहनीय पीड़ा, संतानोत्पत्ति के बाद की आवश्यकताओं की चिंता से ग्रसित होकर सोचती है– ' के मोरा आगे पीछे बइठी त बिपति गवाई हो'। सीता को संतान प्राप्ति के बाद कितनी कष्ट पूर्ण परिस्थितियों का सामना करना पड़ा होगा लोक इसकी कल्पना करना भी नहीं भूलता

' कुस के असन कुस डासन बनफल भोजन हो
सीता लकड़ी के कइली अंजोर संतति मुख देखेलीं हो।' लोकगीतों को गाने वाले स्त्री समाज में सीता के प्रति गहन ममत्व का भाव मिलता है,इस संवेदना के मूल में जो कारण है वह यही कि प्रत्येक स्त्री स्वयं में सीता को तथा

सीता में स्वयं को देखती महसूसती हैं सीता के दुख, क्षोभ, पीड़ा और अपमान से आहत मन; इन सबकी सजीव एवं मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति जड़ जमीन से जुड़ी ग्रामीण नारियों ने किया है लेकिन उतनी ही करुणा और दुखानुभूति वे राम के प्रति भी दर्शाना नहीं भूलती। यही कारण है कि एक ओर जहाँ वे सीता के मुख से यह कहवा देती है कि ' फाटल धरती समाइब अजोधिया न जाइब हो''वहीं लोक की उलाहना सुनते सहते और नितांत अकेलापन महसूसते राम के लिए वह दुखातर भी हो उठता है ' रामा तरर तरर चुवै आंस पटुकवन पोछईं हो''इसी प्रकार कैकेयी द्वारा दशरथ से दो वरदान मांगने के पीछे के कारण चाहे जो रहे हो उस कारण तक लोकमन पहुचने की चेष्टा नहीं करता उसने स्वयं एक कल्पना गढी-् ' अंगुरी में गड़ल खपचार' और ' गइली के रानी बेदन हरि लिहली'' लोक मानता है कि कैकेयी ने कभी दशरथ की पीड़ा हरी थी ,लेकिन यह कल्पना लोक ने नारी के सामर्थ्य के दायरे में रहकर ही की है। कहना गलत नहीं होगा कि लोककंठ की रामकथा ने न केवल रामचरित को देखने समझने की की नई दृष्टि दी है अपितु इस कथा के रूप प्रारूप में भी आमूल चूल परिवर्तन किया है।

सबसे बड़ी बात यह है कि रामकथा की व्यापकता लोकजीवन में इतनी विस्तृत है कि लोक अपने उत्सव, पर्व ,त्योहारों दुख ,सुख आशा, निराशा के क्षणों में भी जो गीत गाता है ;उसे किसी न किसी रूप में राम से जोड़ ही देता है चाहे उनका जीवन हो, उनका स्मरण हो और नहीं कुछ तो उनके नाम का सहारा लेकर एक नई कथा तो रच ही देता है

लोक न केवल गाते समय अपितु जम्हाते समय भी राम नाम की टेक ले ही लेता है। लोकमानस में राम के प्रति प्रेम अमाप्य है। राम लोक की भावना में भी हैं और उसकी कामना में भी। यही कारण है कि लोक राम कथा को गाते झूमते आत्मसात करते इतना भावविभोर हो जाता है कि वह स्वयं को राम से अभेद की स्थिति महसूस करने लगता है।

बात अगर अवधी भोजपुरी के लोकगीतों की करें तो इसके तन और मन यानि कला और भाव दोनों पक्षों में ही राम समाए हुए हैं इन गीतों की यति और गति राम से ही है इन लोकगीतों की हर विधा -होली ,कजरी, चैता ,झूमर, विवाह गीत, रोपनी, सोहनी, जतसार निर्गुण आदि सभी में राम की, राम के नाम की उपस्थिति देखी जा सकती है। चैता की लय पूर्ति में राम मानो प्राणतत्त्व हो'आहो रामा मानिक मोरा हेरइले हो रामा' कहना गलत न होगा कि राम नाम का आश्रय पाकर लोकगीतों की दुनिया, लोकसाहित्य की दुनिया उमंग, उत्साह और चेतना से भर गई है। लोकसाहित्य में स्वतंत्रता संग्राम से संबंधित भी पर्याप्त गीत है जिनको गाते समय लोक के मन में सीता और राम की छवि विद्यमान रही है तभी तो पूरी ऊर्जा के साथ कोई स्त्री अपने पति को प्रेरित करती हुई कहती है ' जाहूं जाहूं हे पिया देस के लड़इया

छोडि ़देहु अब कदरइया हो राम।

हम समझ सकते हैं कि लोक भावना राम की आराधिका है राम की मर्यादा उनका समदर्शी होना, परिवार के प्रति प्रतिबद्धता राज्य के प्रति निष्ठा सबकुछ को लोक ने अपने हृदय में समाहित किया है।राम और उनकी लोक मंगलकारी कथा शाश्वत रूप से लोकमानस में ऊर्जा स्फूरण कर उसे कर्मपथ पर अग्रसर करने, जीवन संग्राम में डटे रहने की अद्भुत क्षमता प्रदान करती हुई लोकजीवन के लिए चेतना, प्रेरणा और उत्साह का अनुपम भंडारण है।

डॉ. नीलम मिश्रा
हिंदी विभाग,
लालबाबा कॉलेज, बेलूर हावड़ा
पश्चिम बंगाल

कुमार अंबुज का कहानी संसार:अपने समय का अद्भुत आख्यान

यशवंत कुमार विश्वकर्मा

जूनियर रिसर्च फेलो
हिंदी-विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय

शोधसारः-

कुमार अंबुज की कहानियां अपने समय का आईना हैं और तेजी से मनुष्यता का नब्ज़ पकड़ी हुई हैं।इन कहानियों में भाषाई पैनापन के साथ संवेदना की मारक क्षमता भी मौजूद है।सबसे महत्त्वपूर्ण है कहानियों में अभिव्यक्त विषयों का चयन व उनकी प्रासंगिकता।ये कहानियां उन विषयों और उन चीजों के बारे में हैं,जिनपर आमतौर पर बात नहीं होती और उन्हें अपेक्षा के एक कोटर में सर्वसम्मति से धकेल दिया जाता है। एक 'हकले' आदमी के बारे में समाज में बात नहीं होती,न ही उस आदमी के बारे में जो और लोगों की तरह साबुन न बेचकर रत्ती या काव्यपंक्तियां बेचना चाहता है।उसे सर्वस्वीकृत रूप से 'सनकी' मान लिया जाता है।यह एक टैग है जो उसके सामाजिक अस्तित्व को चुनौती देता है और उस व्यक्ति को लगातार पीछे धकेलता जाता है।लोग बलात्कार के केस में बरी हो जाने की धूमधाम से पार्टियां दे रहे हैं।पुलिस द्वारा एक महिला को 'पागल' साबित करके पीटा जा रहा है और लोग खिलखिला रहे हैं।ये कहानियां एक जर्जर हो चुके समाज की ओर तेजी से बढ़ रहे जनसमुदाय को रेखांकित करती हैं,जिनका विश्लेषण उक्त लेख में किया गया है।

बीजशब्दः-

समानान्तर दुनिया,रुढ़ि,सामाजिक मान्यता,सामाजिक बहिष्करण,पितृसत्ता,स्त्री-स्वातंत्र्य,एलपीजी सुधार,विचारों की आनुवांशिकी,विकास,पूंजीवाद,सामूहिक विलुप्तीकरण,सह-अस्तित्व,भूमंडलीकरण,बाजारवाद, प्रतिरोध इत्यादि।

मूल आलेखः-

कुमार अंबुज समकालीन हिंदी कविता के ख्यातिलब्ध कवि-गद्यकार हैं।समय के विभिन्न अंतरालों पर इनके अब तक कुल छः कविता संग्रह प्रकाशित हुए हैं।किवाड़(१९९२),क्रूरता(१९९६),अनंतिम(१९९८), अतिक्रमण (२००२),अमीरी रेखा(२०११) एवं उपशीर्षक(२०२२) इनके काव्य संकलन हैं।किवाड़ संग्रह में संकलित कविता 'किवाड़' के लिए इन्हें १९९२ में हिंदी के प्रतिष्ठित 'भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार' से सम्मानित किया गया।लेखन की दुनिया में इनका शुरुआती रुझान कविता की तरफ ही अधिक रहा होगा।यही कारण है कि २००८ में जब इनका पहला कहानी-संग्रह भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन से 'इच्छाएं' शीर्षक से प्रकाशित हुआ तो उससे पहले इनके चार कविता-संग्रह प्रकाशित हो चुके थे।हालांकि कविता -लेखन के बीच में इनकी कहानियां और निबंधों की टीपें पत्र-पत्रिकाओं में छपती रही हैं।कविता के घर में गद्य इनके लिए किसी खिड़की की तरह रहा है,जिससे कविता की दुनिया से छूट पाकर ये बराबर एक दूसरी समानांतर दुनिया में विचरते रहे हैं।कविता जहां अपनी बनावट और बुनावट में एक कसावट और भाषायी अनुशासन चाहती है वहीं,गद्य में अनुशासन के साथ-साथ विस्तार की संभावना भी होती है,जहां कविता से कुछ अधिक कहा जा सकता है।कविता में पाठकीय सहयोग की अपेक्षा भी अधिक होती है कि पाठक उस स्तर तक पहुंचे जहां असल में कवि पहुंचाना चाहता है,भाषायी संयम के बावजूद।लेकिन गद्य में लेखक पास खुलकर खेलने का अवसर होता है,यदि पाठक जरा भी सहयोग करे तो वह उस विशेष गद्य के संदर्भ में लेखक के मानस के करीब होता है।

अभी तक कुमार अंबुज के गद्य की पांच किताबें प्रकाशित हुई हैं। जिनमें दो कहानी-संग्रह,दो निबंध-संग्रह और एक डायरी की किताब शामिल है। 'मनुष्य का अवकाश' तथा 'क्षीण संभावना की कौंध' इनके निबंध-संग्रह हैं।'थलचर'(२०१६) इनकी डायरी की पुस्तक

है।'इच्छाएं'(२००८) तथा 'मज़ाक़'(२०२३) इनके कहानी-संग्रह हैं।

२००८ में जब कुमार अंबुज की कहानी-संग्रह प्रकाशित हुई तो हिंदी दुनिया में हलचल मच गई।ये कहानियां अपनी समकालीन पारंपरिक कहानियों से बिलकुल अलग थीं,कथ्य में भी और शिल्प में भी।कई कहानियां केवल दृश्यों में चल रही हैं और उनमें कोई पात्र नहीं हैं। कई कहानियों में कोई स्पष्ट कथानक भी नहीं है।इन सबके बावजूद ये कहानियां मारक,प्रभावशाली और बेहद प्रासंगिक हैं।'विषयवस्तु' और 'संवेदना' इन कहानियों की सबसे बड़ी ताकत है।जिस तरह की विषयवस्तु का चयन लेखक अपनी कहानियों में करता है,वह अपने समय के गंभीर मुद्दे हैं,जिन पर आमतौर पर बात नहीं होती और उन्हें जीवन और परंपरा का हिस्सा मान लिया जाता है और एक समय के बाद वे रुढ़ि बन जाते हैं।जैसे-'इच्छाएं' संग्रह में सम्मिलित कहानी 'मां रसोई में रहती है' हर आम भारतीय परिवारों की कहानी है,लेकिन शायद ही इस मुद्दे पर कभी गंभीरता से सोचा गया,जितनी गंभीरता से इस कहानी में विचारा गया है।

शिखर आलोचक नामवर सिंह कुमार अंबुज की कहानियों के बारे में विचार करते हुए लिखते हैं-

'मैं कुमार अंबुज की कविताओं का तो प्रशंसक रहा हूं लेकिन मुझे दूर-दूर तक यह ख्याल नहीं था कि वे कहानी की दुनिया में भी कदम रखेंगे।कदम भी ऐसा कि कहानी की परिभाषा ही बदल दी है।ये चित्रों में कही गई कहानियां हैं।एक कैमरे की आंख हैं जो एक-एक बारीक दृश्य को देखती है।भाषा अंबुज की इन कहानियों की सबसे बड़ी ताकत है जो हर दृश्य के सूक्ष्म परतों को खोलती चली जाती है।'

स्पष्ट है कि कुमार अंबुज की कहानियां अपनी ढर्रे की कहानियों से संवेदना और शिल्प दोनों रूपों में अलग हैं।शिल्प की दृष्टि से देखें तो इन कहानियों की भाषा काफी समृद्ध और कसी हुई है।एक भी शब्द अन्यथा उपयोग किया गया नहीं दिखाई देता। बिम्ब और प्रतीकात्मकता इन कहानियों की बड़ी ताकत हैं। शब्द ऐसे गढ़े गये हैं कि वे दृश्य भी साथ-साथ उपस्थित करते चलते हैं।प्रतीकात्मकता ऐसी कि ये कहानियां हमेशा अपनी बुनावट से दूर तक यात्रा करती हैं।वह सबकुछ बयां कर देती हैं जो सीधे-सीधे भाषा के सहारे कहानी में नहीं कहा गया है।लयात्मकता भी इन कहानियों की शक्ति है।प्रत्येक पैराग्राफ एक-दूसरे से जुडा हुआ और पिछले को आगे बढाते हुए।कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि कुमार अंबुज का कहानी-संसार अपने समय को दस्तावेजीकृत करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम है,जिस पर गंभीरता से बात होनी चाहिए।

'हकला' कुमार अंबुज की एक जरुरी कहानी है।आमतौर पर जो लोग नैसर्गिक रूप से बोलते हुए हकलाते हैं,उन्हें इसी कटु शब्दावली से समाज में संबोधित किया जाता है,बिना एक भी बार यह सोचे कि अमुक व्यक्ति के हकलेपन में उसका कोई योगदान नहीं है और यह प्राकृतिक है।जो व्यक्ति हकला नहीं है,वह भी ऐसा हो सकता था।इस तरह के संबोधन अब सामाजिक मान्यता प्राप्त कर चुके हैं।लंगड़ा,लूला,काना,अंधा इस तरह के संबोधन समाज में अब आम हैं।ऐसे लोग,जो पहले से ही काफी संघर्षपूर्ण जीवन जी रहे हैं,ऐसे संबोधनों द्वारा उनका सार्वजनिक चिन्हीकरण उनके आत्मविश्वास और गरिमा को कमजोर करता है और इस बात को सामाजिक मान्यता दिलवाता है कि वे आम लोगों से पिछड़े हुए हैं।

यह कहानी आत्मकेंद्रित है।सूत्रधार ही कहानी का मुख्य पात्र है।वह कहता है कि हकलाने के कारण कई बार खुद उसके पिता द्वारा उसकी पिटाई की गयी और स्कूलों में उसके अध्यापकों द्वारा उसका मज़ाक़ बनाया गया।अपने हकलेनप की वजह से जब अंत में उसका सामाजिक बहिष्करण कर दिया गया तो वह एकांत के गर्त में चला गया,जो उसके लिए लाभकारी ही रहा।वह पक्षियों से बात करने लगा और कलाकृतियों का सान्निध्य पाने लगा।

'पालतू पशुओं के प्रति मेरा प्रेम भी इसी हकलाहट की देन समझा जा सकता है।गाय के बछड़े से मेरा पहला प्रेम हुआ,तब मैं दस-ग्यारह साल का था।उससे मेरा बहुत वार्तालाप रहा। मैं उसके गले से लिपट जाता और वह अपनी गर्दन का पूरा भार मेरे कन्धे पर छोड़ देता। फिर एक तोते ने मुझे जीवन दिया...'

यहीं से उसके जीवन की नयी कोंपलें फूटीं और उसे भान हुआ कि असली हकला वो नहीं है बल्कि दूसरे लोग हैं। हकले वे हैं,जो ग़लत होता हुआ देखते हैं और विरोध नहीं

करते और अंत तक चुप्पी साधे रहते हैं। हकले वे हैं जिनकी जबान अपने झूठ के धरातल पर लड़खड़ा जाती है और वे न चाहते हुए भी हकलाने लगते हैं।

यह कहानी समाज के असली हकलों की शिनाख़्त करने के साथ-साथ एक गंभीर सामाजिक बुराई की ओर ध्यान केन्द्रित कराती है और उस तबके के दुखों के बारे में भी सोचने के लिए विवश करती है,जो कभी भी हमारी प्राथमिकता में नहीं रहे हैं।

'मां रसोई में रहती है' कुमार अंबुज की एक और महत्त्वपूर्ण कहानी है।इस कहानी में मुख्यतः दो पात्र हैं।सूत्रधार और उसकी मां।सूत्रधार का कहना है कि उसकी मां अपनी पारिवारिक जिम्मेदारियों के निर्वहन के बोझ तले हमेशा रसोई में ही रहा करती हैं।उनका जीवन 'रसोई' का पर्यायवाची हो गया है।वह जब भी देखता है,रात के बारह बजे,दो बजे,तीन बजे वह अपनी मां को हमेशा रसोई में ही पाता है।कभी दाल बीनते हुए तो कभी मसालों के डब्बे ठीक करते हुए।यहां तक कि जब वो रसोई का काम नहीं भी कर रही होती हैं,तब भी रसोई में ही रहती हैं।कभी अखबार पढ़ते हुए और कभी झपकी लेते हुए।जब वह ऊब जाती हैं तब भी रसोई से बाहर नहीं निकलतीं और रसोई की छोटी सी खिड़की से आकाश निहारती हैं।इस तरह उनकी पूरी दिनचर्या रसोई में ही संपन्न होती है।

'एक रात देखा कि बारह बजे,रसोई की दीवार पर लगे कैलेंडर पर दूध का हिसाब लिख रही थी।पूछने पर जवाब दिया कि रोज लिखती हूं कितना दूध लिया।आज भूल गई थी,अभी याद आया तो लिख रही हूं।कभी गुस्सा जताती,'मैं जैसे ही रात में किसी काम से उठती हूं,तू पीछे-पीछे चला आता है'।'

यह कहानी हर व्यक्ति को अपने घर-परिवार की रसोई में रात-दिन खटती स्त्रियों के बारे में सोचने के लिए मजबूर करती है।पितृसत्तात्मक समाज ने जिस तरीके से स्त्रियों के जीवन को रसोई में कैद कर दिया है,उसके रहस्योद्घाटन की दिशा में यह कहानी एक जरुरी हस्तक्षेप है।आमतौर पर इस तरह की बातें हमारे आदतों में शुमार हो चुकी हैं और हमें लगता है कि हमारी मां,बहन या बहू अगर दिन-रात रसोई में हैं तो इसमें समस्या क्या है।हमारे आसपास हर जगह यही हो रहा है।पर यह कहानी इस धारणा को काफी हद तक तोड़ती है और स्त्री-स्वातंत्र्य की दिशा में जरुरी पहल करती है।

कुमार अंबुज की ही एक कविता 'खाना बनाती स्त्रियां' भी इस कहानी की संवेदना से मेल खाती है-

'आपने उन्हें सुंदर कहा तो उन्होंने खाना बनाया
और डायन कहा तब भी
बच्चे को गर्भ में रखकर उन्होंने खाना बनाया
फिर बच्चे को गोद में लेकर
उन्होंने अपने सपनों के ठीक बीच में खाना बनाया
तुम्हारे सपनों में भी वे बनाती रहीं खाना
पहले तन्वंगी थीं तो खाना बनाया
फिर बेडौल होकर
वे समुद्रों से नहाकर लौटीं तो खाना बनाया
सितारों को छूकर आईं तब भी
उन्होंने कई बार सिर्फ एक आलू एक प्याज से खाना बनाया
और कितनी ही बार सिर्फ अपने सब्र से
दुखती कमर में चढ़ते बुखार में
बाहर के तूफान में
भीतर की बाढ़ में उन्होंने खाना बनाया...'

'अप्रत्याशित रोग की कथा' कुमार अंबुज की एक महत्त्वपूर्ण कहानी है,जो एलपीजी सुधारों के बाद तेजी से क्षय हो रही मनुष्यता के बारे में है,जिसके बचे रहने की संभावना कम-से-कम इस देश में सर्वाधिक थी।यह कहानी भी आत्मकेंद्रित है,जिसमें सूत्रधार ही कहानी का मुख्य पात्र है और अपनी बेचैनी और परेशानियों की कथा कहता है।यह कहानी कुल सात भागों में पृथक है जिसमें वह क्रमशः अपने सात अप्रत्याशित रोगों के बारे में बात करता है।

वह दफ्तर के लिए साइकिल से सड़क पर जा रहा होता है और भारी ट्रैफिक की वजह से उसे एक जगह रुक जाना पड़ता है।उसने देखा वहां से एक सुंदर चट्टान दिख रही थी और उसने अपने सौन्दर्यबोध से भरे हुए मन में सोचा कि अगर ट्रैफिक नहीं भी होता तब भी पूरी भीड़ को केवल इस चट्टान को देखने के लिए रुक जाना चाहिए था,लेकिन अंत में खुद पर भी खीझता है कि वह भी तो पिछले ग्यारह सालों से

नहीं रुक रहा है।लेकिन अचानक से उसी चट्टान की परछाईं में सूत्रधार को

अपने पड़ोसी वर्मा जी साइकिल से गिरे हुए मिलते हैं और उनके सिर से खून बह रहा था।उनकी साइकिल की रिम मुड़ चुकी थी।अपने दफ्तर की चिंताओं को भूलकर लेखक रुकता है और वर्माजी की मदद करता है,जबकि ट्रैफिक खुलते ही पूरी भीड़ तेजी से निकल जाती है।

उस समय में जब सड़क पर औंधे मुंह लेटे,चोट खाए व्यक्ति के लिए भी किसी के मन में जरा भी करुणा नहीं रह गई है, सूत्रधार अपने भीतर झांककर अपनी करुणा की थैली को सुरक्षित पाता है,जो उसे अप्रत्याशित लगता है।

इसी तरह एक दूसरी घटना में पुलिसवाले सड़क पर एक पागल सी दिखनेवाली महिला को पीट रहे थे।उन्होने उसे इतना पीटा की उसका चेहरा चुड़ैल जैसा हो गया और सारे बाल बिखर गये।काफी दिनों बाद तक यह घटना सूत्रधार को परेशान करती रही और उसके मन-मस्तिष्क पर छाई रही।कुछ दिनों बाद जब उसके माता-पिता उसके घर आए तो उसने यह घटना उनसे बताई।उसकी मां,इस बात को याद करके रोने लगीं कि उनकी भी एक बहन पागल थी और काफी समय पहले घर छोड़ चुकी थी,पर सूत्रधार अपनी मां को यह भरोसा दिलाता है कि वो औरत उसकी मौसी नहीं थीं।पर उसके पिता इस घटना में कोई भी ऐसी चीज नहीं पाते हैं जिसपर अचरज किया जाय।जो अप्रत्याशित हो।वे महिला अपराधियों के कई किस्से सुनाते हैं,जिसे सुनकर सूत्रधार को भी एकबारगी लगा कि वो सही कह रहे हैं,इस घटना में क्या ही अप्रत्याशित है!

हम उस समाज की तरफ तेजी से बढ़ रहे हैं जहां खुलेआम सड़क पर किसी महिला को पीटा जाना अब किसी को परेशान नहीं करता।'फर्क नहीं पड़ता' आज के समय का चर्चित मुहावरा बनता जा रहा है।लोगों को फर्क नहीं पड़ता कि सड़क पर एक आदमी औंधे मुंह गिरा है और उसके माथे से खून की बौछार बह रही है।लोग अपनी महत्वाकांक्षा की यात्रा में इतने मशगूल है कि भूल गये हैं कि उन्हें भी एक दिन मरना है और उन्हें भी कभी किसी से मदद की जरूरत पड़ सकती है।

इसी कहानी में एक अन्य घटना है जिसमें एक परिचित व्यक्ति सूत्रधार को सपरिवार पार्टी देता है।पर पार्टी में जाने के बाद उसे पता चलता है कि यह पार्टी इसलिए दी जा रही है कि अमुक व्यक्ति का बेटा रिश्वत के मामले में बरी हो गया है,जबकि असल में वह अपराधी था।सूत्रधार को पार्टी से आने के बाद फूड प्वाइजनिंग होती हैं और पार्टी में जाने के लिए पश्चाताप होता है।अपने समय और समाज को लेकर पश्चाताप होता है,जब लोग अपराधी होने के बावजूद बलात्कार के केस में छूट जाने की पार्टी देते हैं।

कुमार अंबुज की यह कहानी भीतर तक बेधती है और अपने भीतर झांकने के लिए विवश करती है कि हमें क्या होना चाहिए था और हम निरंतर क्या होते जा रहे हैं।यह कहानी बरबस मंगलेश डबराल की कविता 'छुओ' की याद दिलाती है-

'इस तरह मत छुओ जैसे भगवान महंत मठाधीश भक्त चेले

एक दूसरे के सर और पैर छूते हैं
बल्कि ऐसे छुओ जैसे
लंबी घासें चाँद-तारों को छूने-छूने को होती हैं
अपने भीतर जाओ और एक नमी को छुओ
देखो वह बची हुई है या नहीं इस निर्मम समय में।'

इसी क्रम में 'सनक' कुमार अंबुज की एक जरुरी कहानी है।यह कहानी एक ऐसे आदमी के बारे में जो दूसरे सेल्समैन की तरह जीवनयापन के लिए विश्वकोश,साबुन और टूथब्रश तो बेचता ही है,पर उसे असल आनन्द तब प्राप्त होता है जब वह अपने मन की कोई चीज बेच पाता है और फिलहाल वह अपने मन की चीज 'रत्ती' बेचने का काम कर रहा है।इससे पहले वह अपने मन की चीजों में खड़ा नमक,गुलमोहर और नीम के पौधे और कांसे के कटोरे बेच चुका है और उसकी भावी योजना में जुगनू बेचना और काव्य पंक्तियां बेचना शामिल हैं।

कहानी में 'सनक' शब्द प्रतीकात्मक रूप से उसी व्यक्ति की उस मानसिकता के बारे में प्रयुक्त हुआ है जिससे प्रेरित होकर वह अपने मन लायक चीजें बेचना चाहता है।इस हद तक वह इस काम में मशगूल है कि वह बरबाद हो चुका है,इससे बावजूद उसका यह जुनून कायम है।वह कहता है-

'आप अपने मन का कोई भी काम करें,बरबाद तो हो ही जाएंगे।यदि आप बरबाद नहीं हो रहे हैं तो सच मानिए कि आप अपने मन का काम कर ही नहीं रहे हैं।....आदमी अपनी सनक के कारण ही कुछ करता रहता है।उसमें सनक न हो तो वह जानवर जैसा हो जाएगा और बेहद एक-सी,उबाऊ जिंदगी जिएगा।...मैं वे चीजें बेचूंगा जो आदमी की तरक्की की पहचान रही हैं और आज भी जिनका,हमारे कुछ हिस्सों में बचा रहना ठीक रहेगा।...अन्य जैविक चीजों की तरह वस्तुओं की,विचारों की भी आनुवांशिकी होती है।इसकी रक्षा की जानी चाहिए।'

यह कहानी परंरपराओं और उन प्रथाओं को बचा ले जाने के बारे में है जो विकास की पूंजीवादी परिभाषाओं की बाढ़ में गुम हो रही हैं।उन चीजों को बचा ले जाने के जाने के बारे में है,जिनसे एक समय पर हमारा जीवन गुलज़ार था और अब वे चीजें खो रही हैं।जैसे-जुगनू खोते जा रहे हैं और पौधों की कई प्रजातियां भी गुम होती जा रही हैं।सामूहिक विलुप्तीकरण का यह युग खुद हमारे लिए भी ठीक नहीं है,क्योंकि हमारे जीवन को संचालित करने में भी तमाम तरीकों से इन चीजों का योगदान रहा है,सहअस्तित्वपूर्ण समाज की दृष्टि से तो यह खतरनाक है ही।

इसी क्रम में एक और कहानी आती है 'एक दिन मन्ना डे'।यह कहानी उस समाज के बारे में है जो संगीत से बेहद प्यार करता है और केवल मन्ना डे के आने की सूचना पाकर ऑडिटोरियम में भीड़ लगा लेता है।यह समाज आज के समाज से पृथक है जो केवल नेताओं की रैलियों में जयकारे लगाने के उद्देश्य से इकट्ठा होता है।यह कहानी एक ऐसे व्यक्ति के बारे में भी है जो इस ख्याल से परेशान है कि एक दिन मन्ना डे नहीं रहेंगे।इस ख्याल से वह इस हद तक परेशान है कि नींद से चौंककर उठ जाता है और कभी-कभी अचानक से रोने लगता है।

एक समाज के या एक व्यक्ति के मन में एक सच्चे कलाकार के प्रति इतना लगाव और श्रद्धा हो सकती है कि वह एक दिन उसके न रहने के ख्याल भर से रोने लगे,अचंभित करता है।खासकर के उस समाज में जहां कलाकारों से ज्यादा धन और यश,झूठे और मक्कार लोग अर्जित कर रहे हों।वह आदमी इस हद तक मन्ना डे से प्रभावित है कि कहता है-

'सच मानिए जरूरत पड़ने पर मन्ना डे को मैं अपना खून,अपनी किडनी,अपना लिवर तक दे सकता हूं।लेकिन मन्ना डे को यह बात मालूम होनी चाहिए ताकि वक्त-जरूरत आने पर वे किसी तरह का संकोच न करें।मुझे लगता है कि मैं मर जाऊं,बल्कि हममें से बहुत से लोग मर जाएं और मन्ना डे बच जाएं तो सब ठीक हो जाएगा।'

यह कहानी एक ऐसे समाज को निर्मित करने की कोशिश है,जो संवेदनशील मनुष्यों से बनी है।जिसमें कला के प्रति सम्मान का भाव है,क्योंकि अंततः कला ही जीवन का उद्धार करने वाली और मनुष्यता को बचा ले जाने में सक्षम होगी।

'मैं तुम्हारा कोई काम नहीं करना चाहता' लेखक की एक जरुरी रचना है,जो पूंजीवादी ढोंग से निर्मित समाज का पर्दाफाश करने में सक्षम है और स्वयं के साथ भी न्याय करने की बात को तवज्जो देती है।एक आदमी,जो किसी कंपनी या फर्म में काम करता है और खुद को,एक तरह से एक तयशुदा वेतन पर बेच देता है,अंततः क्या अर्जित कर पाता है?उम्र के एक ढलान पर जब वह कार्यमुक्त होता है तो गठिया या तपेदिक से तो वह ग्रसित होता ही है साथ ही साथ उसे यह भी भान होता है कि उसने जीवन में अपना तो कोई काम किया ही नहीं,खुद को जाना ही नहीं।जैसे इस कहानी में सूत्रधार बांसुरी बजाने के काम को अपना काम कहते हैं,जिसमें उन्हें असल में आनन्द की अनुभूति होती है-

'एक बार मेरे दोस्त ने तीन दिन की मेहनत से पुराने कपड़ों का सुंदर भालू बनाया तो तुम रीझ गये और बोले कि अब पांच सौ भालू हर महीने बनाओ।मेरे चाचा ने पतंग बनाई तो तुमने कहा यही उनका काम है बशर्ते वे तुम्हे रोज एक सौ पतंग बनाकर दें कि जिंदा रहना है तो कम से कम इतना काम करना ही होगा।इस तरह तुमने मेरे दोस्त से,मेरे चाचा से भालू बनाने का,पतंग बनाने का सुख और आनन्द छीन लिया।'

यह कहानी पूंजीवाद के उस सनक के बारे में है जो हर व्यक्ति को या तो उत्पादन या तो उपभोक्ता में तब्दील कर देना चाहती है।हर चीज को उत्पादन का साधन बना देना चाहती है,भले ही वह जैविक हो और उसमें जिजीविषा हो और उसकी इच्छा साधन बनने में न हो।कुल मिलाकर,यह कहानी विकास के झंझावात में मनुष्यता को बचा लेने के बारे

में हैं।यह कहानी कवि ज्ञानेन्द्रपति की कविता 'टेडी बियर में बचे हुए भालू' की बरबस याद दिलाती है-

'बच्चियां जब
अपने टेडी बियर को छाती से चिपकाए
दुलार रही होंगी,
छीज रहे भारतीय जंगलों में
और खोजी दलों और अनुसंधान-स्टेशनों के
कचरालय बने जा रहे ध्रुवीय प्रदेशों में
बेमौत मारे जा रहे होंगे भालू
काले भालू और भूरे भालू
बग़ैर किसी रंगभेद के

कौन मार रहा होगा उन्हे
अपने टेडी बियर को छाती से लगाए
सो जाने वाली बच्चियां
क्या कभी सपने में भी जान सकेंगी इसे?'

निष्कर्षतः ,कुमार अंबुज की कहानियां उनकी कविताओं की तरह ही संवेदना के तह तक उतरती हैं और समय के साथ कुंद होते जा रहे हमारे मानस पटल को एक रास्ता दिखाती हुई जान पड़ती हैं।यह कहानियां इस तरह हमारे सामने आती हैं कि हमें बेचैन करने के साथ-साथ अपने समय और समाज को लेकर हमें अगाह भी करती हैं।जिस तरह के शिल्प में ये कहानियां पगी हुई हैं,उनका कोई सानी नहीं है।अच्छा तो तब होगा जब इन कहानियों में दिखाए गये रास्ते की परख की जाय और सही पाए जाने पर उन पर चला भी जाय ताकि क्षय होती मनुष्यता के इस समय में

हम अपनी भावी पीढ़ियों तक आदमियत के कुछेक अवशेष स्थानांतरित कर पाएं।प्राख्यात आलोचक 'मधुरेश' की राय भी कुमार अंबुज की कहानियों के बारे में इसी तरह की है-

'इन कहानियों की रेंज बहुत व्यापक है,प्रायः ही अपने समय,समाज और जीवन का बहुत कुछ घेरते हुए। छोटे-छोटे उदाहरण या ब्यौरों से कुमार अंबुज किस्सागोई की कला को जैसे एक नया आयाम देते हैं।इन्ही छोटी-छोटी

चीजों से वे समाज और राष्ट्र की बड़ी चिंता से जुड़ते हैं,यहीं से वे भूमंडलीकरण और बाजारवाद के बढ़ते संक्रमण के प्रतिवाद और प्रतिरोध के सूत्र उठाते हैं।ये प्रच्छन्न इच्छाएं ही वस्तुतः एक दुनिया के प्रतिवाद के साथ दूसरी वैकल्पिक दुनिया का संकेत देती है।ये गहरे में जाकर मनुष्य को मानवीय बनाने और बने रहने के उद्यम के अंग हैं।कुमार अंबुज की ये कहानियां बार-बार पढ़े जाने को उकसाएंगी।'

संदर्भ सूचीः-

१.अंबुज,कुमार,इच्छाएं,नई दिल्ली,राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण,२०१५
२.अंबुज,कुमार,मज़ाक़,नई दिल्ली,राजपाल एण्ड सन्स,प्रथम संस्करण,२०२३
३.अंबुज,कुमार,प्रतिनिधि कविताएं,राजकमल प्रकाशन,प्रथम संस्करण,२०१४
४.अंबुज,कुमार,किवाड़,राधाकृष्ण प्रकाशन,प्रथम संस्करण,१९९२
५.अंबुज,कुमार,उपशीर्षक,राधाकृष्ण प्रकाशन,प्रथम संस्करण,२०२२
६.अंबुज,कुमार,थलचर,राधाकृष्ण प्रकाशन,प्रथम संस्करण,२०१६
७.डबराल, मंगलेश, प्रतिनिधि कविताएं,राजकमल प्रकाशन,प्रथम संस्करण,२०१७
८.ज्ञानेन्द्रपति,कवि ने कहा,किताबघर प्रकाशन,प्रथम संस्करण,२००७
९.सिंह,नामवर,कहानीःनयी कहानी,लोकभारती प्रकाशन,प्रथम संस्करण,१९६४

जूनियर रिसर्च फेलो
हिंदी-विभाग,
दिल्ली विश्वविद्यालय

हिन्दी उपन्यासों में चित्रित अस्मिता और परिवार के संकट

मनीष कुमार शुक्ला

शोधार्थी,
हिन्दी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज
ईमेल-maneeshau90@gmail. com
मो.-८८४००६१८९०

हिंदी साहित्य की महत्वपूर्ण विद्या के रूप में उपन्यास को माना जाता है। यह सामाजिक संकटों और समस्याओं को चित्रित करने के लिए बेहतरीन विधा है, जिसमें सभी समस्याएं लेखक आसानी के साथ उठा सकता है। कविता में यह चित्रित जरूर होता है किंतु उसमें विस्तार की संभावनाएं कम रहती हैं। हिंदी उपन्यासों में समस्या तथा उसके समाधान की ओर लेखक ठीक तरह से इशारा कर सकता है। भारतेंदु काल से लेकर आज तक हिंदी गद्य साहित्य के इतिहास में उपन्यास अपनी अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम रहा है। हिंदी उपन्यासों में आज का लेखक वर्तमान समय की समस्याओं और पीड़ाओं को ठीक तरह से अभिव्यक्त दे पाता है। कुछ हिंदी उपन्यासों के माध्यम से इस आलेख में ऐसी ही सामाजिक विसंगतियों को चित्रित करने का प्रयास किया गया है।

'यह आम रास्ता नहीं' उपन्यास की नायिका मृदु बहुत महत्वाकांक्षी है वह जीवन में कुछ करना चाहती है इसके लिए उसने एक राजनीतिक पार्टी ज्वाइन करती है। पर मृदु के पति को यह सब अच्छा नहीं लगता वह कहते हैं अब से तुम्हारा बाहर आना-जाना एकदम से बंद। कोई पार्टी- फार्टी मीटिंग वगैरह में जाने की जरूरत नहीं...... समझी तो मृदु कहती , 'तो यहां रह कर क्या करूं मैं? कितनी दफे आप से कह चुकी, घर में बंद रहकर नहीं जी सकती मैं। घुटन होती है यहां। इस पिंजरे में कैद होकर मैं सरवाइव नहीं कर सकती।'१ मृदु अपनी पहचान खुद अपनी मेहनत से बनाना चाहती है इसके लिए उसे अपने पति के बातों को टालना पड़ा।' और सिर्फ तितली' उपन्यास की नायिका तान्या शादी करके एक घर में कैद नहीं होना चाहती थी इसके लिए उसने भागलपुर सेँ ्किर लिया और अपने माता-पिता से असत्य बोला कि मैं दिल्ली एमए की डिग्री लेने जा रही हूं। वह दिल्ली में ही रह कर अपने को सिद्ध करना चाहती थी। वह जब दिल्ली पहुंची तो अपनी मित्र अंगिका से कहती है मैं दिल्ली लौटने के लिए नहीं आई हूं, 'नौकरी और बस नौकरी खोजना खूब पैसा कमाना और अपनी मर्जी से जीना।'२ तान्या, दीपांकर मे देश के लिए आंदोलन वह देश भक्ति को देखकर उसके प्रति आकर्षित होती है और दोनों बिना शादी के इन रिलेशनशिप में रहने लगते हैं। तान्या को बच्चा पैदा करना स्वीकार नहीं था। कुछ दिन बाद दीपांकर का देश के प्रति मोहभंग व अपने देश अमेरिका जाने लगा वह तान्या को भी ले जाना चाहता था अपनी शर्तों पर पर तान्या को अपनी अस्मिता बचाए रखने के लिए एक एसमस के जरिए दीपांकर से नाता तोड़ लिया । इस प्रकार तान्या अपनी जीवन अपनी शर्तों पर जीना चाहती है। 'कठगुलाब' उपन्यास के पात्रा नर्मदा को जिंदगी के आखिरी दिनों में अकेलापन सताने लगता है। नीरजा व प्रदीप नर्मदा के साथ रहते थे उसके सामने देखते- देखते ही बड़े हुए थे। पर बड़े होने पर भी अपनी- अपनी तरीके से जीना चाहते हैं उसी के शब्दों में, 'सारी उम्र तुम्हारी पिल्लो को पालते काट दी। अरे, मैं ना होती तो कर सके थे, नीरजा -प्रदीप, इत्ती ऊंची पढ़ाई, बन सके थे,ये बड़े-बड़े बंगले कारखाने? कौन राध- राध के खिलाता उन्हें ताकत देने वाला खाना और कौन करता रात- दिन तुम्हारे घर की पहरेदारी।'३ 'एक जमीन अपनी'

की पात्रा अंकिता के पति सुधांशु को उसका पढ़ना- लिखना अच्छा नहीं लगता था यह अंकिता के अहम व अस्तित्व पर चोट थी। सुधांशु के शब्दों में, 'यही तो तेरा असली रूप है...... इतिहास पढ़ाना चाहती है..... प्रोफ़ेसर बनना चाहती है, तू कभी नहीं बन सकेगी..... कभी नहीं....।'४ वह अंकिता की कविताओं की कॉपी के कई टुकड़े कर कूड़ेदान में फेंक देता है। यह सब देखकर अंकिता को अपने अस्तित्व पर चोट दिखने लगा। वह अपने पहचान को संजोए रखने के लिए सुधांशु से अलग हो जाती है। 'छिन्नमस्ता' उपन्यास के पात्र प्रिया अग्रवाल हाउस बहू है, उसे धन दौलत की कोई कमी नहीं है। पर उसके पति और परिवार के सदस्यों की उपेक्षा पूर्ण उसके प्रति व्यवहार ने उसे विद्रोही बना दिया है। पहले तो वह अपने आत्मविश्वास की कमी को दूर करने के लिए व्यवसाय करती है। लेकिन जब उसका विदेशों में व्यवसाय के चलते आना जाना हो गया तो उसके पति नरेंद्र ने उसे हाउसवाइफ बने रहने को कहा तो उसने अपने अस्तित्व बोध को स्पष्ट करते हुए कहा, 'नरेंद्र में पैसों के लिए काम नहीं करती...... अपनी आइडेंटिटी व्यक्तित्व के विकास के लिए...... एक साधारण औरत को साधारण तरीके से भी जीने का अधिकार नहीं? काम की दुनिया मुझे ताकत देती है काम के कारण मेरा आत्मविश्वास बढ़ता है नरेंद्र तुम हर समय मेरे आत्मविश्वास को क्यों तोड़ते हो?'५ परिस्थितियों के सामने प्रिया ना तो झुकती है और ना हार मानती है। वह समाज में पुरुषों से कंधे से कंधा मिलाकर रहती है और अपनी अस्मिता की रक्षा करती है। उसके साथ उसका अकेलापन है यही अकेलापन उसके जीवन के अर्थ को समझाता है। उसी के शब्दों में, 'कैसे मैंने अपने आप को बचाया है, अपने मूल्य को जीवन में संजोया है। हां, टूटी हूं, बार-बार टूटी हूँ...... पर कहीं तो चोट के निशान नहीं...... दुनिया के पैरों तले रौंदी गई, पर मैं मिट्टी के लौंदे में परिवर्तित नहीं हो पाई हूं। अड़तालीस की उम्र में एक पूरी- की- पूरी साबुत औरत हूं, जो जिंदगी को झेल नहीं रही बल्कि हंसते हुए जी रही है।' इस तरह प्रिया को अपने अपने आप गर्व व उपलब्धियों पर नाज होता है। 'मुझे चांद चाहिए' उपन्यास की पात्रा वर्षा बचपन से निर्भीक, निडर वह अपने स्मिता के प्रति सजग रहती थी। वह नहीं चाहती कि जैसी जिंदगी उसके परिवार वाले जी रहे हैं उसकी भी वही जिंदगी हो। वह अपने जन्म व अपने जीवन के उद्देश्य के बारे में हमेशा तर्क- वितर्क करती रहती। उसने हाईस्कूल का फार्म भरते समय अपना नाम 'वर्षा वशिष्ट' कर लिया। घर वाले को पूछने पर, 'अगर हाई स्कूल में नहीं बदलती, तो आगे चलकर बहुत सारी मुश्किल होती। अखबार में छपवाना पड़ता।'६ वर्षा की बातें सुनकर पिताजी सपने में भी नहीं सोचा होगा कि यह बित्ते भर की छोकरी का नाम सौंदर्य बोधीय विश्लेषण करके उनकी हथेली पर रख देगी।

'आवा' उपन्यास की पात्रा सुनंदा सुहैल से प्रेम करती थी। दोनों की शादी में घर की भी रजामंदी थी ।पर सुहैल चाहता था कि वह इस्लाम धर्म कबूल कर ले। पर सुनन्दा नहीं मानती कहती प्यार में ऐसा कोई शर्त नहीं था। हम शादी धर्म से नहीं व्यक्ति से करेंगे। वह सुहैल को कोर्ट मैरिज का सुधार सुझाव दी पर सुहैल ने टाल दिया। नमिता कहती सुहैल को तुम प्यार करती थी, तो इस्लाम कबूल ने में क्या दिक्कत थी। सुनंदा के शब्दों में, 'स्वयं के सच को ढूंढ लेना, उससे सामना करना जितना दुसाध्य है उससे कम दुसाध्य नहीं उसे औरों के समक्ष स्वीकार करना । क्योंकि अपने अंगों को कोई अन्य निर्वस्त्र नहीं करता, हम स्वयं करते हैं।'७ सुनंदा अपनी अस्मिता को बचाए रखने के लिए इस्लाम धर्म स्वीकार करने से मना कर दिया।

'सलाम आखरी उपन्यास' में बनर्जी मदनलाल एंड सुरेका फर्म मे एक कर्मचारी हैं वे वहां पर नौकरी करना पसंद नहीं करते क्योंकि वहां पर कर्मचारियों को कोई सम्मान नहीं दिया जाता। वे सुकीर्ति से फर्म के बारे में कहते हैं, 'लेकिन बकरे की मां आखिर कब तक खैर मनाएगी। ऑक्सीजन पर चल रही यह फर्म कभी भी दम तोड़ सकती है। यदि आज के बाद भी बाबू ने फाटका खेलना बंद नहीं किया तो मैं गांव चला जाऊंगा....... साली कोई जिंदगी है, दिन- भर खड़े रहो, मैनेजर की जी- हुजूरी में, ऊपर से सीधे मुंह बात ना करें।थू ऐसी जिंदगी पर ।'८ 'विजन' उपन्यास की पात्रा डॉ नेहा पित्तसत्तात्मक व्यवस्था के कारण अपने आप को उपेक्षित महसूस करती है। पति व ससुर के व्यवहार से उसे बार आहत महसूस होती है। लेखिका उसके मनोदशा का वर्णन करती है- वह भी बेआवाज रोना चाहती है, दिल हुक का खजाना हो गया है। एक सपने को दफन करना है। उस

सपने को जिसे सारी मुसीबतों, सारे विरोधो के बावजूद रखा था और आकांक्षा की किरणों में सहेज कर देखा था....... 'मालिकों की पदचाप पीछे- पीछे आती थी तो मैंने खुद से पूछा था- मेरे अधिकार में क्या है? मैं अनुज्ञा ढोने वाली दासी....... सोचते ही सारा कुछ खंड- खंड होता हुआ दिखता।'९ इसी उपन्यास की एक अन्य पात्रा डॉ आभा है जब उन्हें अपने पति द्वारा अपने व्यक्तित्व अस्मिता संकट का बोध होता है तो वे पुरुष प्रवृति के विरोध में अपने आप को खड़ा कर देती हैं। वह किसी भी कीमत पर पृत्तसत्ता का साथ नहीं देती है।

जिस प्रकार महानगरों में संयुक्त परिवार के बजाय एकल परिवार की ओर बढ़ रहे हैं उसी प्रकार महानगरों में वैवाहिक स्थिति में भी बदलाव आता नजर आता है। अब, प्रेम बहु विवाह, परंपरागत विवाह सब मिश्रित रूप में नजर आते हैं। इसके अलावा महानगरों में अविवाहित पति या पत्नी एक दूसरे से अलग होकर रहना तथा बिना विवाह के साथ रहने (लिव इन रिलेशनशिप) की प्रवृतियां ज्यादा देखने को मिलती हैं। महानगरों में स्त्रियों की स्वालंबन व आर्थिक स्थिति से मजबूती ने विवाह संस्था को अत्यधिक प्रभावित प्रभावित किया है।पृत्तसत्ता समाज में वे पुरुषों के साथ बराबर स्तर पर जीना चाहती है। स्त्रियों की आर्थिक मजबूती ने स्त्रियों को पत्नी रूप में बधे रहने की विवसता को समाप्त कर दिया है ।'छिन्नमस्ता ' की प्रिया अपने पति से अलग रहने लगती है क्योंकि उसके पति नरेंद्र को उसकी आर्थिक मजबूती व स्वालंबन अच्छा नहीं लगता वह चाहता है कि प्रिया हाउसवाइफ बन कर रहे। पर प्रिया कहती है, 'तुम्हारी यह दोहरे मापदंड, अपने अहम को आत्म सम्मान की संज्ञा देना और मेरे हमको अहंकार कहना? तुम कहते हो कि मुझे सब कुछ चाहिए..... घर, परिवार, पैसा, समाज में स्थान...... क्या तुम नहीं चाहते सब कुछ? मैं यह भी समझती हूं नरेंद्र कि सब कुछ किसी को नहीं मिलता, पर मेरा सब कुछ चाहना तुम्हें इतना गलत क्यों लगता है?'९ 'और सिर्फ तितली' उपन्यास की पात्रता तान्या, दीपांकर के साथ बिना विवाह के साथ (लिव इन रिलेशनशिप) में रहना पसंद करती है। तान्या संबंधों में बधकर कोई बच्चा नहीं पैदा करना चाहती है ।प्रिया बिना शादी के रहने के बारे में दीपांकर से कहती है, 'इससे बेहतर क्या होगा कि जब तक पटे तो साथ रहो, वरना अपना-अपना रास्ता पकड़ लो। शादी के बाद अलग होना भी मुश्किलों से भरा है।'१०

पहले के समय में विवाह होने के बाद इसे ताउम्र निभाया जाता था ।तलाक के मामले सामने नहीं आते थे। यह विवाह परिवार के बड़े बुजुर्गों द्वारा होता था। महानगर की बदलती परिस्थिति ने घर के अभिभावक यानी माता-पिता ने भी प्रेम विवाह को मान्यता देनी शुरू कर दी है। बदलती परिस्थितियों में विवाह चाहे परंपरागत हो या प्रेम विवाह दोनों ही मामले में यह टूटने को लेकर आशंकित रहते हैं। महानगरों में फ्रेंडशिप क्लबो, समाचार पत्रों व इंटरनेट की दुनिया ने इसे और आसान बना दिया है। आज ऐसी तमाम साइटे हैं जो अपने वैवाहिक जीवन से तंग आकर कुछ नयापन पाने के लिए एक दूसरे से दोस्ती करते हैं। इसमे भी एक दूसरे को जानते तक नहीं और इनकी यही दोस्ती आगे चलकर वैवाहिक जीवन को प्रभावित करती है।

प्रदीप सौरभ के उपन्यास 'और सिर्फ तितली' में तान्या और दीपांकर दोनों स्वेच्छा से बिना विवाह के साथ में पति -पत्नी के रूप में रहने लगते हैं। कुछ दिनों में उनके रिश्तो में दरार आने लगता है। तान्या दीपांकर के जिद के बारे में सोच- सोच कर बदहवास हो जाती थी। उसकी बच्चा पैदा करने की जिद तान्या को स्वीकार नहीं थी। दूसरी जिद अमेरिका वापस जाने की थी। आग्रह था कि तान्या भी उसके साथ जाए। आंदोलन व देश भक्ति से उसका मोहभंग हो गया था। दीपांकर को लगने लगा था कि वह इंडिया में रहकर अपना समय बर्बाद कर रहा है। दीपांकर तान्या को इस बात की चेतावनी दी थी कि यदि वह उसके साथ नहीं जाएगी तो वह अकेले ही चल देगा। तान्या दोनों ही बातों से सहमत नहीं थी। तान्या मैम की अदृश्य गुरु ने ज्ञान दिया, 'जिस सहजता से जुड़े थे उसी सहजता से अलग हो जाना चाहिए। वरना जिंदगी बोझ बन जाएगी लिव इन का फैसला इसीलिए तुम इसीलिए तो तुमने किया था कि जब नहीं पटेगी, तो दोनों के रास्ते अलग हो जाएंगे।'११तान्या ने अपने इस फैसले को एक एसएमएस के जरिए दीपांकर को बता दिया।

प्रभा खेतान की उपन्यास 'छिन्नमस्ता' में प्रिया और नरेंद्र दोनों पति- पत्नी हैं। उनके बीच बातचीत ना हो

पाना महानगरीय परिवेश का प्रभाव है प्रिया शादी के शुरुआती दिनों में नरेंद्र के कार्यों में उसकी सहमति होती थी तो स्थितियां सामान्य रहती थी। प्रिया की आर्थिक निर्भरता व उसके व्यवसाय को वह सहन नहीं कर पाता। नरेंद्र को प्रिया का काम के चलते बाहर जाना या विदेशों में जाना अच्छा नहीं लगता। जब तक प्रिया नरेंद्र के ऊपर आर्थिक रूप से निर्भर थी तो नरेंद्र को कोई दिक्कत नहीं थी। प्रिया अब आर्थिक रूप से सक्षम होने पर निर्णय खुद लेने लगी तो उसका पुरुषत्व सामने आने लगा। इस बारे में फिलिप ने प्रिया से कहा , 'देखो प्रिया! नरेंद्र जैसे पुरुष स्त्री की महत्वाकांक्षा को नहीं समझ सकते। वे एक सफल स्त्री की ओर आकर्षित जरूर होते हैं, मगर उनके भीतर का पुरुष बस उस स्त्री को दबोच ना चाहता है, यानी उसके हमको संतुष्टि मिलती है कि देखो ऐसी औरत भी मेरे वश में है।'१२ नरेंद्र को पूरी जिंदगी भर पछतावा रहता है प्रिया को व्यवस्थाएं के लिए स्वीकृत देना। प्रिया के काम को वह काम नहीं मानता। नरेंद्र के शब्दों में, 'तुम काम नहीं करती। पैसा कमाना अब तुम्हारी हवस है। प्रिया तुम नारसिसिस्ट हो। अपनी ही मूरत को सजाती रहती हो। तुम्हारी महत्वाकांक्षाए दिन- दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही है।'१३ प्रिया और नरेंद्र के बीच रिश्तो में दरार की एक वजह दोनों की पसंद था ।नरेंद्र को जहां पार्टियों का शौक था, क्लबों में जाना, ताश के पत्ते खेलना, ब्लू फिल्म देखना और छुट्टी के दिन शराब व लड़कियों के संग रहना पसंद था तो वही प्रिया को इन सब से अलग अच्छी-अच्छी बुक पढ़ने का शौक था। वह चाहती छुट्टियों के दिन हम कहीं दूर जाकर बैठे और अकेले में एक दूसरे को जाने व बातें करें। नरेंद्र प्रिया से यह अपेक्षा रखता था कि वह और दोस्तों की पत्नियों की तरह पार्टी ज्वाइन करें पर प्रिया को व्यवसाय की व्यवस्तता के कारण समय नहीं मिल पाता था। विवाह को लेकर जुड़ी पिया से कहती, 'वास्तव में विवाह की सारी व्यवस्था ही इस भाव पर आधारित है और जहां स्त्री की चेतना विकसित होने लगती है, वही यह व्यवस्था चरमराने लगती है।'१४ महानगरी सभ्यता स्वार्थ पर टिकी रहती है प्रिया नरेंद्र के बारे में सोचती है। दूसरी औरतों को घर लाने वाला यह पुरुष मुझे थप्पड़ मार सकता है, लोगों के सामने जलील कर सकता है, लेकिन फिर भी यह मेरा पति है। यह मेरी गलती है कि मेरी संवेदनाएं गहरी हैं, कि मेरे मूल्य बोध अलग हैं। घर में दोनों की उपस्थिति एक दूसरे के लिए असहनीय हो जाती है। नरेंद्र से अलग होने के बाद वह अपना व्यवसाय दूसरी जगह 'कारनानी स्टेट्सवाले' दो कमरे वाली फ्लैट में चली जाती है।

इस प्रकार हम देखते महानगरी जीवन में प्रत्येक व्यक्ति अपने स्वयं को लेकर बहुत चिंतित नजर आता है। वह किसी भी कीमत पर इसे खोना नहीं चाहता है और इसे बचाए रखने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहता है। पारिवारिक सम्बन्धों से ऊपर व्यक्तिगत स्वार्थ हो गया है। तमाम रिश्तों और सम्बन्धों की रक्षा आज के समाज का संकट है, जिसे हिन्दी उपन्यासों में बखूबी चित्रित किया गया है।

संदर्भ ग्रन्थ

१- गुप्त, रजनीः ये आम रास्ता नहीं, पृष्ठ ३०

२-सौरभ, प्रदीप : और सिर्फ तितली पृष्ठ ७६

३- गर्ग, मृदुलाः कठगुलाब, पृष्ठ १५५

४-मुद्गल, चित्राः एक जमीन अपनी, पृष्ठ २०

५- खेतान, प्रभाः छिन्नमस्ता , पृष्ठ १८५

६-वर्मा, सुरेंद्र : मुझे चांद चाहिए,पृष्ठ १४

७- मुद्गल, चित्राः आवा, पृष्ठ ११२

८- कांकरिया, मधुः सलाम आखरी, पृष्ठ ४८

९-पुष्पा, मैत्रेयीः विजन, पृष्ठ २६

१०-खेतान, प्रभाः छिन्नमस्ता, पृष्ठ १८६

११-सौरभ, प्रदीपः और सिर्फ तितली,पृष्ठ १४४

१२-सौरभ, प्रदीपः और सिर्फ तितली, पृष्ठ १५४

१३-खेतान, प्रभाः छिन्नमस्ता, पृष्ठ १७४

१४-वही, पृष्ठ १२

शोधार्थी,

हिन्दी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय,प्रयागराज

ईमेल-maneeshau90@gmail. com

मो.-८८४००६१८९०

नई कहानी की विशेषताएं

वांग मेईचेन (Wang Meicen)

शोधार्थी, हिन्दी विभाग
दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली -११००७७
मोः ८१३०२१७७३३

हिन्दी साहित्य में 'नई कहानी' एक महत्वपूर्ण साहित्यिक आंदोलन है, जिसे आलोचक और शिक्षाविद बहुत महत्व देते हैं। नई कहानी की कई पहलुओं में हिंदी साहित्य के परिवर्तन की प्रक्रिया की नई प्रवृत्तियों को दर्शाते हैं। नई कहानी में उभर रहे विभिन्न प्रसिद्ध लेखकों के कार्यों पर कई अध्ययन और टिप्पणियां हुई हैं और इस लेख के मुख्य उद्देश्यनई कहानी की कहानियों की सामान्य विशेषताओं पर ध्यान केंद्रित करेगा।

१९५७ के एक साहित्यिक सम्मेलन में मोहन राकेश और आदि लेखकों ने अपने रचनात्मक अनुभव के सारांश के आधार पर 'नई कहानी' की अवधारणा को सामने रखा। उनका मानना है कि नए युग में आई हुई नई समस्याओं को नए दृष्टिकोणों और नए तरीकों से लिखा जाना चाहिए। उनके इस प्रस्ताव का लेखकों ने तुरंत ही तीखा असर डाला और हिंदी साहित्य जगत में एक जोरदार 'नई कहानी' आंदोलन शुरू किया गया। राजेन्द्र यादव, कमलेश्वर, भीष्म साहनी, निर्मल वर्मा, मन्नू भंडारी और अन्य प्रसिद्ध लेखक इस रचनात्मक प्रवृत्ति में शामिल हो गए हैं। स्वतंत्रता के बाद हिंदी साहित्य के क्षेत्र में 'नई कहानी' की शैली मुख्य शक्ति बन गई। ये लेखक अपनी रचना में 'नई कहानी' के विचार का अभ्यास करते हैं। उनकी कहानीयां इसी विचार के मार्गदर्शन में रचित है। निम्नलिखित लेख 'नई कहानी' आंदोलन के साथ इन कहानियों की रचनात्मक विशेषताओं का चर्चा करेगा।

'नई कहानी' की कहानियों की सबसे बड़ी विशेषता है कि कहानी में घटना अब काम का मूल नहीं है, जो पारंपरिक कहानी में सबसे महत्वपूर्ण बिन्दु है। 'नई कहानी' की कहानियों में घटनाओं का वर्णन काम का फोकस नहीं है। भले ही कभी-कभी कहानी में घटना की रूपरेखा उभर आती है, उपन्यास कभी भी घटना प्रक्रिया के वर्णन पर केंद्रित नहीं होता है, लेकिन घटना का वर्णन मुख्य रूप से नहीं किया जाता। पात्रों की गतिविधियों (मनोवैज्ञानिक गतिविधियों सहित) और वातावरण का विवरण अब कार्यों में केंद्रित हैं।

उदाहरण के लिए देखें, मोहन राकेश की कहानी 'सोया हुआ शहर' में पाठक तो कोई पूरी घटना नहीं पढ़ सकें। यह कार्य आधी रात में शहर की एक तस्वीर की तरह है -- गली में घूमता हुआ कुत्ता, बस स्टेशन के पास

सोते हुए आदमी, रिश्तेदारों की तलाश में दरवाजा पीटे हुए महिला, छत पर चिमनी के पास खड़े हुए कई कबूतर, बदमाशों का पीछा करती पुलिस, बात करते हुए अज्ञात व्यक्ति......। पाठकों के लिए इन बिखरी हुई तस्वीरों से इनके बीच के संबंध का पता लगाना मुश्किल है। लेखक पाठकों को यह बताना नहीं चाहता कि रात में शहर में क्या हुआ, बल्कि पाठकों के लिए खुद को महसूस करने के लिए एक माहौल बनाते हैं। जब हम पहली बार इस तरह के काम को पढ़ते हैं, तो हमें ऐसा लगेगा कि हम कोहरे के समुद्र में गिर जाए और कथानक की निरंतरता को पकड़ने में असमर्थ है। हालांकि, इसका मतलब यह नहीं है कि पाठक कहानी के अर्थ को नहीं समझ सकते। दरअसल, कुत्ता भौंकता रहा, गली में सो रहा आदमी लगातार जाग रहा, और जो महिला अपने रिश्तेदार की तलाश कर रही थी, वह आधी रात में भटक रही......चित्रों की यह श्रृंखला पाठक के मूड को हमेशा चिंता की स्थिति में बना देती है, न जाने आगे क्या होगा। जाहिर है, शहर में रात शांतिपूर्ण नहीं है। सोया हुआ शहर एक असुरक्षित शहर है। यही लेखक पाठकों को बताना चाहता है।

पारंपरिक कहानियों में कथा के दो तत्व होते हैं। एक यह है कि कहानी की प्रत्येक घटना का करणीय संबंध होता हैः कोई घटना घटित होने से दूसरी घटना सामने आएगा या तो कोई संघर्ष होता है, और फिर स्थिति बदल जाती है। दूसरा तत्व है कि कहानी में घटनाओं का घटित होना समय में रैखिक है। नई कहानी के लेखक जानबूझकर कहानियों की इन दो आवश्यक तत्वों की उपेक्षा करते हैं, अर्थात् घटनाओं का कालक्रम और करणीय संबंध की निरंतरता को तोड़ते हैं, और ऊपर वर्णित'सोया हुआ शहर' एक विशिष्ट उदाहरण है। इसलिए जब हम नई कहानी के कार्यों को पढ़ते हैं, तो आरंभ में हमें लगता है कि लेखक हमें केवल कुछ खंडित दृश्यों और पात्रों की गतिविधियों के साथ प्रस्तुत करते हैं। लेकिन जब हम कार्यों को पढ़ना समाप्त करते हैं, तो हमें पता चलता है कि रूप से टूटे हुए टुकड़े दृश्य वास्तव में संबंधित हैं। एक बार वे एक साथ मिलकर, हम उस संदेश को पकड़ सकते हैं जो लेखक हमें बताना चाहते हैं।

रूपक और प्रतीक 'नई कहानी' की दूसरी प्रमुख विशेषता है। 'नई कहानी' के लेखक जानबूझकर अपनी व्यक्तिपरक इच्छा को पाठकों पर थोपने से बचने के लिए प्रतीकों और रूपकों का उपयोग करते हैं। मोहन राकेश की कहानी 'सेफ़्टी पिन' में उच्च-मध्यम वर्गीय पारिवारिक संबंधों का वर्णन किया जाता है। कहानी में वर्णित मध्यम वर्ग के पुरुष और महिलाएं सतही तौर पर गुणी हैं, लेकिन उनकी हड्डियों में भ्रष्ट हैं। भोज में, लगभग सभी का अकथ्य संबंध होता है, और पारिवारिक संबंध केवल नाम के होते हैं। कहानी में कथावाचक को इस पारिवारिक सभा में आमंत्रित किया जाता है, और रास्ते में उस के पैंट की जिप टूट गई, इसलिए वह पैंट को एक पिन से ठीक करता है। भोज के दौरान, पैंट की वजह से कथावाचक शर्मिंदा है, और इस दोष को प्रकट करने से बचने के लिए वह हमेशा सावधान है, लेकिन अंत में पिन गिर जाता है। यहां 'पिन' का एक मजबूत प्रतीकात्मक अर्थ है -- मध्यम वर्ग के नाजुक पारिवारिक संबंधों की प्रतीक। यह 'पिन' पाठकों को पढ़ते समय कठवाचक जैसे असहज महसूस कराता है, और लोगों को यह महसूस कराता है कि सुखद वातावरण में विभिन्न संकट छिपे हुए हैं।

यहाँ और एक उदाहरण है निर्मल वर्मा की कहनी 'धागे'। इस कहानी में नायिका रुनी, उसकी बहन और बहन के पति के बीच की कहानी है। लंबे समय से पहले रुनी को अपने बहन के पति से बहुत प्यार हो गया और उन तीनों के बीच का रिश्ता धागे की तरह है। जटिल ले अत्यंत कमज़ोर है। यहाँ धागे प्रतीक है प्रेम और दाम्पत्य के टूटते-बिखरते रिश्तों को नाजुकता से जोड़े रखने का।

यह नई कहानी के लेखकों की प्रतिभा भी है, क्योंकि नई कहानी के लिए कथा साहित्य अब वास्तविक जीवन में हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए, उन्हें केवल अपने और साहित्य से ही सरोकार रखना चाहिए। 'नई कहानी' के लेखक शानदार फोटोग्राफर की तरह होते हैं, जो समस्या के विश्लेषण को पाठक पर छोड़ते हुए केवल कई शॉट्स, कई पक्षों और जीवन की कई परतों को शूट करते हैं, इसलिए लेखक अक्सर रूपकों और प्रतीकों का उपयोग करते हैं ताकि पाठकों पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव डाल दें।

एंगेल्स ने हार्कनेस को लिखे पत्र में कहा था -- 'लेखक के दृष्टिकोण को जितना छुपाया जाए, कला के काम के लिए उतना ही बेहतर।' 'नई कहानी' के लेखक अपनी रचना के साथ एंगेल्स के इस प्रसिद्ध कथन को सर्वोत्तम रूप से समझाते हैं। 'नई कहानी' की कहानियों में पाठक अब लेखकों की रचनाओं के निष्क्रिय प्राप्तकर्ता नहीं, बल्कि सक्रिय प्रतिभागी और सहयोगी हैं। सौंदर्य की दृष्टि से, नई कहानी के लेखक अपने विचारों को छिपाकर उन्हें जीवन की एक ठोस और समग्र तस्वीर के साथ दिखाने के लिए अपने कार्यों में बहुत सारे रूपकों और प्रतीकों का उपयोग करते हैं, और इस प्रकार एक ऐसा वातावरण बनाते हैं जो जीवन के नमूने से लगभग अप्रभेद्य है। यही पाठकों को भाषा की सीमा को पार करके सौंदर्य की अनुभूति में शीघ्रता से प्रवेश करने देता है और पाठकों को स्वयं जीवन की घटना पर लौटने में सक्षम बनाता है। इस प्रक्रिया में, पाठक स्वतंत्र रूप से विचार कर सकते हैं, जिसके परिणामस्वरूप एक अविस्मरणीय सौंदर्य अनुभव होता है।

परिप्रेक्ष्य के बारे में नई कहानी में कहानी की विशेषता यह है कि प्रथम-व्यक्ति का व्यापक उपयोग। परिप्रेक्ष्य के चयन का कहानी की अभिव्यक्ति पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। आमतौर पर तृतीय-व्यक्ति सर्वज्ञ परिप्रेक्ष्य कहानी (विशेषकर पारंपरिक यथार्थवादी कहानी में) में सबसे अधिक इस्तेमाल किया जाने वाला परिप्रेक्ष्य है। इस परिप्रेक्ष्य के कई फायदे हैं। यह कथावाचक को ईश्वर के समान सर्वज्ञ और सभी पात्रों को पार करने में सक्षम बनाता है। इस तरह, वर्णन की प्रक्रिया में लेखक को सामग्री के स्रोत की व्याख्या करने की आवश्यकता नहीं है, और लेखक वर्णन की दृष्टिकोण को अपनी इच्छानुसार स्थानांतरित कर सकता है -- वह न केवल अतीत और भविष्य, पात्रों की मनोस्थितियों और व्यवहारों को पूरी तरह से प्रकट कर सकता है, बल्कि घटनाओं और पात्रों के बीच के जटिल संबंधों को समझा सकता है। लेकिन, इस परिप्रेक्ष्य में कमियां भी है कि पाठकों को कभी-कभी काम के उन हिस्सों के बारे में संदेह होता है जो कथावाचक को पता नहीं होना चाहिए। यह कार्य की प्रामाणिकता को प्रभावित करता है। इसके अलावा, यह अक्सर पाठकों में कम रुचि पैदा करता है और मानसिक व भावनात्मक जड़ता विकसित करता है।

नई कहानी में तो दूसरी बात है। लेखक के व्यक्तिपरक तर्कों या निणर्यों से जितना हो सके बचा जाना चाहिए, और पाठकों को कल्पना और निणर्य करने देना चाहिए। इसलिए, नई कहानी में, हम देखते हैं कि लेखक आमतौर पर सर्वज्ञ परिप्रेक्ष्य के उपयोग से बचते हैं। नई कहानी के लेखक अक्सर अपने कहानियों में प्रथम-व्यक्ति परिप्रेक्ष्य का उपयोग करते हैं। उदाहरण के लिए, नई कहानी के प्रतिनिधि निर्मल वर्मा अपने आधे से अधिक कहानियों में इस तरह के परिप्रेक्ष्य का उपयोग करते हैं।

आम तौर पर, प्रथम-व्यक्ति परिप्रेक्ष्य का कथा क्षितिज सीमित होता है, और यह परिप्रेक्ष्य जटिल कहानी, विस्तृत दृश्यों और पात्रों को व्यक्त करने के लिए असमर्थ है। हालाँकि, नई कहानी की कहानियों में प्रथम-व्यक्ति परिप्रेक्ष्य का उपयोग तो बहुत उपयुक्त है। नई कहानी स्वाभाविक रूप से मनोविज्ञान को चित्रित करने, और वातावरण प्रदान करने में ध्यान देती हैं जबकि भूखंडों को समझाने में कम महत्वपूर्ण हैं। इसके अलावा, कहानी की विधा स्वयं विस्तृत दृश्यों और बहुत सारे पात्रों की व्यवस्था नहीं करती। इस मामले में प्रथम-व्यक्ति परिप्रेक्ष्य का उपयोग करने का लाभ स्पष्ट है कि लेखक आसानी से पाठक के पढ़ने के अनुभव को बिना किसी निशान के प्रभावित और मार्गदर्शन कर सकता है। पाठक पात्रों की ये बातों को सुन सकते हैं, जो पात्र स्वयं देखी जाती, सुनी जाती और अनुभव की जाती है, इसलिए कहानी अधिक विशद और मार्मिक बन जाती है।

ऊपर नई कहानी की कुछ विशेषताओं का चर्चा किया जाता है। यह कहा जा सकता है कि नई कहानी के लेखकों ने कहानी के निर्माण के रूप और सामग्री में पारंपरिक हिंदी साहित्य पर साहसिक नवाचार किए है और यह प्रयास सफल रहा है। आधुनिक समाज में, भौतिक संपदा अतीत की तुलना में अत्यंत समृद्ध है, और समाज में लोग जिन विभिन्न दबावों को झेलते हैं, वे अक्सर

उनकी मनोवैज्ञानिक अवस्थाओं में प्रकट होते हैं। इसलिए, इन समस्याओं को प्रस्तुत करते समय नई कहानी इसकी ताकत को अधिकतम करती है। वहीं, नई कहानी के लेखक परंपरा को नहीं छोड़ते। लेखक की सामाजिक जिम्मेदारी और आलोचनात्मक भावना के संदर्भ में नई कहानीकार प्रेमचंद जैसे उत्कृष्ट पूर्ववतिन्यों के समान हैं। यह सिर्फ इतना है कि वे अलग-अलग युग में रहते हैं, इसलिए कार्यों के विषय और भाव अलग-अलग होते हैं।

नई कहानी साहित्य की लोकप्रियता के युग में आधुनिकतावाद, उत्तर-आधुनिकतावाद और अन्य साहित्यिक और कलात्मक प्रवृत्तियों का बोलबाला था। ऐसी साहित्यिक प्रवृत्ति के तहत समकालीन भारतीय लेखकों के लिए इन विचारों से प्रभावित नहीं होना असंभव है। पश्चिमी लेखकों के सफल अनुभव और भारत की सामाजिक वास्तविकता को जोड़कर नई कहानी के लेखक बड़ी संख्या में उत्कृष्ट कार्यों का निर्माण करते रहते थे। यहां हम देख सकते हैं कि फ्रांस में 'न्यू नॉवेल' आंदोलन १९५० के दशक के मध्य से शुरू हुआ, जबकि भारत में 'नई कहानी' के लिए पहला आह्वान १९५७ में किया गया था, जो दर्शाता है कि समकालीन हिंदी साहित्य का विकास है लगभग यह विश्व साहित्य की प्रवृत्ति के अनुरूप है। इसके अलावा, हिंदी साहित्यकार अपने कार्यों में व्यक्त किए गए विचार और समस्याएं भारत तक ही सीमित नहीं हैं। मानव स्वभाव और पारंपरिक सामाजिक संबंधों का पतन आधुनिकीकरण की प्रवृत्ति में सभी मानव समाजों द्वारा सामना की जाने वाली सामान्य समस्याएं हैं। यह कहा जा सकता है कि समकालीन हिंदी साहित्य विश्व साहित्य की प्रवृत्ति में पूरी तरह से एकीकृत हो गया है और एक सक्रिय हिस्सा है।

संदर्भः

१. मोहन राकेश, फ़ौलाद का आकाश, राजपाल एण्ड संस, १९६६

२. निर्मल वर्मा, पिछली गमिन्यों में, राजकमल प्रकाशन, १९६८

३. नामवर सिंह, कहानीः नई कहानी, लोक भारती प्रकाशन,१९७३

४. विजयेन्द्र स्नातक, हिन्दी साहित्य का इतिहास, साहित्य एकेडमी, २०१५

५. Genette Gérard. Narrative Discourse, [M].Ithaca: Cor-nell University Press, 1980.

6. E.M.Forster,Aspects of Novel, Mariner Books, 1956

वांग मेईचेन (Wang Meicen)
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
मोः: ८१३०२१७७३३

दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता : बाजार संस्कृति में बदलता स्त्री स्वरूप

रवि रंजन कुमार ठाकुर

शोधार्थी,
हिन्दी विभाग
जामिया मिलिया इस्लामिया
नई दिल्ली-११००२५
मो.९६५४६७९७६०

सुरेन्द्र वर्मा द्वारा लिखित उपन्यास 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' मुख्य रूप से पुरुष-वेश्यावृत्ति पर केन्द्रित है। इसमें सहकथा के रूप में मुम्बई के अंडरवर्ल्ड की कथा भी शामिल की गयी है। सुरेन्द वर्मा ने इस उपन्यास में महानगरीय सभ्यता में उपजते विकृतियों को कथा के माध्यम से उजागर करने का प्रयास किया है। पुरुष वेश्यावृत्ति पर लिखे गए इस उपन्यास की प्रशंसा इस तौर पर ज्यादा हुई है कि यह 'जिगालो' पर लिखी गयी हिन्दी की प्रथम कृति है। पुष्पपाल सिंह के शब्दों में 'राजेन्द्र यादव तो सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यास 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' की प्रशंसा ही इसलिए करते हैं कि वह पुरुष वेश्यावृत्ति (जिगालो) पर हिन्दी में प्रथम कृति है।'डभूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास - पुष्पपाल सिंह, पृ. १९४..अपने विषय में नयेपन के साथ यह उपन्यास पूँजीपति एवं बाजार से प्रभावित स्त्री स्वरूप की व्याख्या करने वाला है।

इस उपन्यास में भोला और नील नामक दो युवकों की कहानी साथ-साथ चलती है। भोला अंडरवर्ल्ड में चला जाता है एवं नील जिगालो बन जाता है। जिगालो के रूप में नील की मुलाकात कई अलग-अलग स्त्रियों से होती है। ये स्त्रियाँ उच्चवर्ग की हैं। ज्यादातर स्त्रियाँ महानगरीय संत्रास से पीड़ित हैं। बाजार ने किस प्रकार से स्त्री-पुरुष को एक-दूसरे के लिए उपभोग की वस्तु बना दिया है यह यहाँ देखा जा सकता है। कहा यह भी जा सकता है कि पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री वेश्या के रूप में वरणेय थी फिर पुरुष का वेश्या रूप अपरूप में क्यों देखा जाना चाहिए? दरअसल पुरुष का वेश्या रूप उपभोक्तावाद और विशुद्ध रूप से बाजार की देन है। बाजार वह व्यवस्था है जहाँ जरूरत के अनुसार सबकुछ मिलता है। 'शायद नैतिकता को, दकियानूसी विचार मानने वाले, इस कस्मोपोलिटन शहर का एक बड़ा बिजनेस बन रहा था यह। इस बिजनेस में और और आदमी नहीं थे, कम-से-कम, वे दो उत्पाद थे और ज्यादा-से-ज्यादा, नर और मादा। इन उत्पादों का बाजार भाव था जो शेयर बाजार सेंसेक्स की तरह घटता-बढ़ता था। रंग, रूप, कद, काठी, सामर्थ्य के साथ-साथ, अंग्रेजी भाषा, इसके भाव तय करने में अहम थे। 'ड वही, पृ. १९४..जिगालो व्यवसाय जरूरत की नहीं वासना की उपज है जिसे बाजार ने बढ़ावा दिया है।

पूँजी बाजार के लिए आवश्यक तत्त्व है। पूँजी है तभी बाजार है। बाजार अपने तरीके से सभी कुछ बिकाउफ बना देने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहता है। इस उपन्यास में देखा जाए तो पूँजीपति स्त्री पुरुष का अपने हिसाब से उपभोग करती है एवं उसकी उपयोगिता समाप्त होने पर उसे झटक कर आगे बढ़ जाती है। उसके अंदर किसी प्रकार का अपराधबोध नहीं होता है। यह बिल्कुल वैसे ही है जैसे पुरुष अपने लिए स्वच्छंद यौन संबंध चाहता है

और किसी भी नैतिक मानदंड को स्वयं के लिए स्वीकार करने से कतराता है। बदलते परिवेश के कारण स्त्री के सामाजिक संरचना में बड़े गहराई से परिवर्तन महसूस किया जा सकता है। आधुनिकता बोध ने स्त्री को स्वतंत्र व्यक्तित्व की चेतना से संपन्न किया है। वह अपने तरीके से जिन्दगी जीने लगी है। बड़े-बड़े पद पर प्रतिष्ठित होकर उसने स्वयं के लिए पूँजी भी एकत्रित की एवं पुरुषों के समान स्वतंत्र मार्ग भी बनाया है। सामाजिक मानदंड महत्त्वपूर्ण न होकर व्यक्ति महत्त्वपूर्ण दिखाई देता है।

इस उपन्यास में 'पारुल' एक औद्योगिक घराने से संबंध रखती है। उसका मायका और ससुराल दोनों मुंबई का प्रतिष्ठित एवं ऊँचा औद्योगिक घराना है। पारुल जयंत की पत्नी है। नवीन सोमपुरिया पारुल का भाई है। ये दोनों नाम जयंत और नवीन उद्योग जगत के बड़े नाम हैं। इनकी छत्रछाया मुम्बई के अंडरवर्ल्ड जगत को प्राप्त है। पारुल से नील की मुलाकात एक पार्टी में होती है यह पार्टी पारुल के घर पर रखी गई है जिसमें नील मेहताब जी के साथ शामिल होता है। मेहताब वह महिला है जिनके यहाँ नील नौकरी करता है। पारुल को नील जब पहली बार देखता है तो वह उसे बहुत व्यथित और अकेली जान पड़ती है। 'उस एक पल नील की निगाह पारुल से मिल गई। उसकी मोनालिशा-मुस्कान में एक और अर्थ कसमसा रहा था - व्यग्र उदासी का। यह स्त्री अंदर कहीं बहुत अकेली और व्यथित है, उसने सोचा।'ड दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता - सुरेन्द्र वर्मा, पृ. १०५..नील की पारखी आँखें पारुल का जायजा ले लेती हैं। 'नीली साड़ी में लिपटी गोरी, नाजुक-सी पारुल में परिष्कृत लालित्य था। पीठ पर खुले हुए बाल लहरा रहे थे। आँखें गहरी और शांत। तराशे होठ कसे-से। 'ड वही, पृ. १०४..ऐसा नहीं है कि वह केवल सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति है। पारुल ने उच्च शिक्षा प्राप्त किया है। पारुल व्यवसायिक प्रबंधन में डॉक्टरेट है। 'दो रैकों के बीच में लगे एक चौखटे को देखकरे वह ठिठक गया। यह व्यवसायिक प्रबंधन में पारुल की डॉक्टरेट का प्रमाण पत्रा था। 'ड वही, पृ. १०६..उच्च शिक्षित एवं उच्चवर्गीय पारुल में उसमें तर्क करने एवं स्वयं को महत्त्व देने की क्षमता विद्यमान है। वह अपने पति से प्रसन्न नहीं है।

पारुल अपने पति जयंत के उद्योग जगत की एक बड़ी हस्ती है। उसके तीक्ष्ण बुद्धि एवं सुव्यवस्थित विचार का पता नील को उससे बात करके लग जाता है। नील पारुल के आकर्षण में अवश्य बँध जाता है लेकिन पहल पारुल ही करती है। वह फोन करके नील को सी ब्रिज फ्लैट में बुलाती है। नील को पहली बार पारुल से शारीरिक रूप से मिलकर उसके अतृप्त शरीर का पता लगता है। 'उसे लगा, पारुल के भीतर ऊष्मा की हिलोर-सी उठी है... जैसे मेले में भटके पारुल की बाँहें उसे कसने लगीं और उसके अंदरुनी बीहड़ों में कातर पुकार गूँजी, अब तक तुम कहाँ थी पारुल ?' ड वही, पृ. १२१..पारुल के अंदरुनी अकेलेपन का अहसास नील को उससे मिलकर हो जाता है। पारुल जयंत को पसंद नहीं करती है। उसका विवाह जयंत से एक समझौते के रूप में हुआ है। 'अगर पारुल आज शाह परिवार की बहू है, तो इसके पीछे संकट के समय में मानिक भाई शाह के पूरी ईमानदारी से अपने पुराने मित्रा चंदन सोमपुरिया के व्यवसाय को सँभालना है।'ड वही, पृ. १२१.. दोनों परिवार इस विवाह से अपना औद्योगिक रिश्ता मजबूत कर लेते हैं। विवाह के बाद पारुल दोनों परिवारों के बीच एक कड़ी के रूप में है। 'अब वे शाह परिवार की तीन और सोमपुरिया परिवार की पाँच कंपनियों के बोर्ड पर हैं और दोनों की एक-एक कंपनी की मैनेजिंग डायरेक्टर।'ड वही, पृ. १२२..पारुल तीनों है। वह 'मैनेजिंग डायरेक्टर' के पद पर अपना योगदान यहाँ दे रही है। पारुल को ऐसा प्रतीत होता है कि एक दिन ऐसा अवसर आयेगा जब उसे नील के साथ जीवन के सुखद अनुभव प्राप्त होंगे। '...चरम सीमा के बाद पारुल की आँख से दो नन्हें आँसू ढुलक आए। एकाएक उन्होंने अपने गले से कार्टियर की माला उतारी और नील के गले में डाल दी, 'नील, तुमने मुझे जिंदगी का पहला आर्गेज्म दिया है...'।'ड वही, पृ. १२२..पारुल के द्वारा नील को दिया जाने वाला पुरस्कार स्वरूप 'कार्टियर' की माला पारुल के आंतरिक खुशी का परिणाम है जो नील को कार्यकुशलता के परिणामस्वरूप पारितोषिक रूप में दिया गया है।

समय के अनुसार नील की बुकिंग का 'रेट' बढ़ जाता है। विकएण्ड पर वह दोगुने पैसे लेता है और स्त्रियाँ उसे खुशी-खुशी पैसे देती हैं। पारुल महंगे उपहारों से लगभग उसे ढक देती है। नीले हीरे की अंगूठी से लेकर

लंदन से स्पेशल ऑडर पर मंगाये कपड़े एवं कॉस्मेटिक से नील की आलमारी भर जाती है। धीरे-धीरे पारुल की वह जरूरत बनने लगता है। पारुल नील से जितनी खुशी चाहती है उतनी उसे मिलती है और वह नील को भी खुशियों से भर देती है। 'इस समय डिजायनर रंगीन चश्मे के साथ वह लार्ड जिम लेबेल की बटन-डाउन कमीज़ पहने था, वान हूसेन की स्टील ग्रे ट्राउजर्स और रेंग्लर की आसमानी जैकेट। दूसरे मिलन से पहले एक दिन के नोटिस पर पारुल ने ये चीज़ें लंदन से मँगवाई थीं। हर भेंट में वे उपहारों के दो तीन पैकेट लेकर आती थी। अब उसके पास हीरों से जड़ी अंगूठियाँ, कफ-लिंक्स और टाई-पिनें थीं, वॉडरोब पूरा भर चुका था और स्नान घर की आलमारी तरह-तरह के विदेशी रेजर, शेविंग क्रीम, आफ्टर शेव लोशन और शैंपू की शीशियों से ठसाठस थी।'ड वही, पृ. १३५..यह सब उसे पारुल की कृपा से प्राप्त हुआ था। बाजार वृद्धि ने इसमें योग दिया था। "कितना आनंद देते हो तुम'... पारुल फुसफुसाई। फिर उसके माथे पर होठ रख दिए। उसकी पीठ को बाँहों से घेरते हुए वह निश्चल पड़ा रहा अब धड़कन स्थिर होने लगी थी। पर मुँह सूखा हुआ था। 'ड वही, पृ. १३६..देखा जाए तो उपभोग की इस रीति में स्त्री और पुरुष दोनों समान दिखाई देते हैं। ध्यातव्य है कि पुरुष के जिस उपभोग वृत्ति से स्त्री आज तक दुःखी होती आयी है स्वयं स्त्री द्वारा उसे अपनाया जाना क्या लाभकारी हो सकता है? उत्तर केवल नकारात्मक होगा। अतः पुरुष का अनुसरण मात्रा स्त्री समानता का अधिकार नहीं है।

पारुल नील को पैडर रोड के नेबुला बिल्डिंग में चौदहवीं मंजिल पर एक फ्लैट खरीद कर दे देती है। नील के यह पूछने पर कि यह फ्लैट तो बहुत ही महंगा होगा, तो जवाब में पारुल कहती है कि 'नील, तुमने मुझे कितने आर्गेज्म दिए है? सोमपुरिया घराने की राजदुलारी और शाह घराने की गृहलक्ष्मी को मिले सुख का क्या मोल लगाया जाएगा?... मेरा कंप्यूटर कहेगा कि यह फ्लैट फिर भी सस्ता है। 'ड वही, पृ. १५३..नील अब पूर्ण रूप से पारुल का रखैल बन जाता है। पारुल यहाँ आती जाती है। नील के पास आने और रुकने के लिए पारुल अपने परिवार में कई झूठ का सहारा लेती है। नील के साथ समय बिताने वाली कितनी औरतें हैं। उन सबकी अपनी फैंटेसी है। पारुल की फैंटेसी पूर्णतः भारतीय है। नील के साथ उसे उसी रंग में रंगना अच्छा लगता है जो भारतीय शैली की देन है। पारुल के कारनामे से जयंत बेखबर है ऐसा नहीं है उसे सब कुछ पता लग जाता है। वह यह जानकर कि उसकी पत्नी ने एक जिगालो को अपना रखैल बना रखा है इससे विचलित नहीं होता उल्टा वह नील माथुर के सामने उसका आभार मानता है कि उसने उसके घर को टूटने से बचा लिया है। 'मेरा तुमसे एक ही आग्रह है उससे 'डिस्क्रीट' होने के लिए कहो। टाउन में तुम्हें बगल में बैठाये घूमना, होटलों में हमारे बगल में तुम्हारे लिए कमरा बुक करवाना, ज्यादों घंटों के लिए ऑफिस या घर से गायब हो जाना ये बातें गलत हैं। यह मेट्रोपोलिस हमारे जैसे लोगों के लिए गाँव की तरह है। उसे समझाओ कि सी-ब्रिज या नेबुला में घुसे रहना ज्यादा सुरक्षित है। 'ड वही, पृ. १६४..जयंत सब जानते हुए भी पारुल के साथ रहता है उससे दूर नहीं होता क्योंकि वह अपनी कंपनी को आगे बढ़ाना चाहता है। विस्तृत बाजारवाद की नीति एवं भूमंडलीकरण के बढ़ते प्रभाव ने जयंत को पारुल और नील के संबंध को प्रोत्साहन देने के लिए प्रेरित किया है। पारुल के चले जाने से उसकी एक तिहाई शक्ति रह जाएगी। इसलिए ही वह नील को अतिरिक्त पैसे देता है कि वह उसकी पत्नी के साथ संबंध बनाये रखे। पारुल पूँजीपति स्त्री के उस स्वरूप में है जिसके आगे पुरुष और पुरुषत्व दोनों नतमस्तक दिखाई देते हैं।

पारुल का व्यक्तित्व उस स्त्री की तरह दिखाई देता है जो अपने दैहिक स्वच्छंदता के लिए कुछ भी कर गुजरने के लिए तैयार है। वह नील से कहती है कि जयंत को स्लो पॉयजन दे दूँ। पारुल जयंत के अपाहिज बहन से, जो कभी माँ नहीं बन सकती है, नील का विवाह करके अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए उसे अपने घर में रख लेना चाहती है। पारुल के इस प्रस्ताव से नील घृणा से भर जाता है। नील जब एक बार पारुल से मिलने उसके ऑफिस पहुँचता है तो वहाँ उसकी व्यग्रता देख कर वह दंग रह जाता है। वह बीमार है फिर भी पारुल को उसकी बीमारी से कुछ लेना-देना नहीं है। वह केवल नील को भोगना चाहती है। नील वहाँ से चल देता है। पारुल तड़प कर रह जाती है। इस प्रसंग को पढ़ने के बाद नील को डॉक्टर की दी गई वह हिदायत पाठकों को याद आती है जिसमें

डॉक्टर कहता है कि 'जिस पेशे में तुम हो, वह स्त्री से निभ सकता है, क्योंकि उसे सक्रिय नहीं होना होता।'ड वही, पृ. १७७..इस पेशे में मौजूद स्त्री एवं पुरुष के अंतर को यहाँ डॉक्टर स्पष्ट कर देता है। परंतु मुनाफा, लाभ, फायदा जैसे शब्द इस अंतर को स्वीकारने को तैयार नहीं है। पुरुष की अपनी समस्याएँ हैं। यह बात पारुल नील के विषय में नहीं सोचती अपने 'इनवेस्टमेंट' से ज्यादा मुनाफा प्राप्त करना उसकी आदत है। उसके स्वरूप की यह प्रवृत्ति स्त्री की परिवर्तित मनोवृत्ति कही जा सकती है जिसे बाजार ने पोषित किया है।

पारुल नील के तरफ आकर्षित है। यह आकर्षण तब खत्म हो जाता है जब उसे नील बताता है कि वह विवाह करके घर बसाना चाहता है। पारुल नील की प्रेमिका नैन एवं उसकी माँ से अपने और नील के रिश्ते की सच्चाई को बताकर उन दोनों की नजरों में उसे गिरा देती है। जो फ्लैट नेबुला में पारुल ने उसे दिया था वह उससे छीन लेती है। उसे इतने से भी चैन नहीं पड़ता तो वह उसे पुलिस से अरेस्ट करवाती है। पुलिस उसकी हिस्ट्री को लेकर कई आरोप लगाकर उसे जेल में बंद कर देती है। पारुल लाखों रुपये खर्च करके जैसे नील को आबाद करती है वैसे ही उसे लाखों रुपये बर्बाद करने में खर्च कर देती है। पुलिस नील को तरह-तरह की यातनाएं देती है। उसे मारती-पीटती है एवं उसका बलात्कार करवाती है। नील के साथ जैसा बलात्कार का वर्णन यहाँ किया गया है ऐसा ही पुरुष के साथ बलात्कार का वर्णन मैत्रेयी पुष्पा 'अल्मा कबूतरी' में करती हैं। सुरेन्द्र वर्मा और मैत्रेयी के वर्णन में यह अंतर है कि सुरेन्द्र वर्मा का नील पर हुए बलात्कार का वर्णन करुणा पैदा करता है तो मैत्रेयी का बलात्कार वर्णन जुगुप्सा। नील की स्थिति इस बलात्कार के बाद एकदम सुन्न के समान हो जाती है। 'अधेड़ उठकर पास आया और नील की पतलून ऊपर खींच दी... आधी चेतना के पार नील को रातरानी का कैबरे याद आया, जब नर्तकी के पूरी तरह निर्वसन होकर एग्ज़िट लेने के बाद ध्वल बालों वाले चाचाजान स्टेज पर आकर ब्रा और पेंटी समेटने लगते थे... वह निस्पंद पड़ा रहा। सब कुछ सुन्न था - भीतर और बाहर। 'ड वही, पृ. २३३..रात रानी के कैबरे का दृश्य यहाँ बताकर लेखक एक रूपक भी बाँधता है और उससे नील की स्थिति स्पष्ट हो जाती है। वहाँ अनेक पुरुषों के बीच एक स्त्री कैबरे के दौरान नग्न होती है जबकि यहाँ एक स्त्री के इशारे पर पुरुष को नग्न स्थिति में पहुँचा दिया जाता है।

नील जब मदद के लिए अपने एक क्लाइंट यास्मिन को फोन करता है तो वह भी उसे यह कहकर टाल देती है कि तुम्हारे पास सब पारुल का दिया था उसने ले लिया। जब नील बहुत अनुनय करता है तो यास्मीन कहती है कि 'तुम पारुल की ताकत के सामने खड़े हो सकते हो?... मैं कहूँगी, पारुल फिर भी रहमदिल है। मैं होती, तो तुम्हारा कत्ल करवा देती। 'ड वही, पृ. २३५.. यहाँ पारुल के अलावा एक अन्य उच्चवर्गीय स्त्री यास्मीन के व्यक्तित्व को उसके इन शब्दों से समझा जा सकता है। अंत में नील पुलिस की बात मानकर तड़ीपार होने के लिए तैयार हो जाता है। उपभोक्तावादी समाज उसे जिगालो बनाता है वह वस्तु मात्र है माँग है तो सप्लाई होगी ही। अगर सप्लाई नहीं तो वह कुछ भी नहीं। नील की कामयाबी के पीछे की सच्चाई को जानकर सब उससे नाता तोड़ लेते हैं। नील पारुल के दफ्तर में उससे हाथापाई करने की कोशिश करता है जहाँ गार्ड उसे बुरे तरीके से पीटते हैं। नील की दुर्गती पारुल के इशारे पर होती है। पूँजी ने स्त्री और पुरुष दोनों को निर्मम बना दिया है। 'मैला आँचल' उपन्यास में बावन दास की हत्या से पूँजीपति पुरुष की निर्ममता एवं नील की दुर्गती से स्त्री की निर्ममता का अंदाजा लगाया जा सकता है।

नील इन सब घटनाओं से निकलते हुए अपने आपको सम्भालता है। वह अपने दोस्त भोला के मदद से अपना एकाउंट और लॉकर खुलवाकर उसमें पड़े पैसे से अपने लिए पिछली जिन्दगी से अलग एक नई जिन्दगी की शुरुआत करना चाहता है। वह अपने सुखद भविष्य की कल्पना में लीन हो जाता है तथा भोला से अपनी योजनाओं का वर्णन करता है। सोचता है कि 'आज का दिन उसकी जिंदगी का ऐतिहासिक दिन है। महानगर में एक बार फिर वह अपना कायाकल्प करने जा रहा है।... स्मृति से चिथड़ों और फिर समृद्धि तक...। 'ड वही, पृ. २४६.. वह ऐसा केवल सोच कर रह जाता है क्योंकि अगले पल ही उसकी हत्या कर दी जाती है। यह हत्या पारुल के भाई नवीन सोमपुरिया के सुपारी दिये जाने पर भोला के साथी द्वारा की जाती है। नील की हत्या पूँजीपतियों के 'यूज एण्ड थ्रो'

सिद्धान्त से हमें अवगत करा देता है।

नील की गति और दुर्गति दोनों के लिए एक स्त्री जिम्मेदार है लेकिन साथ-साथ बाजार भी है जो हर चीज़ को एक माल के रूप में प्रस्तुत करता है। नील की जिन्दगी में अनगिनत स्त्रियाँ आती हैं जिनमें कुमुद, ब्लोसम, यास्मीन, कुंतल राव, वरुणा, शिल्पी, वैशाली, उर्वशी, शिल्पा, मार्था, रोला, जुली, कृष्णा, सैदामिनी, करुणा, सुमंगला इत्यादि शामिल हैं। इनमें कुमुद नील को रतिक्रिया में दक्षता हासिल करने का पाठ पढ़ाती है। सभी स्त्रियों की रतिक्रिया को लेकर अपनी फैंटेसी है। यद्यपि नील फैंटेसी का चार्ज अलग से लेता है और वे खुशी-खुशी देती है। शिल्पा की फैंटेसी इन सबसे अलग है वह नील को औरत के रूप में पसंद करती है। पारुल उसके साथ भारतीय स्त्री की तरह समय गुजारना पसंद करती है। देखा जाये तो ये सभी स्त्रियाँ स्त्री के दमित वासनात्मक अभिव्यक्ति की श्रृंखला मात्रा प्रतीत होती हैं। ये सभी स्त्रियाँ अधेड़ है एवं उच्च वर्ग की है। बाजार इन्हें वह सुविध प्रदान करता है जिससे ये अपनी दबी यौन इच्छाओं को पूर्ति कर पाती हैं। नील स्वयं स्वीकार करता है कि यहाँ जिन्दा रहने के लिए कुछ न कुछ बेचने की हुनर का होना आवश्यक है। बाजार की यह नियति है जो बिकता है वह टिकता है। समाज में हर दिशा में प्रगति करती स्त्री आज बाजार प्रदत्त अवदान के उपभोग में भी पीछे नहीं है। बाजार ने स्त्री को उत्पीड़क की भूमिका में ला खड़ा किया है।

इस उपन्यास में कुमुद स्त्री-पुरुष संबंधों की विवेचना करती हुई नील से कहती है 'स्त्री और पुरुष वीणा और वादक के समान हैं।... निसंदेह ऊँचे स्तर की निर्दोष, कसी हुई वीणा भी रागोपलब्धि में अपना योगदान देती हैं। लेकिन अगर वादक में सही रागिनी की समझ और उँगलियों में सही झाला निकालने का कौशल नहीं है, तो? एक रागिनी फूटती है, तो कव्वे बोलने लगते हैं और दूसरी उभरती है जो हिरन आकर झूमने लगते हैं।'ड वही, पृ. ५९..गद्य भाषा में रूपक का ऐसा समन्वय सुरेन्द्र वर्मा की अपनी विशेषता है। उपन्यास में आये कामुक प्रसंग के लिए उन्होंने संस्कृतनिष्ठ तत्सम शब्दावलियों का प्रयोग किया है जिसे उपमा एवं रूपक के माध्यम से उभारा गया है।

शालु यहाँ मुम्बईया हिन्दी बोलती है जैसे - 'देवा रे, हनुमान जी का भक्ति इंग्लिश स्टाइल लाइन मारता है....।'ड वही, पृ. ७१.. 'मय चुडैल है क्या.... मय तेरा तप तोड़ रही है क्या...।'ड वही, पृ. ७१.. '...अब मय तुमको अक्खा महाभारत सुनाएगी...।'ड वही, पृ. ४१.. ओ देवा, क्या हो गया तेरे कूँ?... मय इदरीच रहती है। ऐसे वाक्यों के प्रयोग द्वारा उपन्यासकार शालु के चरित्र को जीवंत कर देता है। वे ऐसी भाषा रचते हैं जो घटना की वास्तविकता को हमारे समक्ष पुष्ट कर देता है। उनके उपन्यासों की भाषा कहीं-कहीं सरलता से कठिनता की ओर अग्रसर हो जाती है। कहा जा सकता है कि इस उपन्यास की भाषा अपनी समय एवं सीमा के अनुरूप है।

सुरेन्द्र वर्मा के उपन्यासों का कथ्य सदा विशेष होता है। 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' उपन्यास लीक से अलग संदर्भ को प्रस्तुत करने के कारण विशिष्ट है। राजेन्द्र यादव ने इसकी भूरी-भूरी प्रशंसा की है। 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' हिन्दी का पहला ऐसा उपन्यास है जिससे पुरुष वेश्या (जिगेलो) वृत्ति का इतना व्यापक और बारीक वर्णन मिलता है। उच्चवर्गीय स्त्री का व्यवसायिक स्वरूप यहाँ वर्णित है। इसके माध्यम से सुरेन्द्र वर्मा ने उच्च वर्ग में मौजूद स्त्री के काम वृत्ति का वर्णन किया है।

उपन्यास में दो दोस्त नील और भोला की कहानी है। नील और भोला दोनों का आखेट गरीबी ने कर रखा है। उपन्यासकार इन्हीं दोनों की कथा के माध्यम से जिगेलो एवं अंडरवर्ल्ड की हैरान कर देने वाली कथा कहता है। उपन्यासकार अगर कथा को 'नैरेटर' के रूप में सुनाता है तो आख्यानक की सक्रियता कहानी में बढ़ जाती है। यहाँ बातें केवल रख दी गई हैं जिसमें विवरण न के बराबर है। कहानी का 'नैरेटर' गौण प्रतीत होता है। 'अचानक नील को लगा, आज का दिन सामान्य नहीं है। मन में कहीं किरन की घोषणा से गुनगुनी-सी खुशी हुई, पर दूसरे ही पल आशंका की झुरझुरी भर गई।'ड वही, पृ. ९..यहाँ कथ्य को कथावाचक की ओर से स्पष्ट कर दिया गया है। अनावश्यक विस्तार नहीं दिये जाने के कारण कथा विन्यास घटना प्रधान प्रतीत होता है। कथा में शुरु से अंत तक फ्लैशबैक पद्धति का प्रयोग किया गया है।

उपन्यासकार ने घटनाओं के वर्णन में दृश्य विधान किया है इसका कारण उनका नाट्य साहित्य में मौजूद गहरी रूचि का होना है। 'उसे देखते ही पारुल डबडबाई

आँखों के साथ उठी और उसे बाँहों में भरते हुए उन्मत्त-सी चूमने लगी, 'नील' स्वर रुँध हुआ था, जैसे साँस लेने में मुश्किल हो रही हो। एक आँख की ओर से नन्हीं-सी बूँद फिसल आई थी।'ड वही, पृ. १५१..दृश्य विधान से पात्रों के मनोभाव स्वतः प्रकट हो जाते हैं। उपन्यासकार को किसी विवरण के द्वारा उसे समझाने की आवश्यकता नहीं होती है। उपन्यास में कामसूत्र के कुछ अंशों का उपयोग अपनी शैली में लेखक ने किया है। 'नखक्षतों की संख्या ठीक है, लेकिन वे आमतौर से जंघाओं तक ही सीमित रहते हैं। इस लिहाज से देह के पिछले हिस्सों की संभावनाएँ भी टटोली जा सकती हैं। जैसा कि मैंने समझाया था, दंतक्षत पहली किस्म की तुलना में ज्यादा गहन और संवेदनशील होते हैं। क्योंकि इसमें एक प्रकार का चुंबन भी मिला रहता है और दाँत का ख़ासा कामोद्दीपक इस्तेमाल होता है। संख्या और गहनता की दृष्टि से तुम्हारे दंतक्षत अभी अपर्याप्त ही कहे जाएँगे।'ड वही, पृ. ७३.. प्रसंगों को कथानुकूल बनाकर यहाँ व्याख्यायित किया गया है उसे फैंटेसी के अनगढ़ बिम्बों द्वारा प्रस्तुत करके भावोद्दीपक नहीं बनाया गया है।

उपन्यास में पारुल का स्त्री स्वरूप 'कार्पोरेट' जगत की उस स्त्री के सदृश है जो आर्थिक तौर पर स्वतंत्र होकर अपने नैतिक मूल्यों को स्वयं के अनुरूप परिभाषित करती है। पति के रहते हुए नील को अपने रखैल के रूप में रखना, अपने जरूरत की पूर्ति न होने की संभावना को देखते हुए उसे तबाह कर देना। पूँजी ने स्त्री को कितना निर्मम बनाया है इस तथ्य से लेखक हमें अवगत कराना चाहता है। पारुल का निर्णय उसका अपना है जो काम तृप्ति के साथ स्वयं को सहानुभूति देने वाला प्रतीत होता है। उपन्यास यह संकेत करता है कि काम तृप्ति के लिए प्राचीनकाल से पुरुष वर्ग ने सार्वजनिक तौर पर जिस व्यवस्था को बनाया है वर्तमान समय में स्त्रियाँ भी उससे पीछे नहीं हैं।

पारुल का स्त्रीत्व नील से तृप्त होकर सुखद कामना में लीन होकर स्वयं की खुशहाली की कामना में मग्न रहता है। वह हर प्रकार से केवल नील का उपयोग करना चाहती है। पारुल जब अपने पति की लंगड़ी बहन नलिनी, जो कि माँ नहीं बन सकती थी, उससे नील के विवाह के लिए कहती है तो उसके पीछे उसका मकसद साफ नजर आता है। 'नलिनी के साथ तुम्हारी शादी करा दूँ? पारुल के स्वर में उत्तेजना थी। तुम दोनों को अपने ही घर में रख लूँगी। जयंत मेरी यह शर्त मान जाएगा... समाज में हमें एक पर्दा मिल जाएगा।'ड वही, पृ. १७२.. यहाँ पुरुष स्त्री के आगे विवश दिखाई देता है। जिस प्रकार पूँजी का स्वामी पुरुष होकर स्त्री को दास बनाकर रखा वैसे ही स्त्री के हाथों में पूँजी होने से वह पुरुष को दासत्व में रखती है। पूँजी के इस खेल में स्थिति एक होती है केवल मनुष्य बदल जाते हैं। पूँजी एवं बाजार के बदौलत पुरुष ही नहीं स्त्री भी पुरुष का शोषण कर सकती है।

उपन्यास में पुरुष के द्वारा वेश्या कर्म करने की बारीकी एवं स्त्री द्वारा उसमें जो अपनायी जाने वाली फैंटेसी है वह यथार्थ के करीब है लेकिन इसमें अंग्रेजी फिल्म के दृश्यों की झलक मिलती है। जिन स्त्रियों को यहाँ पुरुष वेश्याओं (जिगेलो) का उपयोग कर देह तृप्ति के लिए दिखाया गया है ज्यादातर वे पूँजीपतियों के घराने से हैं। ये स्त्रियाँ उसी प्रकार अपनी काम भावना को शांत करती है जैसे मौका मिलने पर पुरुष वेश्याओं के द्वारा अपनी काम भावना को शांत कर लेते हैं। काम स्वभाविक प्रक्रिया है। वह अजर है। वह शाश्वत है। चाहे वह स्त्री में हो या पुरुष में। इस भाव की तृप्ति के लिए पूँजी द्वारा बाजार एवं उसके विकृत रूप का पोषण हितकर नहीं हो सकता है। उपन्यास में अंडरवर्ल्ड के कारनामे एवं बड़े-बड़े व्यवसायिक घराने से उनके संबंध को यथार्थपरक ढंग से दिखाया गया है। इन संबंधों के बीच पूँजी सेतु के सदृश है। संपूर्ण उपन्यास पर बाजारवाद का विकृत प्रभाव दिखाई देता है। बलात्कार के बाद नील को रात-रानी के कैबरे की याद आती है। 'आधी चेतना के पार नील को रातरानी का कैबरे याद आया, जब नर्तकी के पूरी तरह निर्वसन होकर एग्ज़िट लेने के बाद ध्वल बालोंवाले चाचाजान स्टेज पर आकर ब्रा और पेंटी समेटने लगते थे...। 'ड वही, पृ. २३३.. नील का इस घटना को याद करना न्यूनोक्ति (अंडरस्टेटमेंट्स) के अंतर्गत है जो मानव संवेदनाओं की गहन अभिव्यक्ति करने में समर्थ है।

उपन्यास में जिगेलो के जिन्दगी में व्याप्त कठिनाई एवं द्वंद्व का जीवंत वर्णन किया गया है। लेखक ने उसके जीवन के अन्तरंग से लेकर बाह्य क्षणों को व्यापक स्तर पर व्याख्यायित किया है। उसका उद्देश्य समाज को इससे

आगाह करना दिखाई देता है। भोला जब यह कहता है कि 'दुनिया की सारी लड़ाई बस यहीं सिमटकर रह गई है - पेट और उससे नीचे की जगह।'ड वही, पृ. १५८.. तो वह उपभोक्तावादी संस्कृति की सच्चाई को व्यंजित करता है। इसमें उपजे माँग की भयावहता को उपन्यास में भोला एवं नील के तर्क द्वारा समझा जा सकता है। नील को क्लाइंट द्वारा भेंट में मिली जिन विदेशी वस्तुओं का वर्णन है वह बृहत बाजार में सामाजिक इकाईयों के अतिशय सक्रियता का सूचक है। सतही तौर पर इस उपन्यास की कहानी किसी ' पाकेट बुक' में वर्णित उपन्यास की कहानी के समान है। कदाचित यही कारण है कि इसकी निन्दा कई आलोचकों द्वारा की गई है। लेकिन बाजार तंत्रा का बढ़ता प्रभाव उपभोक्तावादी संस्कृति का समाज में दखल एवं इसकी चपेट में आये उच्च तथा मध्य वर्ग पैसों के बल पर इच्छित वस्तु की प्राप्ति में लिप्त उच्चवर्गीय सदस्य और उपन्यास की लेखन कला इन सब कारणों से यह उपन्यास सराहनीय है। पारुल का स्त्री स्वरूप उपभोक्तावादी संस्कृति की उपज है जहाँ 'यूज एण्ड थ्रो' का सिद्धान्त लागू है।

पारुल पूँजीवादी व्यवस्था में उन गलत महत्त्वाकांक्षाओं का ही एक रूप है, जो अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिए साधनहीन, सामान्य पुरुष को बहकाने, फुसलाने या फिर उनका इस्तेमाल अपने अनुरूप करने से किसी भी प्रकार का परहेज नहीं करती है। बाजार ने स्त्री और पुरुष दोनों के अंदर उपभोग करने की क्षमता को बढ़ा दिया है। वर्तमान समय में उपभोक्तावादी संस्कृति ने भोक्ता और भोग्य दोनों को बढ़ावा दिया है। बाजार ने सब कुछ उपलब्ध कराने का कार्य किया है। बदलते परिवेश में स्त्री आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होकर स्वयं के लिए मुक्त होने के मार्ग तलाश कर उस पर चलने की सफल कोशिश कर रही है। उद्योग जगत की स्त्रियाँ पुरुषों के साथ बराबरी की सदा से पक्षधर रही है। वे उन सब मार्गों को चुनती है जिन पर पुरुष सहजता से चलते हैं। अपनी आकांक्षा के पारावार को पार करने के लिए पारुल नील का उपयोग करती है जब नील उससे अलग होने की बात करता है तो वह उसे बर्बाद कर डालती है। 'दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता' उपन्यास में स्त्री के ऐसे स्वरूप को दिखाया गया है, जिनमें बाजार के कारण विलास की क्षमता का विकास हुआ है। अतः इतना अवश्य कहा जा सकता है कि उच्च वर्ग की स्त्रियाँ पुरुषों के समान ही स्वेच्छाचारिता को अपनाने लगी हैं जिसे पूँजी एवं बाजार ने बढ़ावा दिया है।

संदर्भ

भूमंडलीकरण और हिन्दी उपन्यास - पुष्पपाल सिंह, पृ. १९४.

वही, पृ. १९४.

दो मुर्दों के लिए गुलदस्ता - सुरेन्द्र वर्मा, पृ. १०५.

वही, पृ. १०४.

वही, पृ. १०६.

वही, पृ. १२१.

वही, पृ. १२१.

वही, पृ. १२२.

वही, पृ. १२२.

वही, पृ. १३५.

वही, पृ. १३६.

वही, पृ. १५३.

वही, पृ. १६४.

वही, पृ. १७७.

वही, पृ. २३३.

वही, पृ. २३५.

वही, पृ. २४६.

वही, पृ. ५९.

वही, पृ. ७१.

वही, पृ. ७१.

वही, पृ. ४१.

वही, पृ. ९.

वही, पृ. १५१.

वही, पृ. ७३.

वही, पृ. १७२.

वही, पृ. २३३.

वही, पृ. १५८.

''स्वातंत्र्य यज्ञ में 'आहुति'''

कृष्ण कुमार जायसवाल

शोधार्थी,
हिन्दी एवं आधुनिक भारतीय भाषा विभाग,
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
प्रयागराज- 211002
ई-मेल- kris3hna33@gmail.com
मो.-९४५०८२७७९७

शोध सारांशः भारतीय इतिहास में स्वतंत्रता आंदोलन बहुत बड़ी घटना है। परतंत्रता का दुःख क्या होता है, जो झेलता है वही व्यक्ति समझ सकता है। भारत जब विदेशी ताकतों के अधीन था, तब इसने अपनी संस्कृति, सभ्यता, धरोहरों एवं मूल्यों को बहुत हद तक खोया। न जाने कितने भारतीयों ने स्वतंत्रता प्राप्ति हेतु अपने प्राणों की आहुति दे दी। उसी क्रम में एक समय ऐसा आया जब विदेशी ताकतों ने भड़का कर हमें विभिन्न धर्मों, जातियों एवं सम्प्रदायों में बाँटने की कोशिश की और लगभग बाँट भी दिया। हम विदेशी परतंत्रता से मुक्ति की बात भूलकर आपस में ही गुथने लगे, तब देश के अनेक समाज सुधारक और साहित्यकार निकलकर सामने आये, जिन्होंने सांस्कृतिक समन्वयता, राष्ट्रीय एकता, हिन्दू-मुस्लिम एकता एवं देश हित को सर्वोपरि रखने की वकालत की। उन साहित्यकारों में हरिकृष्ण 'प्रेमी' जी का नाम उल्लेखनीय है, जिन्होंने न केवल कौमी एकता की बात की बल्कि जनमानस में देश प्रेम, वीरता, त्याग, एक-दूसरे की संस्कृति एवं आचार-विचार के प्रति सम्मान की भावना संप्रेषित की। उनका 'आहुति' नाटक इसका जीवंत उदाहरण है। 'आहुति' नाटक के माध्यम से 'प्रेमी' जी ने समाज में यह संदेश देने का प्रयत्न किया है कि वीरता की कोई जाति नहीं होती, कोई धर्म नहीं होता और अपनी मातृभूमि की स्वतंत्रता हेतु लड़ने की कोई उम्र नहीं होती। जो अपनी मातृभूमि के लिए लड़ रहा है वह एक ही कौम का है, उसकी संस्कृति, जाति, धर्म एवं सम्प्रदाय एक ही है। मातृभूमि के लिए अपने प्राणों की आहुति दे देना बड़े ही सम्मान और गर्व की बात है।

बीज शब्द ः 'स्वतंत्रता', 'संस्कृति', 'राष्ट्रीयता', 'मातृभूमि', 'आहुति'।

भारतीय स्वाधीनता संग्राम के इतिहास की ओर मुड़ने पर हमें क्रान्तिकारी गतिविधियों को तेज करने में साहित्य का योगदान उल्लेखनीय दिखाई देता है। स्वाधीनता आंदोलन के दौरान जहाँ एक तरफ कवि और गीतकार राष्ट्रीय धारा से सम्बन्धित कविताओं और गीतों का सृजन कर रहे थे तो दूसरी तरफ अन्य विधाओं के रचनाकार अपनी लेखन विधाओं से जन-मन को आंदोलित करने का काम कर रहे थे। कहानीकार अपनी कहानियों में राष्ट्र को सर्वोपरि बताते हुए जहाँ एक तरफ राष्ट्रीय चेतना का संचार कर रहे थे तो दूसरी तरफ अन्य विधाओं, जैसे- नाटक, उपन्यास, संस्मरण, रेखाचित्र आदि में भी राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन का प्रभाव स्पष्ट दिखाई दे रहा था। इस क्रम में स्वाधीनता आंदोलन काल के नाटककारों की ओर देखने पर उन्हें भी हम राष्ट्रीय भावना से पर्याप्त ओत-प्रोत पाते हैं। इन नाटककारों ने अपने नाटकों के माध्यम से भारतीय स्वाधीनता आंदोलन को दिशा देने का कार्य किया।

नाटक विधा के माध्यम से राष्ट्रीय चेतना का प्रसार करने में हरिकृष्ण 'प्रेमी' का नाम बड़े सम्मान से लिया जाता है। 'प्रेमी' जी के नाटकों में 'प्रकाश स्तम्भ', 'रक्षाबंधन', 'शिवा साधना', 'प्रतिशोध', 'आहुति', 'अमर आन', 'उद्धार', 'स्वप्न-भंग' आदि प्रमुख हैं। इन नाटकों में 'प्रेमी' जी ने

इतिहास से कथावस्तु और विषय का चयन कर स्वाधीनता आंदोलन के दौर में उनकी प्रासंगिकता को रेखांकित कर उन्हें नाटकों का रूप दिया। ऐतिहासिक नाटकों की दृष्टि से 'प्रेमी' जी जयशंकर प्रसाद की परम्परा के नाटककार थे। आचार्य शुक्ल अपने इतिहास ग्रन्थ में 'प्रेमी' जी के विषय में लिखते हैं- ''इस तृतीय उत्थान के बीच हमारे वर्तमान नाटक क्षेत्र में दो नाटककार बहुत ऊँचे स्थान पर दिखाई पड़े- स्व. जयशंकर प्रसाद जी और श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी'। दोनों की दृष्टि ऐतिहासिक काल की ओर रही है। प्रसाद जी ने अपना क्षेत्र प्राचीन हिन्दूकाल के भीतर चुना और 'प्रेमी' जी ने मुसलिम काल के भीतर। 'प्रसाद' के नाटकों में 'स्कंदगुप्त' श्रेष्ठ है और 'प्रेमी' के नाटकों में 'रक्षाबंधन'।''१ शुक्ल जी, प्रेमी जी के नाटकों को प्रसाद के नाटकों की तुलना में श्रेष्ठ मानते हैं। उनके सन्दर्भ में वह आगे लिखते हैं- ''नाटकों का प्रभाव पात्रों के कथोपकथन पर बहुत कुछ अवलम्बित रहता है। श्री हरिकृष्ण 'प्रेमी' के कथोपकथन 'प्रसाद' जी के कथोपकथनों से अधिक नायकोपयुक्त हैं। उनमें प्रसंगानुसार बातचीत का चलता स्वाभाविक ढंग भी है और सर्वहृदयग्राह्य पद्धति पर भाषा का मर्मव्यंजक अनूठापन भी। 'प्रसाद' जी के नाटकों में एक ही ढंग की चित्रमयी और लच्छेदार बातचीत करने वाले कई पात्र आ जाते हैं। 'प्रेमी' जी के नाटकों में यह खटकने वाली बात नहीं मिलती।''२

'प्रेमी' जी के नाटकों में 'आहुति' एक प्रमुख नाटक है। यह एक ऐतिहासिक महत्त्व का नाटक है, जिसकी कथावस्तु रणथम्भौर के शासक 'हम्मीर सिंह' और दिल्ली सम्राट 'अलाउद्दीन' के युद्ध से ली गई है। स्वाधीनता काल में कौमी एकता को बनाये रखने और आम जनमानस में राष्ट्रीय चेतना की जागृति की विशेष आवश्यकता महसूस हो रही थी। ऐसे में इस कहानी का आधार बनाकर 'प्रेमी' जी ने जहाँ एक तरफ हिन्दू-मुस्लिम एकता को बल दिया तो दूसरी तरफ राष्ट्रीय स्वाभिमान की रक्षा के प्रति लोगों को आंदोलित करने का कार्य भी किया। आचार्य शुक्ल ने जिस समय हिन्दी साहित्य के इतिहास की रचना की उस समय तक इस नाटक का सृजन नहीं हुआ था, अन्यथा शुक्ल जी इस नाटक की चर्चा भी अपने इतिहास ग्रन्थ में अवश्य करते। डॉ. रामचंद्र तिवारी, 'प्रेमी' जी को प्रसाद की परम्परा का नाटककार स्वीकार करते हुए उन्हें राष्ट्रीय धारा का नाटककार मानते हैं। वे लिखते हैं- ''हरिकृष्ण प्रेमी के नाटक प्रसाद की परम्परा में माने जाते हैं, यद्यपि इनमें भारतीय इतिहास का क्रमबद्ध रूप नहीं प्रस्तुत किया गया है, किन्तु युग-विशेष से सम्बद्ध ऐतिहासिक सामग्री की रक्षा तथा युगानुकूल सांस्कृतिक वातावरण उपस्थित करने की चेष्टा अवश्य की गई है। प्रसाद की भाँति हरिकृष्ण प्रेमी भी राष्ट्रीय एकता का प्रतिपादन और समर्थन करना चाहते हैं।''३

वस्तुतः भारतीय स्वाधीनता संग्राम काल हिन्दी नाटकों का आरम्भिक काल है। स्वाभाविक है कि प्रत्येक नाटककार अपने नाटकों में नया रूप देने के लिए भिन्न- भिन्न प्रयोग कर रहा था। यही नहीं उसके सामने विषयों का भी अंबार लगा था। मनोवैज्ञानिक पक्ष, सामाजिक पक्ष, राजनैतिक पक्ष, पारिवारिक समस्याओं और स्वाधीनता संग्राम पर केंद्रित नाटक पर्याप्त मात्रा में लिखे जा रहे थे। ऐतिहासिक घटनाओं को केन्द्र बनाकर जयशंकर प्रसाद ने नाटकों का सृजन किया। उनके नाटक और नाटकों में प्रयुक्त गीत जन-जन में स्वाधीनता के प्रति लोगों को आंदोलित करने के साथ राष्ट्रीय गौरव का जागरण कर रहे थे। उन्हीं की परम्परा में 'प्रेमी' जी ने भी ऐतिहासिक घटनाओं को अपने नाटकों की विषयवस्तु बनाया और गीतों के माध्यम से उनमें रोचकता भरी। प्रसाद जी और 'प्रेमी' जी के नाटकों के ऐतिहासिक आधारों में अन्तर बस इतना है कि प्रसाद जी ने अपने नाटकों की भूमि प्राचीन इतिहास से तैयार की तो प्रेमी जी की आधार भूमि मध्यकालीन इतिहास बनी। 'प्रेमी' जी के नाटक हिन्दू-मुस्लिम एकता की दृष्टि से भी रेखांकित करने योग्य हैं। 'प्रेमी' जी के हिन्दू-मुस्लिम एकता के सन्दर्भ में ऐतिहासिक नाट्य लेखन के पीछे एक घटना है जिसे वह खुद बताते हैं- ''पंजाब में ज्ञान की बाँसुरी और कर्म का शंख फूँकने वाली बहन कुमारी लज्जावती ने एक बार मुझसे कहा था कि हमारे भारतीय साहित्य में- हिन्दी और उर्दू तथा अन्य प्रान्तीय भाषा के साहित्य में- हिन्दुओं और मुसलमानों को अलग करने वाला साहित्य तो बहुत बढ़ रहा है, उन्हें मिलाने का प्रयत्न थोड़े बहुत साहित्यकार कर रहे हैं। तुम्हे इस दिशा में प्रयत्न करना चाहिए। इसी लक्ष्य को सामने रख उन्होंने मुझे ऐतिहासिक नाटक लिखने का आदेश दिया।''४

जैसा कि पहले ही उल्लेख है कि इस नाटक की कथावस्तु रणथम्भौर के शासक 'हम्मीर' और दिल्ली के शासक 'अलाउद्दीन' खिलजी से युद्ध पर केन्द्रित है। इस कहानी में शरणागत 'मीर महिमा' की रक्षा और रणथम्भौर के गौरव को बचाने के लिए हम्मीर सिंह के चाचा 'रणधीर सिंह' उनके दो पुत्रों- जय और विजय तथा वहाँ की राजपूत

रानियों की जौहर द्वारा दी गई 'आहुति' को चित्रित किया गया है। इस तरह की कथाएँ तत्कालीन समय में आम जनमानस में राष्ट्रीय गौरवबोध का संचार कर रही थीं। संकटकाल में लोगों को उनका बल याद दिलाने के लिए उनके गौरव की याद दिलाना जरूरी होता है जिसे हमारे साहित्यकार बखूबी समझ रहे थे। इस सन्दर्भ में 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो सकती है' नामक निबन्ध में भारतेन्दु द्वारा कही उक्ति 'का चुप साधि रहा बलवाना' रेखांकित करने योग्य है।

किसी नाटक के संवाद उसके प्राण हुआ करते हैं। प्रेमी जी ने अपने इस नाटक में संवादों पर विशेष ध्यान दिया है। नाटक के संवाद और पात्रों की क्रियाशीलता इसे और भी रोचक बनाते हैं। उनके संवादों में राष्ट्र के प्रति खुद को बलिदान करने की भावना अत्यन्त प्रबल दिखाई देती है। राष्ट्रीय अस्मिता और गौरव को अपने प्राणों से बढ़कर मानने का भाव नाटक के पात्रों में प्रमुख रूप से दिखाई देता है। राष्ट्र की प्रत्येक वस्तु, जन से लगाव इस नाटक के संवादों में दिखाई देता है। अलाउद्दीन द्वारा राजपूत स्त्रियों को गलत दृष्टि से देखे जाने पर मीर महिमा द्वारा खिलजी का विरोध किया जाता है। 'मीर महिमा' का यह कथन- ''मैं मौका नहीं चाहता। बहनें किले में दाखिल हो चुकी हैं। मेरा काम हो चुका। हरेक मर्द का फर्ज है कि वह औरत को बचावे। औरत, चाहे वह किसी कौम की हो, उसकी इज्जत करनी चाहिए। आप यही सीख सकें तो दुनिया में अपना नाम रोशन कर जावें। आप में क्या नहीं है? और तो और, वह ताकत है जिसके आगे हिन्दुस्तान का हरेक राजा काँपता है। आप की आँख की त्यौरी से ऊँचे-ऊँचे किले झुक जाते हैं। जहाँपनाह, आप इन्सान बनें। मैं जाता हूँ। मेरे भाई का ख्याल रखियेगा।''५ एक व्यक्ति का अपने राष्ट्र के लोगों के साथ पारिवारिक बोध के साथ जोड़ता है। यहाँ यह उल्लेख करना आवश्यक है कि मीर महिमा का रणथम्भौर के राजा हम्मीर के परिवार के साथ जाति-पाँति और धर्म से परे राष्ट्रीयता का बोध ही राष्ट्र को एक सूत्र में बाँध रहा था।

स्वतंत्रता संघर्ष के दौर में राष्ट्रीय एकता को बनाये रखना बड़ी चुनौती थी। ऐसी परिस्थिति में अंग्रेजों से संघर्ष तो दूर की बात, देश गृहयुद्ध की अग्नि में भी जल सकता था। जाति-पाँति, धर्म, भाषा, संस्कृति को लेकर युद्ध स्वाभाविक हो सकता था। तब आवश्यकता थी सबको जोड़कर रखने की। एकता से ही राष्ट्र को सुरक्षित रखा जा सकता था, जिसे साहित्यकार समझते थे। मीर महिमा का विधर्मी होने की वजह से भूरिसिंह राठौर ने अपने साथ शामिल होने पर विरोध किया किन्तु राजा हम्मीर ने उन्हें पर्याप्त सम्मान दिया। उनका मानना था कि वीरता के क्षेत्र में उनकी कौम सिर्फ 'वीरकौम' होती है। वीर व्यक्ति किसी भी जाति या धर्म का हो, उसकी पहचान सिर्फ उसकी वीरता है- ''हः हः हः! तुम डर गए, भूरिसिंह जी राठौर! जाति में शामिल होने से मेरा मतलब यह नहीं कि उन्होंने हमारा धर्म स्वीकार कर लिया है। सभी बहादुरों की एक जाति है। चाहे मुसलमान हो, चाहे हिन्दू, चाहे किसी और जाति का, जो वीर है वह हमारा सगा है, वही हमारी जाति की है। इसी दृष्टिकोण से मैंने मीर महिमा शाह को अपना भाई बनाया है। जब से महिमा शाह यहाँ आये हैं, उनकी शक्ति, चातुर्य और सज्जनता ने मुझे उनका अधिकाधिक प्रेमी बनाया है।''६

स्वतंत्रता आहुति माँगती है। स्वाधीनता के समर में परिवार का मोह, धन- दौलत, यश आदि की आकांक्षा को ताक पर रखकर सर्वस्व आहुति करने की आवश्यकता होती है। सर्वस्व अर्थात प्राण तक। ऐसी स्थिति में सबसे कठिन होता है परिजनों को समझाना। मनुष्य का स्वभाव भावुक होता है। भावनाओं में बहकर परिजन अश्रुपात करने लगते हैं जिसे देखकर किसी का भी हृदय द्रवित हो सकता है। ऐसी स्थिति में यदि परिजन सहर्ष ही स्वातंत्र्य यज्ञ में अपने परिजन की आहुति देना स्वीकार कर लें तो योद्धा का मनोबल बढ़ जाता है। शेष भारत के अलाउद्दीन के कब्जे में जाने के बाद मात्र रणथम्भौर ही स्वतंत्र बचा था किन्तु परिस्थितियों वश उसकी स्वतंत्रता पर भी खतरा दिख रहा था। ऐसी स्थिति में 'चपला' का भाई दूज के अवसर पर टीका और यह कथन उल्लेखनीय है- ''और मैं भी तिलक करूँगी। मैं सर्वस्वहीना हूँ। मेरे पास न रोली है, न चन्दन। मेरी तलवार में जो रक्त लगा हुआ है उसी से मैं टीका करूँगी। बदले में हार नहीं, सिर माँगूंगी। बोलो कुमार, दोगे? साहस हो तो आगे बढ़ो।''७ ऐसे कथनों से किसी शूरवीर का हृदय निश्चित ही स्वतंत्रता की रक्षा के लिए फड़क उठेगा। हुआ भी ऐसा ही। चपला ने अपने रक्त से राजकुमारों के भाल पर तिलक किया और वह युद्धभूमि में सहर्ष चले गए।

स्वतंत्रता मनुष्य की प्राथमिक आवश्यकता है। स्वतंत्रता के बिना न तो भोजन अच्छा लगता है, न अच्छे वस्त्र और न ही कोई अन्य कार्य। पराधीन मनुष्य हमेशा स्वतंत्र होने के मार्ग की तलाश करता रहता है। गोस्वामी जी ने मानस में 'पराधीन सपनेहुँ सुख नाही' कहकर इस बात

का समर्थन किया है। प्रत्येक व्यक्ति या पशु तक अपने को स्वतंत्र रखना चाहता है। शिवमंगल सिंह 'सुमन' जी की एक कविता 'हम पंछी उन्मुक्त गगन के' में पक्षियों ने सोने के पिंजरे में भी रहना स्वीकार नहीं किया है। 'मीर गभरू' का यह वाक्य इस बात को मजबूत करता है- ''कौमों से कौमों की लड़ाई नहीं होती जमाल! यह तो इन्सान की ख्वाहिशें लड़ती हैं। अलाउद्दीन इस्लाम नहीं है, हम्मीर हिन्दू धर्म नहीं है। एक है दिल्ली का बादशाह और एक रणथम्भौर का राजा। दिल्ली का बादशाह रणथम्भौर के राजा को अपना गुलाम बनाना चाहता है, और वह अपनी आजादी बनाये रखना चाहता है।''८

स्वतंत्रता से बड़ा कोई भी सुख नहीं और परतंत्रता से बढ़कर कोई पीड़ा नहीं। गुलाम रहकर एक लम्बे जीवन से एक छोटा किन्तु स्वतंत्र जीवन ज्यादा बेहतर माना गया है। भगत सिंह, चंद्रशेखर आजाद सरीखे क्रान्तिकारियों का जीवन इसका उदाहरण है, जिन्होंने पच्चीस वर्ष से भी कम आयु का जीवन जिया किन्तु अपने यश को चिर कर लिया। राजा हम्मीर अपने लम्बे जीवन की अपेक्षा एक दिन खिलने वाले उन फूलों का जीवन ज्यादा बेहतर मानते हैं जो हमेशा गर्व से खिले रहते हैं। उनका यह कथन- ''बहार! हाँ भाई! जिन्दगी की बहार लूट रहा हूँ। इन फूलों को देखो, जिनका सिर्फ एक दिन का जीवन है, किस अभिमान के साथ मुस्कुरा रहे हैं! भाई, मरना तो है ही, क्यों न जब तक जिया जाए हँस-हँस कर जिया जाय।''९ यहाँ रेखांकित करने योग्य है। इस प्रकार के वाक्य क्रान्तिकारियों के बीच एक नई स्फूर्ति और ऊर्जा उत्पन्न कर रहे थे।

स्वतंत्रता जब आहुति माँगती है तो रणबाँकुरों के लिए परिवार, धन आदि का मोह नहीं रहता। उनके लिए पूरा देश ही परिवार है। उनका जीवन मात्र अपने कुटुम्बजनों के लिए नहीं, केवल देश के लिए समर्पित रहता है। इसे प्रेमी जी ने बखूबी समझा है। तभी तो उन्होंने अपने नाटक के संवादों में ऐसे भावों का प्राकट्य जोर-शोर से किया है। 'मीर महिमा' और 'हम्मीर' के मध्य संवाद के ये दो वाक्य यहाँ उल्लेखनीय हैं-

''मीर महिमा- लेकिन इन जिगर के टुकड़ों को उस खतरनाक लड़ाई में भेजने की क्या जरूरत है?

हम्मीर- अब आवश्यकता आ पड़ी है कि हम अपनी मूल्यवान से भी मूल्यवान वस्तु का भी मोह न करें। जन्मभूमि आत्म-त्याग और बलिदान माँगती है।''१०

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि उस कालखण्ड के दौरान प्रेमी जी द्वारा लिखे गए यह नाटक वास्तव में स्वाधीनता आंदोलन को प्रभावित करते हुए पाठकों के भीतर राष्ट्रप्रेम का संचार कर रहे थे। उन्होंने नाटक की कथावस्तु भले ही मध्यकालीन इतिहास से उठाई हो किन्तु उनका उद्देश्य तत्कालीन राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन को धार देने के साथ-साथ हिन्दू-मुस्लिम के बीच उपजे साम्प्रदायिक समस्याओं एवं जातिगत भेदभाव को नष्ट करना एवं उन्हें एकजुट कर देश में शान्ति की स्थापना करना था। उन्होंने भारतीय इतिहास में अपने नाट्यलेखन के माध्यम से जो सांस्कृतिक समन्वय की भावना जनमानस में फैलाई उससे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन को भी एक नई दिशा और गति मिली। उनके द्वारा लिखा गया यह नाटक 'आहुति' भी उसी कड़ी का एक हिस्सा है। 'प्रेमी' जी के 'रक्षाबंधन' नाटक की भाँति इसने उतनी प्रसिद्धि तो नहीं पाई किन्तु राष्ट्रीयता एवं सांस्कृतिक समन्वयता के सम्बन्ध में इसका महत्त्व 'रक्षाबंधन' नाटक से कम नहीं है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची :

१. आचार्य रामचंद्र शुक्ल- हिन्दी साहित्य का इतिहास, प्रयाग पुस्तक सदन
इलाहाबाद-संस्करण २०१५, पृष्ठ ३२६

२. वही- पृष्ठ ३२७

३. डॉ. रामचंद्र तिवारी- हिन्दी का गद्य-साहित्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन
वाराणसी , संस्करण २०२२, पृष्ठ ४७३

४. हरिकृष्ण 'प्रेमी'- शिवा-साधना, हिन्दी भवन, लाहौर, दूसरा संस्करण, अप्रैल १९३९,
पृष्ठ ख व ग

५. हरिकृष्ण 'प्रेमी'- आहुति (नाटक)- हिन्दी भवन, इलाहाबाद, संस्करण १९५१- पृष्ठ
९-१०

६. वही- पृष्ठ २०-२१

७. वही- पृष्ठ ३४

८. वही- पृष्ठ ३९

९. वही- पृष्ठ ५२

१०. वही- पृष्ठ ६४

हिन्दी उपन्यासों में महानगरीय जीवन और दफ्तरी परिवेश

मोनीश कमल

शोधार्थी, दिल्ली,विश्वविद्यालय
मो.- ८५०५९१३२१२
ई-मेल-sharmamonish3aug@gmail.com

सारांश

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है, जो समय और मांग के अनुसार प्रत्येक वस्तु में अपेक्षित होता है। इन्हीं परिवर्तनों के क्रम से गुजरते हुए, 'व्यक्ति और समाज' का विकास हुआ है। वर्तमान युग जिसे हम आधुनिक युग भी कहते हैं, ये तकनीकी रूप से मानव सभ्यता का चरम माना जाता है। वैश्विक पटल हुए औद्योगिक एवं तकनीकी बदलावों से सभी देशों की सामाजिक ,आर्थिक एवं राजनैतिक संरचना में परिवर्तन आया, जिससे भारत भी अछूता नहीं रहा। बदलते परिवेश के कारण नगर-महानगर जीवन के केंद्र बन गए। एक तरफ जहाँ ये महानगर जीवन की आपार संभावनाएं एवं सुख-सुविधाओं और संसाधनों से समृद्ध थे, वहीं दूसरी ओर ये सामाजिक रूप से खोखले साबित हुए। आजीविका की तलाश में भटकते व्यक्ति को यहाँ नौकरी तो मिल जाती है, लेकिन इसके साथ ही वो महानगरों मे एक मशीन की तरह यांत्रिक जीवन जीने को विवश हो जाता है। महानगर में आने के बाद व्यक्ति को महानगरीय जीवन से संबंधित अनेक समस्याओं का सामना करना कड़ता है। इन्हीं समस्याओं को केंद्र में रखते हुए हिन्दी उपन्यासों के माध्यम से महानगरीय जीवन और दफ्तरी परिवेश में व्याप्त भीड़, ऊब, घुटन, संत्रास, अजनबीपन, आवास, परिवारिक संबंध, अवैध संबंध, जैसे अनेक समस्याएं को समाज के सामने प्रकट करने प्रयास किया है।

बीज शब्द : आधुनिक, औद्योगिक, तकनीक, महानगर, दफ्तरी, परिवेश

शोध आलेख

बीसवीं सदी का समय, वैश्विक स्तर पर तकनीक के क्षेत्र में एक क्रांति लेकर आया। वैश्विक स्तर पर हुई इस क्रांति ने पूरे विश्व को एक नए रूप में प्रस्तुत किया। बीसवीं सदी के मध्य भारत स्वतंत्र हुआ, जिसके फलस्वरूप भारत सरकार के सामने देश के विकास की विकराल चुनौतियाँ खड़ी थी। स्वंतत्रता प्राप्ति के साथ ही तकनीक में हो रहे बड़े परिवर्तनों के कारण हम भी विकास की गति पकड़ने लगे, जिसके कारण नगर- महानगर जीवन के केंद्र बन गए। कृषि संसाधनों के अभाव, फसल की कम पैदावार, बाढ़ और सूखे जैसे अनके समस्याओं के कारण छोटे किसान मजदूर बन गए, जो शुरुआत में बड़े किसानों की ज़मीन पर खेती करते थे, बाद में बेहतर आजीविका की तलाश में शहर की ओर पलायन कर गए। महानगर रोजगार के केंद्र होने के कारण, इन कारखानों, उद्योगों और दफ्तरों में इनकी खपत होने लगी। मालिक से मजदूर

बना ये वर्ग जीवन की तलाश में बिना शर्त कार्य करने के लिए विवश था। ओद्योगिक करण ने शहर को एक ऐसी मशीनी युग में प्रवेश कराया जहां व्यक्ति भी मशीन बनकर उभरा। शहर की इस यांत्रिकता और व्यस्तता में व्यक्ति आत्मकेंद्रित होता चला गया। बदलते परिवेश ने देश के सामाजिक ,आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनैतिक स्वरूप को काफी हद तक प्रभावित किया है। आधुनिक सामाज में एक नए वर्ग का उदय हुआ ,जो रोजगार के लिए जगह-जगह भटक रहा था। ये वही वर्ग है, जो एक समय में भारतीय अर्थव्यवस्था कि रीढ़ की हड्डी हुआ करता था। मालिक के रूप में, सालभर कृषि कार्य द्वारा देश को अनाज और आर्थिक रूप से समृद्ध करता था, परंतु अनेक कारणों से आज ये वर्ग अपनी जमीन और घरों को छोड़ श्रमिकों के रूप में, शहरों में आजीविका की तलाश में भटके रहें हैं। जैसे-जैसे कृषि क्षेत्र सिमटता गया पलायन बहुत जोरों पर होने लगा, इस पलायन के अनेक कारण थे जैसे- रोजगार,शिक्षा, निर्धनता,शोषण एवं स्वस्थ। गाँव या कस्बे में रहने वाले लोगों को महानगरों एवं शहरों में इन सभी समस्याओं का समाधान दिखता था, जिस कारण महानगरों में जनसंख्या विस्फोट हुआ। इस संदर्भ में 'गणेश शंकर विद्यार्थी' का मत है कि - 'नगर की सबसे पहली खराबी उसका बहुत अधिक आदमियों का निवास स्थान होना ही है।'१ शहरों में बढ़ती आबादी ने इन महानगरों में असंतुलन पैदा किया। जनसंख्या के विस्फोट से इन नगरों में रहने वाले मूल लोगों को ही मूलभूत आवश्यकताओं से झूझना पड़ा, जिस कारण अनेक प्रकार की समस्याओं का जन्म हुआ।

आधुनिकता की दौड़ और मौलिक संसाधनों के दोहन में मनुष्य इतनी तेजी से दौड़ रहा है कि वह अपनी वास्तविक पहचान खोता जा रहा है। वह पहले की अपेक्षा अधिक जटिल जीवन जीने के लिए विवश है। आधुनिक युग की दुनिया जितनी चमकदार दिखती है, उसकी वास्तविकता उतनी ही भयावह है। आज का व्यक्ति इतना आत्मकेंद्रित व स्वार्थी हो चुका है कि उसे गलत और सही का फर्क नजर नहीं आता। जिस सभ्यता में आज हम और आप रह रहे हैं, वह दिशाहीन सी प्रतीत होती है। भारतीय सभ्यता, संस्कृति, परंपरा, नैतिकता और आचार-विचार इन सभी मूल्यों को आधुनिकता ने अपनी चपेट में ले लिया है। आज का व्यक्ति स्वार्थ, प्रलोभन, अनैतिकता, अनाचार और शोषण के आधार पर अपना विकास चाहता है। वर्तमान समाज की संकल्पना अत्यंत दुखद एवं त्रासदीजनक है। आज का समाज एक ऐसे युग में प्रवेश कर चुका है, जहाँ नैतिकता सांस्कृतिक मूल्य, सभ्यता और मानवीय मूल्यों का पैमाना बदल जाता है। इस प्रकार की मूल्यहीनता से समस्याएं भारतीय समाज में अपना विकराल और भीषण रूप में आकार बड़ा रही हैं। मानवीय अधिकारों का हनन, आर्थिक शोषण, आजीविका का संकट, सामाजिक अस्मिता, ईर्ष्या, द्वेष, भ्रष्टाचार और लालच जैसी समस्याओं से आज का मनुष्य घिर चुका है। इन समस्याओं की उपज है कि आज मनुष्य अपने विकास के लिए दूसरों के अधिकारों और हकों को छीन रहा हैं। दम तोड़ते मानवीय मूल्य और संवेदनहीन होता मनुष्य एक कुपोषित समाज की ओर संकेत करते हैं। आज भी ग्रामीण परिवेश की अपेक्षा शहरी परिवेश में मानवीय मूल्यों का पतन चरम पर है। बदलते स्वरूप में भारतीय समाज पश्चिमी सभ्यता की उस अंधी दौड़ में दौड़ने को विवश है, जिसमें मानवीय मूल्यों के पतन के साथ एक खोखली और दिशाहीन सभ्यता का विकास होगा।

महानगरीय जीवनशैली को व्यस्तता का पर्याय कहा जाता है, यहाँ हर कोई अपने कार्य-व्यापार और निजी जीवन में व्यस्त है। यही व्यस्तता इस महानगरीय व्यक्ति को आत्मकेन्द्रित एवं संवेदनहीन बनती जा रही है। वह अपने कार्य में इतना व्यस्त है कि दुनिया और समाज से अपने को काटे बैठा है। संसाधनों के विकास और परिवर्तनों से, एक तरफ जहाँ इन महानगरों ने रोजगार मुहैया कराया वहीं दूसरी तरफ ये शोषण और अधिकार हनन के केंद्र भी बनते गए। शहरी सभ्यता दफ्तरी कामकाज से प्रेरित होती है, यहाँ घर में बच्चों को छोड़ परिवार के सभी लोग आमदनी के लिए बाहर जाते है, क्योंकि महानगरों का जीवन इतना महँगा ओर खर्चीला है कि एक व्यक्ति उसका सारा खर्च नहीं उठा सकता। शहरी सभ्यता पूंजी केंद्रित होती है, शहर के संबंध में मुझे एक लोकोक्ति ध्यान आती है - 'बाप बड़ा न भैया,सबसे बड़ा रुपया'।२ यहाँ कोई किसी का बाप-भाई नहीं होता मूल रूप से ये शहर के सामाजिक रूप को बताने का प्रयास है कि यहाँ

सभी संबंधों के ऊपर धन का अपना आधिपत्य है। इन घने आबादी वाले शहरों में आपको लाखों की भीड़ सामान्य तौर पर देखने को मिल जाएगी, मगर जब बात इंसान और इंसानियत पर आती है तो ये चीज शहरों के लिए बहुत दुर्लभ है। इस तरह के यांत्रिक वातावरण और चमकदार संस्कृति में विरला ही कोई व्यक्ति होगा, जो अपने सामने वाले व्यक्ति के दुख दर्द से परिचित होगा, नहीं तो इन शहरों में व्यक्ति सालों से बगल वाले घर में रह रहें व्यक्ति के नाम को भी नहीं जान पाता।

महानगरों में व्यक्ति जीवनयापन के लिए किसी न किसी क्षेत्र में कार्य करता है, ये उसकी शिक्षा, कौशल और रुचि पर निर्भर करता है। शहर की सभ्यता में कार्यक्षेत्र का विशेष योगदान है, क्योंकि व्यक्ति का आधा से ज्यादा समय यहीं गुजरता है। दफ्तरों में कार्य करने वाले ये लोग इस कार्यस्थल को अपना दूसरा घर और साथ काम करने वाले लोगों को अपना दूसरा परिवार मानते है। देश की ये कामकाजी पीढ़ी और दफ्तरी वातावरण कई परिवर्तनों के लिए उत्तरदायी है। दफ्तरी कल्चर और कॉर्पोरेट ऑफिसों ने सामाजिक संरचना को प्रभावित किया साथ ही इसमें कई परिवर्तन भी किये, जिसके परिणाम स्वरूप भारतीय समाज कि एक नई तस्वीर हमारे सामने निकलकर आई, जो वर्तमान है। ये पूर्व की लोक-लाज, मर्यादा, परंपराओं और रीति रिवाजों से भिन्न था। ये वो समाज है, जो पश्चिमी सभ्यता की तर्ज पर भारत में गढ़ा जा रहा था, जो आधुनिकता की दौड़ में भागते हुए भारतीय मूल्य को कुचलता हुआ अपने को आज भी विकसित होने का दावा पेश करता है। हिन्दी उपन्यास ऐसे उदाहरणों से भरा हुआ है, जिसमें महानगरों की संस्कृति और आर्थिक क्षेत्र से सम्बद्ध दफ्तरी परिवेश व्यभिचार के अड्डे बने हुए है। इन बड़े-बड़े शीशेदार और वतानुकूलित दफ्तरों में कैसे बड़े स्तर पर शोषण किया जाता है। काम दिलाने के नाम पर कैसे लूट-खोट की जाती है। कारखानों और उद्योगों में काम करने वाली स्त्रियाँ किस प्रकार से अनैतिक संबंध बनाती है, इसके साथ ही कैसे ये लोग अपने स्वार्थ और हित के कारण भ्रष्टाचार करते हैं। एक तरफ महानगर विकसित होने का ढिंढोरा पीटते है, वहीं आज भी इसी आधुनिक समाज में जातिगत भेदभाव देखने को मिलता है। नवीन विकसित आधुनिक समाज में स्त्रियों के प्रगतिशील रूप का भी चित्रण देखने को मिलता है, जो ग्रामीण स्त्री से बिलकुल अलग है।

आधुनिक जीवनशैली और आजीविका के आधार बने ये दफ्तर अकेलेपन ,घुटन, अलगाव, ऊब, संत्रास और प्रेम के अभाव से भरे पड़े है। इस समस्या को दर्शाते हुए 'जगदंबा प्रसाद दीक्षित' का उपन्यास 'कटा हुआ आसमान' महत्त्वपूर्ण है, जिसमें रोजगार की खोज में रमेश नौटियाल (उपन्यास का नायक) शहर आ जाता है, उसे एक कॉलेज में नोकरी भी मिल जाती है, परंतु उसके साथ ही वो इस अनजान शहर में अकेलेपन और कुंठा का शिकार हो जाता है, जिससे बचने के लिए वो अपने आप को व्यस्त रखता है। दफ्तरी परिवेश के वातावरण से नायक छटपटाने लगता है। वह इस भाग दौड़ भरी जिंदगी से बाहर निकलना चाहता है, लेकिन उससे बाहर निकलना का कोई समाधान नहीं सूझता। वो भारी मन से इस छटपटाहट को व्यक्त करता हुआ कहता है, ये महानगर आदमी को बहुत अकेला और अजनबी बना देता है। जिसका चित्रण 'जगदंबा प्रसाद दीक्षित' ने नायक रमेश नौटियाल के माध्यम से कुछ इस प्रकार करते हैं- ' आदमी...आदमी...आदमी...चारों तरफ आदमी। बस की लाइन में, गाड़ियों के डिब्बे में, फुटपाथों पर, पेशाबखानों में। हर जगह तुम्हारा रास्ता रोककर खड़े हैं। इनकी आंखों में तुम्हारे लिए कुछ नहीं है तुम्हारी तरफ देखने की फुर्सत नहीं है इनसे नफरत करों। सड़क पर दौड़ती हुई कारों से नफरत करो, आसमान को छूने वाली इमारतों से नफरत करो, फुटपाथ पर चिल्लाने वाले फेरीवाले से नफरत करो फिर, फिर अपने आप से नफरत करो।'३ इन शहरों में व्यक्ति मशीन की भांति कार्य करते करते जीवन के अंत तक चल जाता है, अगर कोई मशीन या कलपुर्ज़ा खराब होता है तो उसकी जगह नए कलपुर्ज़ों की एक लंबी कतार लागी हुई है।

बढ़ती जनसंख्या और बेरोजगारी के चलते इन शहर के इन दफ्तरों में काम दिलाने के नाम पर इतनी लूट-खसोट, छीना-झपटी और भ्रष्टाचार होता है, जिसका वर्णन 'गिरिराज किशोर' जी अपने उपन्यास 'चिड़ियाघर'

में किया है। डॉ. पुरषोत्तम दुबे लिखते है कि - 'इधर के कई वर्षों में मनुष्य के वैयक्तिक जीवन में जो नवीनतम समस्याओं उत्पन्न होती जा रही हैं, उसमे से कुछ को लेकर 'चिड़ियाघर' का निर्माण हुआ है। उपन्यास का कथानक एम्पलॉयमेन्ट एक्सचेंज अर्थात् काम दिलाऊ दफ्तर की चारदीवारी में सीमित है। इस दफ्तर में काम दिलाने के नाम पर लूट-खसोट, छीना-झपटी, रिश्वतखोरी और बेईमानी होती है, उसका ज्यों का त्यों दृश्य गिरिराज किशोर ने चिड़ियाघर में उपस्थित कर दिये हैं।'४ ये दफ्तर आम आदमी के शोषण के केंद्रे बने हुए है, जिसमे कोई भी व्यक्ति बिना पैसे दिए अपना काम नहीं करा सकता है। वर्तमान समय में ये व्यवस्था सभी जगह एक जैसी देखने को मिलती है, जिसमें सभी दफ्तरी परिवेश एक ही सुर में ताल ठोक रहें हैं। 'सचमुच यह दफ्तर किसी भी और दफ्तर से अधिक -अलग स्वभाव ,योग्यता और स्तर के व्यक्तियों को एकस्थान पर एकत्रित और रोज देख पाने ले लिहाज से अपने में एक दिलचस्प जगह है और वैविध्य एवं आकर्षण की दृष्टि से किसी भी चिड़िया घर से कम नहीं।'५

देश के इन बड़े-बड़े दफ्तरों में स्त्री का स्वरूप आधुनिक और प्रगतिशील है, वो परंपरा के बंधनों को तोड़ और सामाजिक बेड़ियों को कट कर बहुत आगे बढ़ गई है। दफ्तरों में कार्य करने वाली स्त्रियाँ सभी आधारों पर स्वतंत्र है, वो आर्थिक रूप से सम्पन्न होने के कारण समाज को अनदेखा करके चलती है। इससे सामाजिक संरचना में अनेक परिवर्तन देखने को मिलते हैं, जैसे - स्त्री -पुरुष संबंध, प्रगतिशील सोच ,उन्मुक्त यौन भावना, परंपरा का खंडन और पारिवारिक जिम्मेदारी से कटना इत्यादि। प्रगतिशील स्त्री के इस नए स्वरूप को हम 'गिरिराज किशोर' के उपन्यास 'चिड़ियाघर' की केन्द्रीय पात्र मिसेज रिज़वी में देख सकते हैं, जिसमें वो अपने साथी जौहरी से कहती है- 'क्यों जौहरी, अगर मैं एक एक्सपेरिमेंट करूं? चार शौहर रक्खूँ। जिसमें एक होम देखें, दूसरा फारेन रिलेशन की देख-रेख रखें, तीसरा प्रोटोकॉल का ख्याल रखे, चौथा इंटरटेनमेंट करे। तुम्हारा क्या ख्याल है? खुद कमाएंगे अपनी कमाई का हिस्सा मुझे देंगे।....... उनको सिर्फ एक रियायत दी जाएगी कि वे मेरी सुविधानुसार मेरे साथ सो सके।....... यह कदम प्रोग्रेसिव भी हो सकता है.... आदमी साले इसी चक्कर में रहते हैं.....रोज एक औरत मिले।'६ इस प्रकार की प्रगतिशील सोच भारतीय समाज की नारी का आधुनिक रूप है, जो पूर्व के सभी मिथ्यों को तोड़ते हुए अपने स्वतंत्र जीवन को देखने का प्रयास करती है।

सरकारी संस्थानों और कार्यालयों के हालात इतने खस्ता है कि आम आदमी बिना भ्रष्टाचार के अपना कोई काम नहीं करवा सकता है। सरकारी दफ्तरों को भ्रष्टाचार का पूरक बना दिया गया है जिसमें आम आदमी का काम उसके द्वारा दी गई रकम से निर्धारित होता है। ईमानदारी से काम करने वाले व्यक्ति को या तो व्यवस्था से हटा दिया जाता है या उसे व्यवस्था में ही मिलाया जाता है। सरकारी दफ्तरों की फाइलों का आलम यह है कि अर्जी देने वाला व्यक्ति जवानी से बुढ़ापे में आ जाता है, मगर उसकी अर्जी कभी आगे नहीं बढ़ती अंत में वह उस अर्जी को बंद करा देता है। न्याय के रूप में चूहों द्वारा कटे फटे कुछ कागज़ उसे दे दिए जाते हैं। भ्रष्टाचार के संदर्भ में ' गा ' लिखता है ' चूहा खाना सिर्फ वह नहीं है जहाँ तुम काम करते हो या जहाँ मैं काम करता था सारी दुनिया ही एक बहुत बड़ा चूहा खाना है जहाँ चूहे मार कर ही जिंदगी बसर की जा सकती है। जो चूहे नहीं मार सकता उसके लिए इस दुनिया में कोई जगह नहीं है।'७

किसी मनुष्य के अंदर ईमानदारी होना उसे मनुष्य बनाता है, परंतु यही गुण अगर नौकरशाही व्यवस्था में किसी अधिकारी या क्लर्क के पास हो वह सबसे बड़ा अपराधी है, क्योंकि ईमानदारी के साथ कार्य करने पर आम जनता को उससे बहुत फायदा होगा, परंतु सरकारी व्यवस्था के लोगों की दुकानें बंद हो जाएंगी। व्यवस्था के अंदर ईमानदार लोगों का होना भी एक बहुत बड़ा वरदान है। यह लोग व्यवस्था के अनुकूल ना जाकर व्यवस्था से अलग खड़े होते हैं तो इन्हें कई समस्याओं का सामना करना पड़ जाता है। इन सभी समस्याओं का सामना करते हुए ' नौकर की कमीज ' में संतु बाबू किरदार बहुत कर्मनिष्ठ है। संतू बाबू को दफ्तर में सभी लोग झक्की आदमी समझते हैं। इस पर संतू बाबू के द्वारा कही गई बात बहुत महत्त्वपूर्ण है।' इस झक्क में भी एक सुख है,

व्यवस्था से सहमति दिखाकर उसकी हाँ में हाँ मिलाने से ज्यादा उससे से असहमति दिखाने का सार्थक सुख।'८ इस प्रकार के किरदार समाज और व्यवस्था को जीवित रखने का प्रयास करते हैं। संतू बाबू जैस लोगों को इन संस्थानों और दफ्तरों से पहले ही बाहर का रास्ता दिखा दिया जाता है, जिससे इनको अपने काले कारनामों में दिक्कत न आए। दम तोड़ते मूल्य और भ्रष्ट व्यवस्था में एक आदमी कब तक जान भरेगा।

अंतः महानगरीय जीवनशैली और दफ्तरी परिवेश में, जूझते व्यक्ति के संघर्ष को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यह संघर्ष ना सिर्फ व्यवस्था के विरोध में है, बल्कि सामाजिक, आर्थिक और न्यायिक व्यवस्था को पुनर्जीवित करने का प्रयास है। सरकारी व्यवस्था से जूझता आम आदमी आज कुंठित है। बीसवीं सदी के मध्य में मिली आज़ादी उसे आज गुलामी सी प्रतीत होने लगती हैं, बस फर्क इतना है कि चेहरे बदल गए हैं, शोषण और भ्रष्टाचार आज भी अपनी जगह ज्यों का त्यों खड़ा हुआ है। सरकारी नीतियां और परियोजनाएं गरीब और निम्न वर्ग के लोगों को लाभ पहुंचाने में सफल नहीं हो पाई। ग्रामीण परिवेश में विकास को अनदेखा किया गया जिसके कारण निम्न वर्ग ने शहरों कि ओर पलायन करना शुरू कर दिया। बड़े स्तर पर हुए इस पलायन से शहरों का संतुलन बिगड़ गया, जिससे अशिक्षा, गरीबी, भ्रष्टाचार और शोषण चरम पर होने लगे। महानगरों कि ये विकसित सभ्यता एक तरफ जहाँ व्यक्ति को रोजगार देती है, वहीं दूसरी तरफ उसका शोषण करती नजर आती है। हताश और निराश जनता फिर भी, आजीविका कि तलाश में इन बड़े शहरों में मशीन कि भांति जीवन जीनों को विवश है।

संदर्भ सूची

१. राधाकृष्ण, (सं.), 'गणेश शंकर विद्यार्थी के श्रेष्ठ निबंध', आत्माराम एण्ड सन्स, कश्मीरी गेट, दिल्ली, संस्करण १९६४, पृष्ठ सं.-४१

२. लोक में प्रचलित प्रसिद्ध लोकोक्ति (मुहावरा)

३. जगदंबा प्रसाद दीक्षित 'कटा हुआ आसमान', राधाकृष्ण पेपरबैक , नई दिल्ली, प्रथम संस्करण २००४, पृष्ठ स.-८

४. व्यक्ति चेतना और स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यास -डॉ. पुरषोत्तम दूबे १९७३,पृष्ठ स.-१३२

५. ज्ञानोदय अगस्त १९९६ वर्ष २९ अंक-३ पृष्ठ स.-१३६

६. गिरिराज किशोर - चिड़ियाघर १९६८ , राजपाल प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ स. ९८-९९

७. बद्दीउज्जमा - एक चूहे की मौत १९७१ , शब्दकार प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ स. ८७

८. विनोद कुमार शुक्ल - एक नौकर की कमीज १९७९ ,राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, पृष्ठ स.६५

मोनीश कमल

शोधार्थी, दिल्ली,विश्वविद्यालय

मो.- ८५०५९१३२१२

ई-मेल-sharmamonish3aug@gmail.com

बुंदेलखंड का कश्मीर - चरखारी

सुभाष चन्द्र

शोध छात्र,हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
मो. ६३९२७९८७७४, ९५३२१८८७६१
ई-मेल: subhashgautam711@gmail.com

आज मैं रतन सागर झील के किनारे बैठा हूँ। यह झील बुन्देलखंड के एक छोटे से जिले महोबा की कभी रियासत रहे चरखारी रियासत में स्थित है। ये रियासत और इसकी सभी झीलें अपने अन्दर एक गहन इतिहास छुपाए हैं। इसकी सुन्दरता आज कहीं गम हो गयी है। लेकिन इतिहास में देखने पर पता चलता है की ये ऐसी कभी नहीं थी। इतिहास में आज भी इसके सुन्दरता के किस्से मशहूर हैं। इस झील के किनारों पर कई राजाओं और उनकी रानियों ने अपने जीवन के सबसे सुन्दरतम क्षण बिताएं हैं। यह अपने अन्दर एक अलग ही इतिहास छुपाए है जो यहाँ के लोगों की जुबां पर आज भी मौजूद है। आइए आज मैं आपको चरखारी रियासत के पुराने ऐतिहासिक समय की यात्रा पर ले चलता हूँ। इस रियासत की सुन्दरता के कारण आज भी इसे बुंदेलखंड का कश्मीर कहा जाता है। आइए आज आपको इस रियासत, इसकी सुन्दरता और इसके इतिहास से मई आपको रूबरू कराता हूँ। ये बात उस समय कि है जब यूपी के पहले वजीरे आला जनाब गोविंद वल्लभ पंत जब चरखारी तशरीफ लाये तो चरखारी का वैभव एवं सौन्दर्य देखकर उनके मुँह से अचानक निकल पड़ा कि अरे यह तो बुन्देलखण्ड का कश्मीर है। चरखारी उन्हें इतना प्रिय था कि आजादी के बाद रियासतों के विलीनीकरण के समय जब चरखारी की अवाम ने म.प्र. में विलय के पक्ष में अपना निर्णय दिया तो पं. गोविंद वल्लभ पंत सिर के बल खड़े हो गए। तत्काल चरखारी के नेताओं को बुलावा भेजा, महाराज चरखारी से गुफ्तगू की और इस प्रकार बुन्देलखण्ड का कश्मीर म. प्र. में जाने से बच गया।

पंत जी ने चरखारी को कश्मीर यूँ ही नहीं कह दिया था। राजमहल के चारों तरफ नीलकमल और पक्षियों के कलरव से आच्छादित, एक दूसरे से आन्तरिक रूप से जुड़े- विजय, मलखान, वंशी, जय, रतन सागर और कोठी ताल नामक झीलें, चरखारी को अपने आशीर्वाद के चक्रव्यूह में लपेटे कृष्ण के १०८ मन्दिर- जिसमें सुदामापुरी का गोपाल बिहारी मन्दिर, रायनपुर का गुमान बिहारी, मंगलगढ़ के मन्दिर, बख्त बिहारी, बाँके बिहारी के मन्दिर तथा माडव्य ऋषि की गुफा और समीप ही बुन्देला राजाओं का आखेट स्थल टोला तालाब- ये सब मिलकर वाकई चरखारी में पृथ्वी के स्वर्ग कश्मीर का आभास देते हैं। चरखारी का प्रथम उल्लेख चन्देल नरेशों के ताम्र पत्रों में मिलता है। देववर्मन, वीरवर्मन, हम्मीरवर्मन के लेखों में इसका नाम वेदसाइथा था। राजा परमाल के पुत्र रंजीत ने चरखारी को अपनी राजधानी बना चक्रधारी मन्दिर की स्थापना की। चक्रधारी

मन्दिर के नाम पर ही राजा मलखान सिंह के समय वेदसाइथा का नाम चरखारी पड़ा। कुछ स्थानीय लोग इसे महराजपुर भी कहते हैं। कजली की लड़ाई में जब रंजीत मारे गए तो चरखारी उजाड़ हो गई। इन्हीं रंजीत के नाम पर किले के सामने रंजीता पर्वत है। एपीग्राफिक इंडिका के अनुसार खंदिया मुहल्ला और टोला तालाब इन्हीं रंजीत का बनवाया हुआ है। टोला ताल आज एक खुबसूरत पिकनिक स्पॉट है।

चन्देलों के गुजर जाने के सैकड़ों वर्ष बाद राजा छत्रसाल के पुत्र जगतराज के समय चरखारी का पुनः भाग्योदय होता है। आखेट करते समय जगतराज एक दिन मुंडिया पर्वत पहुँचे। वहाँ उन्हें चुनू वादे और लोधी दादा नामक दो सन्यासी मिले। उन्होंने बताया कि वो दोनों यहाँ एक हजार वर्ष से तप कर रहें हैं और मुंडिया पर्वत ही ऋषि माण्डव्य की तपोस्थली है। जगतराज को इसी समय एक बीजक मिला जिसमें लिखा था-

'उखरी पुखरी कुड़वारो वरा, दिल्ली की दौड़ मारे गुढ़ा
सो पावै नौ लाख बहत्तर करोड़ का घड़ा'

चुनू वादे और लोधी दादा सिद्ध योगी थे। उन्होंने जगतराज को बीजक का भावार्थ बताया। मुंडिया पर्वत पर खुदाई की गई और जगतराज को नौ लाख बहत्तर करोड़ स्वर्ण सिक्कों की अपूर्व सम्पदा मिली। जगतराज फूले न समाए। उन्होंने तुरन्त अपने पिता छत्रसाल को पन्ना में यह खुशखबरी भेजी। किन्तु छत्रसाल कुपित हुए। उनके अनुसार क्षत्रिय केवल अपने बाहुबल से यशकीर्ति और धन सम्पदा प्राप्त करता है। उन्होंने तुरन्त सन्देश भेजा-

'मृतक द्रव्य चन्देल को क्यों तुम लियो उखार?'

वस्तुतः यह धन चन्देलो का था। पृथ्वीराज चौहान से पराजित होने के उपरान्त जब परमाल और रानी मल्हना ने महोबा से कालिंजर को प्रस्थान किया तो उन्होंने अपना धन चरखारी में छुपा दिया था। छत्रसाल के निर्देश पर जगतराज ने बीस हजार कन्यादान किये, बाइस विशाल तड़ाग बनवाए, चन्देलकालीन मन्दिरों और तालाबों का जीर्णोद्धार कराया। किन्तु इस धन का एक भी पैसा अपने पास नहीं रखा।

जगतराज को एक दिन लक्ष्मी जी ने स्वप्न में आदेश दिया कि मुंडिया पर्वत सिद्धस्थल है। यहाँ मंगलवार को किले का निर्माण करो। मंगलवार को नींव का प्रारम्भ नहीं होता किन्तु लक्ष्मी जी का आदेश शिरोधार्य कर मंगलवार को किले की नींव खोदी गई। अतः इसका नाम मंगलगढ़ पड़ा। ज्येतिषी पुहुपशाह, कवि हरिकेश और मड़ियादो के पं गंगाधर के निर्देशन में किले को भव्य बनाने की कोशिशें दिन-रात चलती रहीं।

यह किला भूतल से तीन सौ फुट ऊँचा है। किले की रचना चक्रव्यूह के आधार पर की गई है। क्रमवार कई दीवालें बनाई गई हैं। मुख्यतः तीन दरवाजें हैं। सूपा द्वार- जिससे किले को रसद हथियार सप्लाई होते थे। ड्योढ़ी दरवाजा- राजा रानी के लिये आरक्षित था। इसके अतिरिक्त एक हाथी चिघाड़ फाटक भी मौजूद था।

किले के ऊपर एक साथ सात तालब मौजूद हैं- बिहारी सागर, राधा सागर, सिद्ध बाबा का कुण्ड, रामकुण्ड, चौपरा, महावीर कुण्ड, बख्त बिहारी कुण्ड। चरखारी किला अपनी अष्टधातु तोपों के लिये पूरे भारत में मशहूर था। इसमें धरती धड़कन, काली सहाय, कड़क बिजली, सिध्द बख्शी, गर्भगिरावन तोपें अपने नाम के अनुसार अपनी भयावहता का अहसास कराती हैं। इस समय काली सहाय तोप बची है जिसकी मारक क्षमा १५ किमी है। ये तोपें ३ बार दागी जाती थीं। प्रथम- ४ बजे लोगों को जगाने के लिये, दूसरी १२ बजे लोगों के विश्राम के लिये, तीसरी रात में सोने के लिये। तीसरी तोप दागने के बाद नगर का मुख्य फाटक बन्द कर दिया जाता था और लोगों का आवागमन बन्द कर दिया जाता था।

किले में बड़े-बड़े गोदाम बने हुए हैं जिसमें कोदों भरा रहता था। यह अनाज कई वर्षों तक खराब नहीं होता। दुश्मन के घेरे के समय यह अनाज काम आता था। चरखारी के किले का पहला घेरा नोने अर्जुन सिंह ने और दूसरा तात्या टोपे ने १८५७ में डाला था। किन्तु किले में रसद और जल की पर्याप्त व्यवस्था होने के कारण तात्या किले को फतह नहीं कर सके। उन्होंने कानपुर में नाना साहब को लिखा- ''ऊँचे पर्वत पर होने के कारण किले पर कब्जा करना मेरे लिये बेहद मुश्किल है। हमारे सैनिक अभी बहुत शेखी बघार रहें हैं किन्तु कुछ दिनों बाद वो हताश हो जाएँगे। कृपया कुछ अफगानी सैनिक मेरे लिये भेज दीजिए ताकि हमें कुछ ताकत मिले।''किन्तु किस्मत तात्या के साथ नहीं थी। वह किला फतह नहीं कर सका। तब उसने चरखारी की जनता पर अपना गुस्सा उतारना शुरू किया। राजा जो अभी तक किले में कैद था, से क्रुद्ध होकर क्रान्तिकारियों ने राजमहल के कीमती सामान, यहाँ तक कि फर्नीचर और

कालीन भी लूट लिये।

जगतराज के पश्चात विजयबहादुर सिंहासन पर बैठे। साहित्य प्रेमी विजय बहादुर ने विक्रमविरुदावली की रचना की, मौदहा का किला और राजकीय अतिथिगृह- ताल कोठी का निर्माण कराया। यह कोठी एक झील में बनी है। बहुमंजिली यह कोठी अपनी रचना में नेपाल के किसी राजमहल का आभास देती है। इसकी गणना बुन्देलखण्ड की सर्वाधिक खुबसूरत इमारतों में की जाती है। विजय सागर नामक तालाब पर बनी ताल कोठी सरोवर के चहुंदिश फैली प्राकृतिक सुषमा के कारण अधिक आकर्षक प्रतीत होती है। महाराज जयसिंह के काल में नौगाँव के सहायक पोलिटिकल एजेंट मि. थामसन को चरखारी का प्रबन्धक नियुक्त किया गया। इसकी सुन्दरता देखकर थामसन ने इसी तालकोठी को सन १८६२ ई. से १८६६ ई. तक अपना आवास बनाया था। विजयबहादुर के समय में रियासत को ब्रिटिश साम्राज्ञी की ओर से १८०४ और १८११ में सनद मिली और उसके भौगोलिक क्षेत्र में वृध्दि की गई। विक्रमशाहि और विक्रमादित्य विजय बहादुर की उपाधियाँ हैं।

विजय बहादुर के सात पुत्र थे। उनमें एक थे पूरनमल। खाने-पीने और पहलवानी के बड़े शौकीन। सवा मन भोजन करते लेकिन जब सोकर उठते तो रसोइए से पूछते कि मैंने सोने से पहले खाना खाया था कि नहीं? लोग उन्हें चरखारी का महमूद बेगड़ा कहते हैं। पूरनमल की तलवार बत्तीस सेर की थी। इस तलवार से वो एक ही वार में चार पैर वाले पशु को काट देते थे। इसलिये उनकी तलवार का नाम पड़ा- चौरंग। एक बार बांदा के नवाब ने ऊँट काटने की शर्त लगाई किन्तु ऊँट के गले में धोखे से लोहे की जंजीर डाल दी। पूरनमल ने ऊँट का गला एक झटके में काट तो दिया लेकिन उनकी आँखों में खून उतर आया। इस घटना से महाराज विजयबहादुर इतने कुपित हुए कि उन्होंने बांदा के ऊपर आक्रमण कर दिया। एक बार दंगल हो रहा था, जिसमें बतौर दर्शक राजा और प्रजा सब मौजूद थे। अचानक एक हाथी भड़क गया और उसने लोगों को कुचलना और पटकना शुरू कर दिया। पूरनमल ने उस हाथी के दाँत पकड़ लिये। हाथी के जोर से पूरनमल अखाड़े में धँस गए, लेकिन उन्होंने हाथी का दाँत नहीं छोड़ा। अन्त में हाथी के दाँत से खून निकल आया और वह चिंघाड़ मारता भाग गया। पूरनमल १८ नारियल एक साथ अपने अंग-प्रत्यंगों में दबाकर फोड़ देते थे। चरखारी के उनके महल वासुदेव मन्दिर में उनकी आज भी सशरीर उपस्थिति मानी जाती है और उनके लिये बिस्तर लगाया जाता है। लोकगीतों में लिखा है कि पूरनमल अपनी चुटकियों से जब सिक्का मसलते थे तो सिक्के के अक्षर मिट जाते थे-

'अंक रुपैयन के मल डारे औ फारी गयंदन की हाय
बत्तीस सेर का तेगा लेकर चौरंग काटी बादा जाय'

किन्तु महाराज विजयबहादुर के जीवन काल में ही उनके सातों पुत्रों का निधन हो गया। पूरनमल की मौत पर उन्होंने जो दोहा लिखा, वह आज भी ह्रदय को वेध देता है-

'नहिं सूर्य, शशि है नहीं, नहिं उड़गन को दोष
निशि पावक चलने परो, मग जुगनू को दोष'

महाराज विजय बहादुर के पश्चात जय सिंह सिंहासन पर बैठे। उन्होंने १८५७ के दिल्ली दरबार में भाग लिया। अपने जीवन के अन्तिम समय में उन्हें राज-काज से घृणा हो गई और उनका अधिकांश समय प्रवचन में बीतता था। एक दिन वृन्दावन के मन्दिर में उन्होंने धतूरा खाकर जान दे दी।

इसके पश्चात मलखान सिंह आये। मलखान सिंह एक श्रेष्ठ कवि थे। उन्होंने गीता का काव्यानुवाद किया। उनकी पत्नी रुपकुंवरि एक धार्मिक महिला थीं। रामेश्वरम से लेकर चरखारी तक उन्होंने रियासत के मन्दिर बनवाए जो आज भी चरखारी की गौरव गाथा कह रहे हैं। गीत मंजरी, विवाह गीत मंजरी और भजनावली उनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं। उनके लिखे भजन बुन्देलखण्ड में आज भी महिलाओं द्वारा गाये जाते हैं। चरखारी का ऐतिहासिक ड्योढ़ी दरवाजा इन्ही मलखान सिंह के कार्यकाल में बना जिसे महाराष्ट्र के अभियन्ता एकनाथ ने बनवाया। राजमहल और सदर बाजार उन्हीं की देन है। मलखान सिंह के एक हाथी से प्रसन्न होकर वायसराय ने उसे 'इन्द्रगज' की उपाधि दी थी।

किन्तु मलखान सिंह की सर्वाधिक प्रसिद्धि उनके द्वारा प्रारम्भ किये गए १८८३ ई. में गोवर्धन जू के मेले को लेकर है। यह मेला उस क्षण की स्मृति है जब श्रीकृष्ण ने इन्द्र से कुपित होकर गोवर्धन पर्वत धारण किया था। दीपावली के दूसरे दिन अन्नकूट पूजा से प्रारम्भ होकर यह मेला एक महीना चलता है। यह बुन्देलखण्ड का सबसे बड़ा मेला है। पंचमी के दिन चरखारी के १०८ मन्दिरों से देवताओं की प्रतिमाएँ गोवर्धन मेला स्थल लाई जाती हैं। इसी दिन सम्पूर्ण देव समाज ने प्रकट होकर श्रीकृष्ण से गोवर्धन पर्वत उतारने की विनती की थी। सप्तमी को इन्द्र की करबद्ध प्रतिमा

गोवर्धन जू के मन्दिर में लाई जाती है। इस एक महीने में चरखारी वृन्दावन हो जाती है-

'कार्तिक मास धरम का महीना, मेला लगत उते भारी
जहाँ भीड़ भई भारी, वृंदावन भई चरखारी'

एक मास तक चलने वाले इस विशाल मेले में कवि सम्मेलन एवं मुशायरे का आयोजन होता है, जिसमें हिन्दुस्तान के नामचीन शोरा हजरात तशरीफ फरमा होते हैं। चरखारी के मशहूर शायद उजबक चरखारी की वजह से नामचीन शोरा मुफ्त में अपनी सेवाएँ इस मुशायरे को देते थे, किन्तु उजबक चरखारी के इन्तकाल के बाद इस राष्ट्रीय मुशायरे एवं कवि सम्मेलन पर जरूर ग्रहण लगा है। गोवर्धन नाथ जू की झाँकी में जहाँ मुसलमान अपना कंधा देते हैं, वहीं मोहर्रम की सातवी तारीख को घोड़े के जुलूस में हिन्दू भाई बढ़ चढ़ कर भाग लेते हैं। रामदत्त तिवारी 'अजेय' इस मेले के बारे में लिखते हैं-

'बुन्देलखण्ड का है प्रसिद्ध पावन गोवर्धन मेला
प्रतिवर्ष यही कह जाता है मलखान सिंह नृप अलबेला'

मलखान सिंह के पश्चात जुझार सिंह गद्दी पर बैठे। उन्होंने बुन्देलखण्ड के ऐतिहासिक और काव्य ग्रंथों का प्रकाशन करवाया। महाराज अरिमर्दन सिंह अपने नाट्य प्रेम के लिये जाने जाते हैं। कलकत्ता की कोरथियन कम्पनी के कलाकारों को वो चरखारी लाये। आगा हश्र कश्मीरी इसी नाटक कम्पनी से जुड़े थे। वो रोज एक नाटक लिखते और नाट्यशाला में इसका मंचन होता। इस नाट्यशाला में ४००० दर्शकों के बैठने की क्षमता थी। अब नगरपालिका द्वारा इसका उपयोग एक गोदाम के रूप में हो रहा है। अरिमर्दन सिंह ने नेपाल नरेश की पुत्री से विवाह किया और उनके लिये राव बाग महल का निर्माण कराया जिसमें चरखारी का राजपरिवार आज भी रहता है।

अरिमर्दन सिंह के पश्चात जयेन्द्र सिंह शासक हुए। ये चरखारी के अन्तिम शासक थे। इसके पश्चात रियासत का विलय भारत संघ में हुआ। पं. राम सहाय तिवारी ने स्टेट का चार्ज लिया। चन्दला, जुझार नगर, ईसानगर मप्र. में और शेष का विलय उप्र. में हुआ। चरखारी की वंश परम्परा इस दोहे से स्पष्ट है-

'छत्रसाल, जगतेशुजू, कीरत, पृथ्वी, मान
विजयबहादुर, रतनसिंह, जयसिंह अरु मलखान'

इस समय महाराज जयन्त सिंह और रानी उर्मिला सिंह रावबाग महल में रहते हैं। राजा छत्रसाल की वंश परम्परा चरखारी में इन्हीं से चिरागे-रोशन है। रानी उर्मिला सिंह सदरे रियासत कश्मीर कर्ण सिंह के खानदान से ताल्लुक रखतीं हैं और कश्मीर के पुंछ सेक्टर की रहने वाली हैं। कुछ दिनों तक वो चरखारी नगरपालिका की चेयरमैन भी रहीं। जब मैं राजमहल में गया तो उन्होंने पूरी शालीनता से मेरी मदद की। अपने पूर्वज राजाओं के चित्र दिये, १८५७ में चरखारी रियासत को लार्ड कैनिंग ने जो सनद दी थी, उसका चित्र उपलब्ध कराया।

चरखारी अपनी साहित्यिक प्रतिभाओं के लिये भी जानी जाती है। हरिकेश जी महाराज जगतराज के राजकवि थे। जगतराज इनकी पालकी में कन्धा देते थे। इनकी लिखी पुस्तक 'दिग्विजय' बुन्देलों का जीवन्त इतिहास है। खुमान कवि तथा आगा हश्र कश्मीरी ने चरखारी में रहकर अपनी चमक बिखेरी। आगा हश्र कश्मीरी ने कुल ४४ पुस्तकें लिखीं जिनमें १८ नाटक है। नाथूराम, ख्यालीराम तथा मिर्जा दाउद बेग- जिन्होंने कौटिल्य के अर्थशास्त्र का हिन्दी अनुवाद किया, सुप्रसिद्ध पखावज व मृदंग वादक कुंवर पृथ्वी सिंह दाउ, विख्यात कव्वाल फैज अहमद खां, संगीतज्ञ उम्मेद खां, सारंगी वादक स्वामी प्रसाद चरखारी की अन्यतम विभूतियाँ हैं।

चरखारी हिन्दी फिल्मों की मशहूर अदाकारा ट्रेजडी क्वीन मीना कुमारी के लिये भी जानी जाती है, जो आगा हश्र कश्मीरी के खानदान से ताल्लुक के कारण बचपन में कुछ वर्षों चरखारी में रहीं। चरखारी के वैभव एवं सौन्दर्य पर जो अन्धकार छाया है, वह मीना कुमारी के इस शेर से प्रतिबिम्बित होता है-

'कई उलझे हुए खयालात का मजमा है मेरा ये वजूद
कभी वफा से शिकायत, कभी वफा मौजूद'

सुभाष चन्द्र
शोध छात्र,हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
मो. ६३९२७९८७७४, ९५३२१८८७६१
ई-मेल: subhashgautam711@gmail.com

हमारी नवीनतम प्रकाशित पुस्तकें

पुस्तक शीर्षक	लेखक	मूल्य
रचना और आलोचना का दोआब : राजेन्द्र कुमार	हितेश कुमार सिंह	₹ 320/-
काँच की कहानी	अनिल कुमार शुक्ला	₹ 350/-
कमलेश्वर के कथा साहित्य में व्यापक सामाजिक यथार्थ	डॉ. उर्मिला बौद्ध	₹ 375/-
काव्य प्रसून (राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह)	महेन्द्र साहा	₹ 200/-
समाचार एजेन्सियाँ और हिन्दी अनुवाद	शिवम चतुर्वेदी	₹ 350/-
समेकित विद्यालय एवं दिव्यांगों की शैक्षणिक समस्याएँ	डॉ0 नीता मिश्रा	₹ 450/-
।। श्रीमद्भगवद्गीता ।। (सरल) सजिल्द संस्करण	डॉ0 ध्यानचन्द्र अग्रवाल	₹ 350/-
प्रस्थानत्रयी	दिनेश सिंह	₹ 300/-

सम्पूर्ण पुस्तिका सूची के लिए 9792737737 अथवा email : firstprintpublications@gmail.com पर सम्पर्क करें

अपनी पुस्तक प्रकाशित करायें मात्र 21 दिनों में ISBN के साथ

- Text Book
- काव्य संग्रह/Anthology of Poems
- (हिन्दी एवं अंग्रेजी साहित्य)
- Seminar Souvenirs/Abstract Book
- Proceeding Book
- Edited Book
- Thesis to Book

लेखकों, शिक्षाविदों एवं शोधछात्रों के लिए अत्यन्त उपयोगी **न्यूनतम लागत में कार्य**

1st PRiNT PUBLICATIONS

First Print Publications

164/3/50 Tagore Town Prayagraj. (U.P.) 211002
Mob.: 9792737737, 7800905512
email : firstprintpublications@gmail.com

amazon एवं flipkart.com पर डिस्ट्रीब्यूशन सुविधा उपलब्ध